ANANTA SATSANG · BILINGUAL SCRIPTURE LIBRARY

Vraja-bhāva kī Upāsanā

व्रज-भावकी उपासना

The Worship of Vraja-bhāva

Śrī Hanumānprasād Poddār

Original text with a fresh English translation

About this edition

> Discourses on cultivating Vraja-bhāva, divine form and līlā contemplation, gopī love, surrender, grace, practice questions, and mantra.

Source edition: First edition, Śrī Rādhāṣṭamī, Vikrama Saṃvat 2056; complete 122-page text in 130 scans.
Gītāvāṭikā Prakāśan, Gorakhpur

Contents

1 मुखपृष्ठ, नम्र निवेदन एवं विषय-सूची
Title Page, Editorial Note, and Contents

2 भगवान्के दिव्य श्रीविग्रहके दर्शन
Vision of the Lord's Divine Form

3 भगवत्-लीला-चिन्तन कैसे हो!
How Should One Contemplate the Divine Līlā?

4 गोपी-प्रेमकी भाव-तरंगें
Waves of Gopī Love

5 गोपी-प्रेमकी प्राप्तिका साधन है—भगवत्प्रेमीका संग
The Means to Attain Gopī Love Is the Company of a Lover of God

6 भाव कैसे बढ़े?
How Does Bhāva Grow?

7 अमोघ साधन
The Unfailing Means

8 भगवान्की प्रेम-परवशता
The Lord's Subjection to Love

9 समर्पणका आदर्श
The Ideal of Self-Surrender

10 व्रज-भावकी उपासना सम्बन्धी प्रश्नोत्तर
Questions and Answers concerning the Worship of Vraja-bhāva

11 व्रज-भावकी उपासनाके लिये मन्त्र
Mantra for the Worship of Vraja-bhāva

12 भगवान्की गोद सबके लिये खाली है
The Lord's Lap Is Empty for Everyone

13 भगवत्कृपा
Divine Grace

14 शरणागति
Surrender

CHAPTER 1

मुखपृष्ठ, नम्र निवेदन एवं विषय-सूची

Title Page, Editorial Note, and Contents

Source scan pages 1–7

ORIGINAL

व्रज-भावकी

उपासना

हनुमानप्रसाद पोद्दार

ENGLISH TRANSLATION

Worship in the Mood of Vraja

Hanuman Prasad Poddar

ORIGINAL

व्रज-भावकी उपासना

ENGLISH TRANSLATION

Worship in the Mood of Vraja

ORIGINAL

Vrajbhav Ki Upasana
By
Hanuman Prasad Poddar

प्रकाशक
रसेन्दु पोद्दार
गीतावाटिका प्रकाशन
पो०-गीतावाटिका (गोरखपुर)
पिन-२७३००६
प्रथम संस्करण-श्रीराधाष्टमी सं० २०५६ वि०
मूल्य-पचीस रुपये

ENGLISH TRANSLATION

Vrajbhav Ki Upasana
By
Hanuman Prasad Poddar

Publisher
Rasendu Poddar
Gita Vatika Publications
P.O. Gita Vatika (Gorakhpur)
PIN 273006
First edition, Shri Radhashtami, Vikram Samvat 2056
Price: twenty-five rupees

ORIGINAL

श्रीहरिः

नम्र निवेदन

ENGLISH TRANSLATION

Shri Hari.

Humble Submission

ORIGINAL

रस-सिद्ध संत भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार की गम्भीर साधना का श्रीगणेश सन् १९१६ ई० में हुआ, जब सरकार ने राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने के कारण उन्हें बंगाल के शिमलापाल ग्राम में नजरबन्द किया था। वहाँ करीब पौने दो साल तक इन्हें आध्यात्मिक साहित्य के अनुशीलन का पर्याप्त अवसर मिला। इसी समय उन्होंने नारद-भक्ति-सूत्रों की एक बृहत् व्याख्या लिखी। यह एक विस्मय की बात है कि उस समय इनकी उम्र २५ वर्ष की थी एवं साधना प्रारम्भ किये थोड़ा ही समय हुआ था। उस समय प्रेमाभक्ति की ऐसी गहरी सैद्धान्तिक व्याख्या कैसे सम्भव हुई? यही व्याख्या कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धन के साथ प्रेम-दर्शन नाम से सन् १९३५ में गीताप्रेस से प्रकाशित हुई। इस व्याख्या के प्रकाशन से देवर्षि नारद इतने प्रसन्न हुए कि सन् १९३६ में महर्षि अंगिरा के साथ गीतावाटिका में पधारकर पावन दर्शन दिये एवं पू० भाईजी के साथ लम्बी वार्ता हुई। यह मिलन आदि शंकराचार्यजी के एक जीवन-प्रसंग की याद दिलाता है। मैंने उनकी जीवनी में पढ़ा है कि जब उन्होंने 'ब्रह्मसूत्र' का भाष्य लिखा, तो उस भाष्य से महर्षि श्रीवेदव्यासजी इतने प्रसन्न हुए कि जब पू० आदि शंकराचार्यजी उत्तरकाशी में थे, तो वहाँ पधारकर उन्हें दर्शन दिये एवं आशीर्वाद देकर परम प्रेरणा दी। ऐसा ही कुछ भाईजी के साथ हुआ।

ENGLISH TRANSLATION

The serious spiritual practice of Bhai Ji, the realized saint Shri Hanuman Prasad Poddar, began in 1916 CE, when the government interned him in the village of Shimlapal in Bengal for his active participation in political activities. There he had ample opportunity, for nearly a year and three quarters, to study spiritual literature. At that time he wrote an extensive commentary on the Narada Bhakti Sutras. It is astonishing that he was then twenty-five years old and had begun spiritual practice only a short while earlier. How could so profound a theoretical exposition of loving devotion have been possible at that time? With some revisions and additions, that same commentary was published by Gita Press in 1935 under the name Prem-Darshan. Devarshi Narada was so pleased by its publication that in 1936 he came to Gita Vatika with Maharshi Angira, granted his holy vision, and held a long conversation with revered Bhai Ji. This meeting recalls an episode from the life of Adi Shankaracharya. I have read in his biography that when he wrote his commentary on the Brahma Sutras, Maharshi Vedavyasa was so pleased with it that, while revered Adi Shankaracharya was in Uttarkashi, he came there, gave him his vision, and bestowed blessings and supreme inspiration. Something similar happened with Bhai Ji.

ORIGINAL

यद्यपि नारदजी एवं भाईजी में क्या वार्तालाप हुआ, इसका विस्तृत प्रामाणिक विवेचन उपलब्ध नहीं है, पर उनका भावी जीवन उसका संकेत दे रहा है। वृन्दावन की लीलाओं के दर्शन तो इसके पहले ही होने लग गये थे, पर उनमें प्रवेश इसी समय लगभग प्रारम्भ हुआ। सन् १९३७ में उन्होंने एक अपने अन्तरंग व्यक्ति को संकेत किया कि, 'लीला में प्रवेश होता है, इसमें मेरी इच्छा की प्रधानता नहीं होती। जब वे चाहते हैं तब सहसा लीला में मुझे खींचकर सम्मिलित कर लेते हैं।' लगभग सन् १९४० में वृन्दावन में एक संत को मीराबाई के साक्षात् दर्शन हुए और काफी वार्तालाप हुआ। उनके प्रश्न करने पर मीराबाई ने बताया कि, 'हनुमानप्रसाद का सूक्ष्म शरीर बिलकुल श्रीप्रियाजी का स्वरूप हो गया है।' एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि नारदजी से विस्तृत वार्तालाप के बाद भी एवं स्वयं इतनी उच्च स्थिति में आरूढ़ होने पर भी 'प्रेम-दर्शन' की व्याख्या में जरा भी संशोधन-परिवर्द्धन की आवश्यकता नहीं हुई, यद्यपि उनके जीवनकाल में 'प्रेम-दर्शन' के बारह संस्करण प्रकाशित हुए।

ENGLISH TRANSLATION

Although no detailed, authoritative account is available of what Narada Ji and Bhai Ji discussed, his subsequent life points to it. Visions of Vrindavan's divine pastimes had begun even before this, but entry into them seems to have begun at about this time. In 1937 he intimated to a close confidant: 'Entry into the divine pastime occurs; my own wish is not paramount in it. Whenever They wish, They suddenly draw me into the pastime and include me in it.' Around 1940, a saint in Vrindavan had a direct vision of Mirabai and conversed with her at length. In answer to his question, Mirabai said: 'Hanuman Prasad's subtle body has become entirely the very form of Shri Priya Ji.' Another noteworthy point is that, even after his extensive conversation with Narada Ji and even after ascending to such an exalted state himself, the commentary Prem-Darshan required not the slightest revision or addition, although twelve editions of it were published during his lifetime.

ORIGINAL

श्रीनारदजी की प्रेरणा तथा व्रजभाव की उपासना एवं उपलब्धि का नवनीत है श्रीभाईजी का ग्रन्थ 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन', जो सदा ब्रजभाव के उपासकों का मार्ग-दर्शन करता रहेगा।

ENGLISH TRANSLATION

The essence of Shri Narada Ji's inspiration, and of the worship and realization of the mood of Vraja, is Bhai Ji's work Shri Radha-Madhava-Chintan, which will always guide worshippers of the mood of Braj.

ORIGINAL

भाईजी ने अपनी स्थिति को लगभग बीस वर्षों तक छिपाये रखा। वे तो चाहते थे जीवनपर्यन्त ही छिपाये रखना, पर यह उनके प्रियतम श्रीकृष्ण को मंजूर नहीं था। जीवन के अन्तिम १०-१२ वर्षों में उनकी विलक्षण महाभावमयी स्थिति प्रकट होने लग गयी। भाईजी का अपनी अगाधता के अनुरूप पूर्ण प्रयास था कि उनकी वृत्तियाँ जगत् के रूप में अभिव्यक्त भगवान् की सेवा में ही लगी रहें, जिससे उनकी महाभावमयी स्थिति का पता किसी को न लगे। पर वृत्तियाँ बलात् पहुँच जाती थीं उस लीला-राज्य में। यह एक अद्भुत विवशता थी। किसी संत के जीवन में ऐसा देखने, सुनने, पढ़ने को नहीं मिला कि जो संघर्षपूर्वक वृत्तियों को जगत् में लगाने का प्रयास करे और वृत्तियाँ बलात् लीला-राज्य में चली जायँ। भाईजी शौचालय से आकर मिट्टी से हाथ धो रहे हैं अथवा 'कल्याण' का गम्भीरता से सम्पादन कर रहे हैं या किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति से रुचि लेकर बात कर रहे हैं, पर वृत्तियाँ जागतिक धरातल छोड़कर लीला-सिन्धु में लीन हो गयीं। आँखें खुली हैं पर देखना बन्द है, कानों से सुनना बन्द, हाथ में कलम है तो वैसे ही पड़ी है। यह स्थिति १५ मिनट से लेकर १५-२० घंटे तक बनी रहती थी। इसके प्रत्यक्षदर्शी तो अनेक भाई-बहन अभी हैं। अस्तु!

ENGLISH TRANSLATION

Bhai Ji concealed his spiritual state for nearly twenty years. He wished to keep it hidden throughout his life, but this was not acceptable to his beloved Shri Krishna. During the final ten to twelve years of his life, his extraordinary state filled with mahabhava began to reveal itself. In keeping with his depth, Bhai Ji made every effort to keep his mental faculties engaged solely in the service of God as manifest in the world, so that no one would discover his state of mahabhava. Yet those faculties would forcibly reach that realm of divine pastimes. It was an astonishing helplessness. In the life of no saint has one seen, heard, or read of someone who struggles to direct his faculties into the world, while they are forcibly carried away into the realm of divine pastime. Bhai Ji might be washing his hands with earth after returning from the lavatory, seriously editing Kalyan, or speaking attentively with a distinguished person, yet his faculties would leave the worldly plane and become absorbed in the ocean of divine pastime. His eyes were open, but seeing ceased; hearing through the ears ceased; if a pen was in his hand, it simply remained there. This condition lasted from fifteen minutes to fifteen or twenty hours. Many brothers and sisters who witnessed it directly are still alive. So be it.

ORIGINAL

इस अवधि में एक परिवर्तन और हुआ। सन् १९२२ में जब भाईजी बम्बई में साधना में संलग्न थे, तभी श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका के कहने से सत्संग कराने लग गये थे। यह क्रम रुग्णावस्था को छोड़कर जीवनपर्यन्त चला। प्रवचन में कोई एक विषय न रहकर सभी विषयों का श्रोताओं के प्रश्नानुसार विवेचन होता था। पर अन्तिम १०-१२ वर्षों में प्रवचनों में अधिकांश प्रेम के स्तरों का, गोपीभाव का, राधाभाव का ही विवेचन रहता था। एक बार भाईजी स्वर्गाश्रम में थे। देहरादून के पास आनन्दमयी माँ का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। पू० माँ के अनुरोध पर भाईजी वहाँ पधारे। जब उनके बोलने का अवसर आया तो वृन्दावन के सुप्रसिद्ध संत पू० हरिबाबाजी ने निवेदन किया कि हम तो आपसे गोपी-प्रेम पर ही सुनना चाहते हैं। उस संत-सभा में गोपी-प्रेम पर ही विवेचन हुआ और संत मंत्रमुग्ध की तरह रस लेते रहे। ऐसा ही दूसरा प्रसंग भी स्वर्गाश्रम का ही है। भाईजी प्रवचन के लिये गीताभवन के हॉल में पधारे एवं तख्त पर पू० शरणानन्दजी, जिनका प्रवचन अभी समाप्त ही हुआ था, के पास बैठ गये। बहुत लोग प्रतिदिन की भाँति अपने प्रश्न कागज पर लिखकर भाईजी को देने लगे। वे उन्हें पढ़ने लगे। आवाज के आभास से पू० शरणानन्दजी समझ गये। उन्होंने हाथ बढ़ाकर सारे कागज भाईजी के हाथ से ले लिये और बोले, 'भाईजी, इन श्रोताओं के प्रश्नों का अंत तो कभी आयेगा नहीं। इनके प्रश्नों का उत्तर देने के लिये मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ। आप तो राधा-भाव पर बोलिये, वह हमें सुनने को कहाँ मिलेगा।'

ENGLISH TRANSLATION

Another change occurred during this period. In 1922, while Bhai Ji was absorbed in spiritual practice in Bombay, he began conducting satsang at the request of the revered Shri Jayadayal Ji Goyandka. Except during illness, this continued throughout his life. Rather than being confined to one topic, his discourses dealt with every subject in accordance with the listeners' questions. But in the final ten to twelve years, they were mostly expositions of the stages of love, of the mood of the gopis, and of Radha's mood. Once Bhai Ji was at Swargashram. Anandamayi Ma's birthday celebration was being held near Dehradun. At revered Ma's request, Bhai Ji came there. When it was time for him to speak, the celebrated saint of Vrindavan, revered Hari Baba Ji, submitted, 'We want to hear only about the love of the gopis from you.' In that assembly of saints, he spoke only on the love of the gopis, and the saints continued to relish it as though spellbound. A second incident likewise occurred at Swargashram. Bhai Ji came to the hall at Gita Bhavan to give a discourse and sat on the platform beside revered Sharananand Ji, whose discourse had just ended. As usual, many people began handing Bhai Ji slips bearing their written questions. He began to read them. From the sound, revered Sharananand Ji understood. Reaching out, he took all the slips from Bhai Ji's hand and said, 'Bhai Ji, there will never be an end to these listeners' questions. I alone am sufficient to answer them. You should speak on Radha-bhava; where else will we get to hear that?'

ORIGINAL

इससे भाईजी के विवेचन की गहनता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसा ही नहीं, एक दिन भाईजी स्वयं प्रवचन आरम्भ करने के पूर्व बोले, 'मनुष्य के मन में जो बात रहती है वही वाणी में आती है। मैं क्या करूँ, कहीं से भी प्रश्न का उत्तर शुरू करता हूँ तो थोड़ी ही देर में उस एक विषय पर ही पहुँच जाता हूँ। मेरी इस विवशता के लिये आप लोग क्षमा करें। यह मेरी लाचारी है।'

ENGLISH TRANSLATION

From this one may form some idea of the depth of Bhai Ji's exposition. Nor was this all. One day, before beginning a discourse, Bhai Ji himself said: 'Whatever remains in a person's mind is what comes into speech. What can I do? Wherever I begin answering a question, within a short time I reach that one subject alone. Please forgive me for this helplessness of mine. It is my compulsion.'

ORIGINAL

'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' के अतिरिक्त जो व्रजभाव की उपासना के विषय में वे प्रवचनों में बोले, उसी का संकलन इस पुस्तक में करने का लघु प्रयास है। उसका कोई अंश भी इसमें आ नहीं सका, यह तो केवल संकेत मात्र है। यदि उनके प्रवचनों में से ब्रज-भाव की उपासना सम्बन्धी सारी सामग्री एकत्रित की जाय तो संभवतः 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' जैसा एक ग्रन्थ और तैयार हो सकता है। प्रारम्भ में जो स्वरूप-वर्णन है, जिसमें प्रधानतया चरण-चिह्नों का विस्तृत वर्णन है, वह प्राचीन है पर अभी किसी पुस्तक में प्रकाशित नहीं हुआ। मेरा अध्ययन व्यापक नहीं है, पर कई अध्ययनशील महानुभावों से पूछने पर यही जानकारी मिली कि चरण-चिह्नों का ऐसा सजीव एवं हृदय-स्पर्शी विस्तृत वर्णन हिन्दी में कहीं पढ़ने में नहीं आया। इससे भगवान् के चरणों में मन लगाने की तो सुविधा है ही, साथ-ही-साथ आकर्षण भी बढ़ता है। साथ में कुछ ब्रज-भाव के उपासकों के व्यक्तिगत प्रश्नों के उत्तर, जो भाईजी से एकान्त में मिले, वे भी उन लोगों के कृपापूर्वक देने से सम्मिलित कर लिये हैं।

ENGLISH TRANSLATION

This book is a modest attempt to compile what, apart from Shri Radha-Madhava-Chintan, he said in his discourses about worship in the mood of Vraja. Not even a fraction of it could be included here; this is only an indication. If all the material concerning worship in the mood of Braj were collected from his discourses, perhaps another work like Shri Radha-Madhava-Chintan could be prepared. The description of the divine form at the beginning, chiefly a detailed description of the marks on the feet, is ancient, but has not yet been published in any book. My study is not extensive, but on asking several learned persons I learned that such vivid, heart-touching, detailed description of the foot-marks has not been read anywhere in Hindi. It not only makes it easier to fix the mind on the Lord's feet, but also increases attraction to them. Some answers to the personal questions of worshippers of the mood of Braj, received from Bhai Ji in private, have also been included through those persons' kindness in providing them.

ORIGINAL

मेरी ऐसी धारणा है कि इस सामग्री का अध्ययन, मनन, चिन्तन ब्रजभाव के उपासकों के लिये प्रेरणास्पद एवं सहायक होने के साथ ही सभी साधकों का मार्ग-दर्शन करेगा। संकलन में कोई त्रुटि रह गई हो तो उसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ एवं ध्यान में दिलाने पर सुधारने की चेष्टा की जायगी।

श्यामसुन्दर डुजारी

ENGLISH TRANSLATION

It is my belief that studying, reflecting upon, and contemplating this material will both inspire and assist worshippers of the mood of Braj, and will guide all spiritual aspirants. If any error has remained in the compilation, I ask forgiveness for it and will endeavour to correct it if it is brought to my attention.

Shyamsundar Dujari

ORIGINAL

विषय-सूची

1. भगवान्के दिव्य श्रीविग्रहके दर्शन १
2. भगवत्-लीला-चिन्तन कैसे हो ! ४०
3. गोपी-प्रेमकी भाव-तरंगें ४६
4. गोपी-प्रेमकी प्राप्तिका साधन है-भगवत्प्रेमीका संग ५७
5. भाव कैसे बढ़े ६२
6. अमोघ साधन ६४
7. भगवान्की प्रेम-परवशता ७१
8. समर्पणका आदर्श ८०
9. व्रज-भावकी उपासना सम्बन्धी प्रश्नोत्तर ८१
10. व्रज-भावकी उपासनाके लिये मन्त्र ८४
11. भगवान्की गोद सबके लिये खाली है ८५
12. भगवत्कृपा ९७
13. शरणागति ११०

ENGLISH TRANSLATION

Contents

1. Vision of the Lord's Divine Form 1
2. How Should One Contemplate the Lord's Līlā? 40
3. Waves of Feeling in the Gopīs' Love 46
4. Association with a Lover of God Is the Means to Attaining the Gopīs' Love 57
5. How Bhāva Grows 62
6. An Unfailing Spiritual Practice 64
7. The Lord's Subjection to Love 71
8. The Ideal of Surrender 80
9. Questions and Answers on the Worship of Vraja-bhāva 81
10. A Mantra for the Worship of Vraja-bhāva 84
11. The Lord's Lap Is Open to Everyone 85
12. Divine Grace 97
13. Surrender 110

CHAPTER 2

भगवान्के दिव्य श्रीविग्रहके दर्शन

Vision of the Lord's Divine Form

Source scan pages 8–46

ORIGINAL

श्रीहरिः

व्रज-भावकी उपासना

भगवान्के दिव्य श्रीविग्रहके दर्शन

ENGLISH TRANSLATION

Śrī Hariḥ

The Worship of Vraja-bhāva

Vision of the Lord's Divine Form

ORIGINAL

वास्तवमें भगवान्के रूपका वर्णन हो नहीं सकता। रूपकी स्मृतिमें मन लगाये बिना तो वर्णन सम्भव नहीं है और मन लग जानेपर वाणी रुक जाती है, फिर वर्णन कौन करे। ऐसी दशामें जो कुछ वर्णन किया जाता है, वह केवल बाह्य होता है। फिर भी इसी बहाने भगवच्चर्चा हो जाती है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। जो तत्त्वज्ञ पुरुष हैं, उनकी दृष्टिमें भगवान्के रूपकी चर्चा बहुत बाह्य मालूम होती है। वे भगवतत्त्वको इससे परे मानते हैं। असलमें यह बात नहीं है। भगवान्के श्रीअंग तत्त्वको साथ लिये हुए हैं, तत्त्वरहित नहीं हैं। अवश्य ही ये तत्त्व पाञ्चभौतिक नहीं हैं। भगवान्के अंग और उनका ज्ञान दो वस्तु नहीं है। स्वयं भगवान् ही अंग बने हुए हैं। हाँ, जिन लोगोंके लिये ये बातें बाह्य हैं, उनके लिये बाह्य ही हैं। केवल भक्तोंको ही, जो भगवान्के साकार विग्रहका दर्शन करना चाहते हैं, ये बातें रुचिकर प्रतीत होती हैं। ज्ञानमार्गी समझते हैं कि भगवान्के भी हाथ-पैर मनुष्यों-जैसे ही हैं। यदि इन्हींमें मन रहा तो हम तत्त्वसे वञ्चित ही रह जायेंगे। ऐसे लोग इस वर्णनको सुननेके अधिकारी भी नहीं हैं, यह बात नहीं है, किंतु उनका अधिकार दूसरी तरहका है। इन लोगोंकी दृष्टिमें भगवान्के साकार विग्रहकी पूजा-अर्चा करनेवाले मन्द अधिकारी हैं। इसलिये ये बातें उन लोगोंके कामकी नहीं हैं, केवल प्रेमियोंके कामकी हैं। ये बातें गोपनीय भी बहुत हैं, सर्वसाधारणके सामने करनेकी नहीं हैं, क्योंकि सर्वसाधारणको इन्हें सुनकर कोई विशेष लाभ नहीं होता, केवल कौतूहल-निवृत्ति होती है, कहना-सुननामात्र होता है। ये तो ध्यान करनेकी चीज हैं। भगवान्के श्रीअंगोंका ध्यान करनेसे उनकी दया होनेपर दर्शन भी हो सकते हैं। भगवान्के साकार विग्रहके दर्शन होते हैं, हो सकते हैं, यह बात बिल्कुल सत्य है, कल्पना नहीं। उनका वह विग्रह शुद्ध, चिन्मय, नित्य एवं दिव्य है। जिन्हें उस विग्रहके दर्शनकी चाह है और जो उससे लोभ समझते हैं, उन्हींके लिये ये बातें रुचिकर हो सकती हैं। जो इससे ऊपर भी कोई तत्त्व समझते हैं, वे इन बातोंके सुननेके अधिकारी नहीं हैं। असूया-दोषसे रहित होनेकी इसमें प्रथम आवश्यकता है। अर्जुनमें असूया-दोष नहीं है। यह विदित होनेपर ही भगवान्ने उनको अपना रहस्य समझाया। इसलिये ये बातें अन्तरंगोंमें ही करनेकी हैं, सबके सामने नहीं।

ENGLISH TRANSLATION

In truth, the Lord's form cannot be described. One cannot describe it without fixing the mind upon the remembrance of that form, and once the mind becomes absorbed, speech comes to a halt; who then can describe it? Whatever is described in such a state is only external. Yet, by this pretext, discourse about the Lord takes place; that is a great good fortune. To persons who know reality, discussion of the Lord's form appears very external. They regard the truth of God as beyond it. But this is not so. The Lord's beautiful limbs carry reality with them; they are not devoid of it. Certainly, this reality is not made of the five material elements. The Lord's limbs and knowledge of Him are not two different things. The Lord Himself has become those limbs. Yes, for people to whom these matters are external, they remain external. These matters seem delightful only to devotees who wish to behold the Lord's manifest form. Followers of the path of knowledge think that the Lord's hands and feet are like those of human beings. If the mind remains fixed on these alone, we shall indeed be deprived of the truth. This does not mean that such people have no right to hear this description; rather, their qualification is of another kind. In their view, those who worship the Lord's manifest form are of lesser qualification. Therefore these matters are not for them; they are only for lovers of God. They are also highly confidential and should not be spoken before the general public, for ordinary people receive no special benefit from hearing them; their curiosity is merely satisfied, and it remains only talk and hearing. These are things to be meditated upon. By meditating on the Lord's beautiful limbs, one may, through His mercy, receive His vision. The vision of the Lord's manifest form does occur and can occur; this is wholly true, not imagination. That form is pure, conscious, eternal, and divine. These matters can delight only those who long to see that form and understand it as an object of sacred longing. Those who conceive a reality even higher than this are not qualified to hear them. The first requirement here is freedom from the fault of envy. Arjuna was free from that fault. Only after knowing this did the Lord explain His secret to him. Therefore these matters are to be discussed only among intimates, not before everyone.

ORIGINAL

भगवान्‌के अंगोंमें दो प्रधान हैं, मुखारविन्द और चरणारविन्द; मुखकी अपेक्षा भी भगवान्‌के चरण भक्तोंको अधिक प्रिय हैं; उन्हें देखकर भक्तलोग अघाते ही नहीं। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि मुख कम प्रिय है। बात यह है कि मुख चरणोंके पीछे आता है, इसलिये भक्तोंको चरणोंकी चाह अधिक होती है। चरणोंकी महिमा बहुत बड़ी है। उसका वर्णन कौन कर सकता है। जिन चरणोंके धोवनने शिवको शिव बना दिया, जो पवित्रोंको भी पवित्र बनानेवाले हैं, उन चरणोंकी महिमा कौन कह सकता है। तीर्थोंका महात्म्य इसीलिये है कि उनपर भगवान्‌के चरण टिके थे। भगवान्‌के श्रीचरणोंसे अंकित भूमिको देखकर ही बूढ़े अक्रूर प्रेम-विभोर होकर रथसे उतर पड़े और लगे उन पद-चिह्नोंपर लोटने। उन पद-चिह्नोंपर लोटनेमें उन्हें भगवान्‌के आलिंगनका सुख मिला। भगवान्‌के उभरे हुए लाल-लाल पद-नखोंका प्रकाश जिसने एक बार भी देख लिया, उसके हृदयका अन्धकार सदाके लिये दूर हो गया। उन नखोंमें लाखों चन्द्रमाओंकी द्युति है। उनका प्रकाश कभी घटता-बढ़ता नहीं; उसमें कहीं नाममात्रको भी कलंककी कालिमा नहीं है। वह सदा एकरस रहता है। चन्द्रमाकी चाँदनी तो कृष्णपक्षमें लुप्त रहती है। और तो और, जिस भाग्यवान्‌ने एक बार उन चरणोंका पृथ्वीपर पड़ा हुआ चिह्न भी देख लिया, वह मुक्त हो गया।

ENGLISH TRANSLATION

Among the Lord's limbs, two are foremost: His lotus face and lotus feet. The feet are even dearer to devotees than the face; devotees are never satiated by seeing them. This should not be taken to mean that the face is less dear. The point is that the face comes after the feet, and therefore devotees yearn more for the feet. The glory of the feet is immense. Who can describe it? Who can tell the glory of those feet whose washing made Śiva truly Śiva, and which make even the pure more pure? Holy places have their sanctity because the Lord's feet rested upon them. At the sight of ground marked by the Lord's beautiful feet, aged Akrūra descended from his chariot, overwhelmed with love, and began to roll upon those footprints. In rolling upon them he experienced the bliss of the Lord's embrace. Whoever has even once seen the light of the Lord's raised, red toenails has had the darkness of the heart removed forever. Those nails contain the radiance of millions of moons. Their light never waxes or wanes; it has not even the slightest dark stain of blemish. It is forever uniform. Moonlight disappears in the dark fortnight. Indeed, the fortunate person who has once seen even a mark of those feet impressed upon the earth has attained liberation.

ORIGINAL

कई वर्ष पूर्व काशीकी एक बंगाली महिलाको भगवान्‌के चरण-चिह्नोंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनका छायाचित्र उसके पास अब भी है। एक दिन होलीकी रातमें उसने यह स्वप्न देखा कि भगवान् मानो उससे कह रहे हैं कि मैं फाग खेलना चाहता हूँ। दूसरे दिन उस महिलाने रातके समय मन्दिरमें अपने उपास्यदेवकी मूर्तिके समीप कुछ अबीर एक पात्रमें रखवा दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब मन्दिरके द्वार खोले गये तो निज मन्दिरमें गुलाल फर्शपर बिखरा हुआ मिला और उसपर छोटे-छोटे चरणचिह्न दिखायी दिये, जिससे यही अनुमान होता था कि रातको वहाँ गुलालसे किसीने फाग खेला है।

ENGLISH TRANSLATION

Several years ago, a Bengali woman in Kāśī received the good fortune of seeing the Lord's footprints. She still possesses their photograph. One night during Holī, she dreamed that the Lord seemed to be telling her, “I wish to play phāga.” The next night she had some abīra placed in a vessel near the image of her chosen Deity in the temple. When the temple doors were opened the following morning, gulāl was found scattered on the floor of the inner shrine, with tiny footprints visible upon it. From this it appeared that someone had played phāga there with gulāl during the night.

ORIGINAL

भगवान्‌के चरण-तलमें चार प्रधान चिह्न हैं: वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल। पर भक्तोंने इन चिह्नोंकी संख्या समय-समयपर १०८ तक गिनी है। ये चिह्न हमलोगोंकी भाँति रेखाओंकी आकृतिके नहीं हैं, अपितु ज्यों-के-त्यों दिखायी देते हैं। उदाहरणतः कमलका चिह्न ठीक खिले हुए कमलके आकारका है, जो वास्तविक कमल-सा ही मालूम होता है। उसमें सोलह दल हैं। भगवान्‌के भिन्न-भिन्न विग्रहोंके चरणगत कमलोंमें वर्ण और दलोंकी संख्यामें अन्तर है। भगवान् श्रीकृष्णके पाद-तलके कमलमें सोलह दल हैं; उसका रंग ललाई लिये हुए गुलाबी है। ये चारों चिह्न पादतलके बीचके गहरे भागके चारों ओर अवस्थित हैं; इन्हींके बीचमें व्याधने बाण मारा था। एड़ीके ऊपरके भागमें कमल है। उसके ऊपर वज्र है। कमलके पार्श्वमें अंकुश है और ऊपर ध्वजा है। भगवान्‌के सभी चरण-चिह्न सब समय नहीं दिखायी देते। जो-जो दीखते हैं वे भलीभाँति प्रकाशयुक्त दीखते हैं। उनकी शोभाका वर्णन कुछ नहीं किया जा सकता। लाल रंगपर ये भिन्न-भिन्न वर्णके चिह्न अतीव मनोहर मालूम होते हैं। कहीं हरा, कहीं पीला, कहीं सफेद और कहीं श्याम। ये सब-के-सब रंग एक साथ अलग-अलग मिलकर अलौकिक शोभाको धारण करते हैं। कमलका रंग यों तो लाल है, परंतु उसमें सफेदी, पीलापन और नीलिमा भी है। इन सब रंगोंमेंसे अलग-अलग आभा निकलती है और एक-दूसरेपर पड़ती है। चरणतलोंकी एक अद्भुतता और है। वह यह है कि उनमें सारे लोकालोक तथा देवता दिखायी देते हैं। वे एक ऐसे दर्पण हैं, जिनपर सारे विश्वका प्रतिबिम्ब पड़ता है। भगवान् अखिल विश्वको अपने चरणोंमें लिये हुए घूमते हैं। उनके अंदर इच्छा होने पर शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि सब देवता दिखायी दे सकते हैं। यहाँ किसीके मनमें यह शंका हो सकती है कि यह सब गप क्यों मार रहा है। इसका उत्तर यही है कि जबतक यह वस्तु दृष्टिपथमें नहीं होती तबतक हम लोगोंकी दृष्टिमें यह सब गप ही है। अस्तु! ये चारों चिह्न इतने उभरे हुए हैं कि भगवान्‌के चरण जिस भूमिपर पड़ते हैं वहाँकी धूलिमें ये चारों चिह्न अवश्य अंकित हो जाते हैं; दूसरे चिह्न नहीं होते।

ENGLISH TRANSLATION

There are four principal marks on the soles of the Lord's feet: the thunderbolt, elephant-goad, banner, and lotus. Devotees, however, have at various times counted as many as 108 marks. These are not merely outlines like the marks we draw; they appear in their actual forms. For example, the lotus mark is shaped exactly like a blossomed lotus and looks like a real lotus. It has sixteen petals. The color and number of petals of the lotuses on the feet differ according to the Lord's various forms. The lotus on the sole of Lord Śrī Kṛṣṇa has sixteen petals and is pink tinged with red. These four marks are situated around the hollow in the middle of the sole; it was between them that the hunter shot his arrow. Above the heel is the lotus; above it is the thunderbolt. Beside the lotus is the goad, and above is the banner. Not all the Lord's foot-marks are visible at all times. Whatever marks appear are seen shining clearly. Their beauty cannot be described. Against the red color, these marks of various hues appear exceedingly lovely: some green, some yellow, some white, and some dark. All these colors, joining together while remaining distinct, assume a supernatural splendor. The lotus is generally red, yet it also contains whiteness, yellowness, and blueness. A separate radiance issues from each of these colors and falls upon the others. There is another wonder of the soles: all worlds and their inhabitants, and the gods, are visible in them. They are mirrors in which the whole universe is reflected. The Lord moves about bearing the entire universe in His feet. If He wills, Śiva, Viṣṇu, Brahmā, Indra, and all the other gods may be seen within them. Someone may wonder, “Why is he telling such tall tales?” The answer is simply that until this reality comes within our sight, it appears to us as mere tale-telling. In any case, these four marks are so raised that wherever the Lord's feet touch the ground, all four are necessarily impressed in its dust; the other marks are not.

ORIGINAL

बंगालमें एक अस्त्र होता है, जिसे दाव कहते हैं। वज्रकी आकृति करीब-करीब दावकी-सी होती है, यद्यपि दावकी आकृति उतनी सुन्दर नहीं होती। वज्र दावकी अपेक्षा अधिक पतला और चमकदार होता है। शेषनागके फणसे भी उसकी आकृति मिलती है। उसका रंग बिल्कुल सफेद है। बिल्कुल सफेद भी आपेक्षिक दृष्टिसे कहा जाता है; क्योंकि बिल्कुल सफेद तो वास्तवमें अवर्ण होता है, वह दिखायी ही नहीं देता। श्वेत वर्णमें भी कोई-न-कोई वर्ण अवश्य मिला रहता है। शिवजीको रात्रि-कर्पूर-वर्ण पाया गया है, पर उनके वर्णमें भी कुछ ललाई मिली हुई रहती है। हाँ, अन्यकी अपेक्षा वह सर्वथा श्वेत माना गया है। वज्रके वर्णमें भी कुछ ललाई रहती है। इसीके आकारका आश्रय लेकर इन्द्रने वृत्रासुरको मारनेके लिये दधीचिकी हड्डियोंसे विश्वकर्माके द्वारा प्राकृतिक वज्र बनवाया था। इससे पहले वज्र नहीं था, सो बात नहीं है। हाँ, इससे पहले वह गुप्त था, प्रकाशमें नहीं आया था। वज्र नाम भी पहलेसे मौजूद था। वृत्रासुर भगवान्‌का अनन्य भक्त था। वह अपने इष्टदेवके चरणचिह्नको सामने आते देख कृतार्थ हो गया। उसका अस्त्र वहीं शान्त हो गया। विष्णुका मंत्र कुण्ठित हो गया। अस्तु! वज्रका वर्ण शिवजीका-सा है। भगवान् शिव ही वज्र बने हुए हैं। जिस प्रकार शिवजीके वर्णमें कुछ-कुछ लालिमा रहती है, उसी प्रकार सूर्यबिम्बके वर्णमें नीलिमा रहती है; क्योंकि वह भगवान् विष्णुका ही अंश है। विष्णुकी बारह आदित्योंमें गणना है। भगवान्‌के ये सभी चिह्न तेजःपुञ्ज हैं। अंकुशका वर्ण श्याम है। उसकी आकृति लौकिक अंकुशकी-सी ही है। ध्वजाका वर्ण पीत है।

ENGLISH TRANSLATION

In Bengal there is a weapon called a dāva. The thunderbolt is shaped roughly like a dāva, though the dāva is not so beautiful in form. The thunderbolt is thinner and more lustrous. Its form also resembles the hood of Śeṣanāga. Its color is completely white. Yet “completely white” is said only relatively, for absolute whiteness is in fact colorless and cannot be seen. Some color is necessarily mingled even with white. Śiva is described as having the color of night-blooming camphor, but even his complexion contains a trace of redness. Still, in comparison with others he is considered entirely white. The thunderbolt's color also contains a little redness. Taking this form as its model, Indra had Viśvakarmā fashion a material thunderbolt from Dadhīci's bones in order to kill Vṛtrāsura. This does not mean that there was no thunderbolt before then. Rather, it had previously been hidden and had not come into manifestation. The name thunderbolt also existed beforehand. Vṛtrāsura was the Lord's exclusive devotee. On seeing the mark of his chosen Lord's foot before him, he became fulfilled. His weapon became still at once. Viṣṇu's mantra was rendered ineffective. In any event, the thunderbolt's color is like Śiva's. Lord Śiva Himself has become the thunderbolt. Just as Śiva's complexion contains some redness, the orb of the sun contains blueness, because it is a portion of Lord Viṣṇu. Viṣṇu is counted among the twelve Ādityas. All these marks of the Lord are masses of splendor. The elephant-goad is dark in color and has the same shape as a worldly goad. The banner is yellow.

ORIGINAL

यहाँ यह बात समझ लेनेकी है कि संसारमें जो कुछ है, सो भगवान्‌के परमधामकी नकल है। यह मानना सरासर भूल है कि भक्तोंने यहाँकी वस्तुओंको देखकर वहाँकी वस्तुओंकी कल्पना कर ली है। यद्यपि यहाँकी वस्तुएँ मायिक हैं, किन्तु नमूना वहींका है। यहाँकी जो विशिष्ट विभूतियाँ हैं उनमें वहाँके नमूनेकी ही विशेषता है। संसारमें नया आविष्कार कुछ नहीं होता। अप्रकाशित वस्तुओंका ही अंशतः प्रकाश होता है। रेडियो पहले नहीं था, सो नहीं है; पहले वह अप्रकट था, अब प्रकट हो गया। रेडियोसे भी परे न मालूम कितनी शक्तियाँ हैं जो इस समय अप्रकट हैं और रेडियोकी ही भाँति कालान्तरमें प्रकट हो सकती हैं। औषधियोंमें न मालूम कितनी औषधियाँ अब भी ऐसी हैं जिनके गुण हमें अभी नहीं मालूम हैं। सृष्टिमें नया बीज कोई नहीं बनता, छिपी हुई वस्तु प्रकट होती है। योगी भी बीज नहीं बना सकता। भगवान्‌के नित्यधामकी ही छाया यहाँ हमें देखनेको मिलती है। आविष्कारकी सारी कल्पनाएँ मूर्तरूपसे वहाँ मौजूद हैं। भगवान्‌का श्रीविग्रह मनुष्यका-सा होनेपर भी उससे सर्वथा विलक्षण है। प्रकृतिका सारा सौन्दर्य भगवान्‌के विग्रहकी छायामात्र है। जब छायामें इतना सौन्दर्य है तब कायामें कितना होगा, इसका हम अनुमान नहीं कर सकते।

ENGLISH TRANSLATION

One should understand this: whatever exists in this world is an imitation of the Lord's supreme abode. It is wholly mistaken to think that devotees saw things here and imagined corresponding things there. Although things here are māyic, their model is there. The outstanding excellences found here have the distinction of that original model. Nothing genuinely new is invented in the world. Things not yet manifest merely become partly manifest. It is not that radio did not exist before; it was formerly unmanifest and has now become manifest. Beyond radio there are who knows how many powers now unmanifest that may appear in time, just as radio did. Who knows how many medicines still exist whose properties are not yet known to us. No new seed is created in the cosmos; something hidden becomes manifest. Even a yogī cannot create a seed. What we see here is only the reflection of the Lord's eternal abode. Every conception of invention exists there in concrete form. Though the Lord's beautiful form resembles a human form, it is altogether unlike it. All the beauty of nature is only a shadow of the Lord's form. If the shadow has such beauty, we cannot imagine how much beauty the original body possesses.

ORIGINAL

भगवान्‌का नित्यधाम उनके चरणोंमें है। उनके चरण भी नित्य हैं। धाम भी नित्य है और स्वयं भगवान् भी नित्य हैं। धाम उनके चरणोंमें है और वे स्वयं धामके अंदर विराजमान रहते हैं। वास्तवमें उनका धाम और वे एक ही वस्तु हैं, पृथक्-पृथक् नहीं। नित्यधाम यद्यपि एक-एक है, तथापि विग्रहके अनुसार उनमें परस्पर भेद है। उन भेदोंमें कोई अंशी और कोई अंश हों, सो बात नहीं है। श्रीरामके चरणोंमें साकेतके ही दर्शन हो सकते हैं, श्रीकृष्णके चरणतलमें गोलोकके और श्रीविष्णुके चरणतलमें वैकुण्ठके ही दर्शन हो सकते हैं। यही विशेषता है। जिसने भगवान्‌के चरणोंको पा लिया, उसने सब प्रकारके ऐश्वर्य, विभूति, ज्ञान-वैराग्य और मुक्तितकको पा लिया। उनके चरणोंका प्रकाश उनके अनुगत भक्तोंमें उतर आता है। चरणोंकी आवश्यकता सभी भक्तोंको होती है और उन्हें प्राप्त करनेका अधिकार भी सभी भक्तोंको होता है। चरणोंसे ही अन्य अंगोंकी भी प्राप्ति हो सकती है। चरणोंको हृदयपर रखनेका अधिकार केवल भगवान्‌की प्रेयसियोंको ही प्राप्त है।

ENGLISH TRANSLATION

The Lord's eternal abode is in His feet. His feet too are eternal. The abode is eternal, and the Lord Himself is eternal. The abode is in His feet, and He Himself resides within that abode. In truth, His abode and He are one reality, not separate. Although each eternal abode is one, there are distinctions among them according to the form of the Lord. These distinctions do not mean that one is a whole and another a part. In Śrī Rāma's feet only Sāketa may be seen; in Śrī Kṛṣṇa's soles, only Goloka; and in Śrī Viṣṇu's soles, only Vaikuṇṭha. This is their distinctive feature. Whoever obtains the Lord's feet obtains every kind of sovereignty, opulence, knowledge, detachment, and even liberation. The radiance of His feet descends into His devoted followers. All devotees need the feet, and all have the right to attain them. Through the feet, the other limbs too may be attained. Only the Lord's beloved consorts have the right to place His feet upon their hearts.

ORIGINAL

चरणोंकी महिमा कहाँतक कहें, जिन रजःकणोंसे उनका स्पर्श हो जाता है, वे रजःकण दिव्य हो जाते हैं। उन रजःकणोंके स्पर्शसे सारी जड़ता नष्ट हो जाती है, सारी अविद्या, अज्ञान, तप, मोक्षका नाश हो जाता है। उस रजकी तो बात ही क्या है, उस रजके कारण महत्त्वको प्राप्त हुए भक्तोंकी चरण-रजके लिये भी देवतालोग तरसते रहते हैं। श्रीगोपिकाओंकी चरणरजकी कामना ब्रह्मादि देवताओंने की है। देवता पशु-पक्षी बनकर भगवान्की चरणरजमें लोटते हैं। वहाँ प्रकटमें आनेका उनको अधिकार न होनेके कारण वे छिपकर आते हैं और उस धूलिके एक-एक कणके लिये लालायित होते हैं। ज्ञानाभिमानियोंको वह धूलि नहीं मिलती। श्रीमद्भागवतमें इन्हें तुषावघाती अर्थात् भूसी कूटनेवाला कहा है। जिनके अंदर भगवत्प्रेम खिलनेवाला होता है, जिनका उन चरणोंमें विश्वास है, उन भाग्यवानोंको भगवान्के किसी अनुगत भक्तकी चरणरज प्राप्त होती है। उस चरणरजकी कहाँतक महिमा कहें। उन कणोंको भगवान्के चरणचिह्नोंका स्पर्श मिल जानेसे उनमें आसुरभावोंको मारनेकी शक्ति आ जाती है। अंकुशमें मदोन्मत्त हाथीको वशमें करनेकी शक्ति होती है। अतः उस अंकुश-चिह्नयुक्त रजःको मस्तकपर छिड़कनेसे मनरूप मस्त हाथी वशमें हो जाता है। कमलके स्पर्शमें आये हुए रजःकणसे ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है, क्योंकि कमल ज्ञानका ही स्वरूप है। वज्रके स्पर्शसे आये हुए रजःकणसे पापोंका नाश होता है। ध्वजा विजयकी सूचक है। अतः उसके स्पर्शमें आये हुए रजःकणसे परमसिद्धिरूप विजय प्राप्त होती है। उसके अंदर पाप, विषयोंकी आसक्ति और अज्ञान नहीं रहता। ये धूलिकण बाह्यरूपमें भी जड़ नहीं रह जाते, कठोर नहीं होते, अपितु ज्योतिर्मय हो जाते हैं। उनका स्पर्श परम शीतल और सुखद होता है। उन्हें छूनेसे ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसी चेतन पदार्थसे स्पर्श हुआ हो। भरतको भगवान् श्रीरामकी चरणरजके स्पर्शसे स्वयं भगवान्के आलिंगनका बोध हुआ।

ENGLISH TRANSLATION

How far can the glory of the feet be described? The particles of dust touched by them become divine. By the touch of those particles, all inertness is destroyed, and all nescience, ignorance, austerity, and liberation are destroyed. What then need be said of that dust itself? Even the gods long for the foot-dust of devotees who have attained greatness through that dust. Brahmā and the other gods have desired the foot-dust of the gopīs. The gods become animals and birds and roll in the Lord's foot-dust. Since they have no right to appear openly there, they come secretly, longing for every particle of that dust. Those proud of knowledge do not obtain it. The Śrīmad Bhāgavata calls them tuṣāvaghātī, one who pounds husks. Fortunate persons in whom divine love is about to blossom, and who have faith in those feet, receive the foot-dust of one of the Lord's devoted followers. How far can its glory be described? When these particles touch the Lord's foot-marks, they acquire the power to destroy demonic dispositions. An elephant-goad has the power to control an intoxicated elephant; therefore, when dust bearing the goad-mark is sprinkled on the head, the intoxicated elephant of the mind comes under control. From a dust-particle touched by the lotus, knowledge is gained, for the lotus is the very form of knowledge. From a particle touched by the thunderbolt, sins are destroyed. The banner signifies victory; therefore, from a particle touched by it, one receives the victory that is supreme perfection. Within such a person there remains no sin, attachment to sense-objects, or ignorance. These particles of dust no longer remain inert even outwardly; they are not hard, but become luminous. Their touch is supremely cool and pleasing. On touching them, one feels as though one had touched a conscious substance. By the touch of Lord Śrī Rāma's foot-dust, Bharata experienced the Lord's own embrace.

ORIGINAL

भगवान् जब पृथ्वीतलपर साक्षात् अवतीर्ण होते हैं, तब उनके साथ ही उनका नित्यधाम भी पृथ्वीतलपर उतर आता है और उनके साथ वापस भी चला जाता है। आजकलकी अयोध्या और आजकलका वृन्दावन वह अयोध्या और वह वृन्दावन नहीं हैं, जो उस समय थे। ये तो उनकी नकलमात्र हैं और पीछेसे साधनाके लिये कल्पित किये गये हैं। अयोध्याको तो भगवान् अपने साथ ही ले गये, ऐसा वर्णन मिलता है। हाँ, उनके साथ इनका स्पर्श होनेके कारण तथा नाम एक होनेके कारण ये भी अति पवित्र हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। भगवान्की चरणरजका जिनको स्पर्श हो जाता है, वे धन्य हो जाते हैं, महात्मा बन जाते हैं। जिनको ऐसे महात्माओंकी भी चरणधूलि मिल जाती है, वे भी धन्य हो जाते हैं। भागवतमें लिखा है: 'विना महत्पादरजोऽभिषेकम्': ऐसे महात्माओंकी चरणधूलिको मस्तकपर छिड़के बिना कल्याण नहीं होता। इससे वास्तवमें भगवान्की ही महिमा सूचित होती है। भगवान्का नाम भगवान्से बड़ा इसलिये है कि वह भगवान्का ही नाम है। 'राम न सकहिं नाम गुन गाई।' इससे वास्तवमें रामकी ही महिमा द्योतित होती है। जिस राजाके पास इतनी सम्पत्ति हो कि उसका स्वयं राजाको भी पता न हो, तो वह राजा कितना बड़ा होगा। इसी प्रकार जिस रामके नाममें इतनी अपार सामर्थ्य है कि स्वयं राम भी उसका वर्णन नहीं कर सकते, उन रामकी महिमाका क्या ठिकाना है। रामके दासको इसीलिये रामसे बड़ा कहा गया है कि वह रामका दास है। भगवान् अपने अनुगत भक्तके सम्बन्धमें कहते हैं: 'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः': मैं अपने उन भक्तोंके पीछे-पीछे नित्य, एक-आध रोज नहीं, इसलिये घूमता हूँ कि उनकी चरणरजसे मैं पवित्र हो जाऊँ। जिन भगवान्की चरणधूलिको प्राप्त किये हुए भक्तोंकी यह महिमा है, उन भगवान्की चरणधूलिकी कितनी महिमा है, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। भगवान्ने भक्त सुदामाके चरणोंको धोकर उनके चरणोदकको स्वयं ही नहीं लिया, अपितु अपनी सारी पटरानियोंको पिलाया और फिर उसे महलभरमें ऊपर-नीचे सब जगह छिड़कवाया। जिन विष्णुके पादोदकके पान करनेसे मनुष्य पुनर्जन्मसे छूट जाता है, उन विष्णुने स्वयं अपने भक्तके चरणोदकका माहात्म्य बतलानेके लिये ही पान किया। उन्हीं भगवान्के चरणोदकका पान करके केवट स्वयं अपने परिवारसहित तर जाये, इसमें तो आश्चर्य ही क्या; उसने अपने पूर्वजोंतकको अपार भवसागरसे पार कर दिया।

ENGLISH TRANSLATION

When the Lord visibly descends upon the earth, His eternal abode descends to earth with Him and returns with Him as well. Present-day Ayodhyā and present-day Vṛndāvana are not that Ayodhyā and Vṛndāvana which existed then. They are only replicas, conceived later for spiritual practice. Accounts say that the Lord took Ayodhyā away with Him. Yet because these places were touched by Him and bear the same names, they too are exceedingly sacred; of this there is no doubt. Those touched by the Lord's foot-dust become blessed and become great souls. Those who receive even the foot-dust of such great souls also become blessed. The Bhāgavata says, “vinā mahat-pāda-rajo-'bhiṣekam”: without sprinkling the foot-dust of such great souls upon one's head, there is no welfare. This in fact indicates the Lord's own glory. The Lord's name is greater than the Lord because it is the Lord's own name. “Rāma cannot sing the virtues of the Name.” This in fact manifests Rāma's glory. If a king possesses such wealth that even the king himself does not know of it, how great that king must be. Similarly, if Rāma's name possesses such immeasurable power that Rāma Himself cannot describe it, what limit can there be to Rāma's glory? Rāma's servant is called greater than Rāma precisely because he is Rāma's servant. Regarding His devoted followers, the Lord says: “anuvrajāmy ahaṁ nityaṁ pūyeyety aṅghri-reṇubhiḥ”: I constantly follow behind those devotees, not merely for a day or two, so that I may be purified by the dust of their feet. If devotees who have received the Lord's foot-dust possess such glory, the greatness of the Lord's own foot-dust cannot be estimated. The Lord washed the feet of His devotee Sudāmā and not only drank that foot-water Himself, but gave it to all His queens to drink and had it sprinkled everywhere, above and below, throughout the palace. Human beings are freed from rebirth by drinking the foot-water of Viṣṇu; Viṣṇu Himself drank the foot-water of His devotee only to proclaim its greatness. What wonder, then, that by drinking that very Lord's foot-water the boatman Kevaṭa was delivered with his family? He carried even his ancestors across the boundless ocean of worldly existence.

ORIGINAL

भगवान्‌का पद्मके साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनके चरण, कर, नेत्र, नाभि, मुख सभी अंगोंको पद्मकी उपमा दी गयी है। उनकी नाभि-कमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति मानी गयी है। उनके दिव्य विग्रहका गन्ध भी पद्मके गन्ध-सा ही है, यद्यपि वह गन्ध लौकिक पद्म-गन्धसे विलक्षण है।

ENGLISH TRANSLATION

The Lord has a very intimate relation with the lotus. His feet, hands, eyes, navel, and face, all His limbs, are compared with the lotus. Brahmā is said to have arisen from the lotus of His navel. The fragrance of His divine form is also like the fragrance of a lotus, though it is distinct from the fragrance of a worldly lotus.

ORIGINAL

भगवान्‌के चरणका विस्तार चौदह अंगुल माना जाता है। यहाँ यह शंका हो सकती है कि चौदह अंगुल परिणामके चरणतलमें सारा विश्व कैसे समा जाता है। बात यह है कि जब भगवान्‌के संकल्पमें सारी सृष्टि समायी रहती है, फिर उनके चरणोंमें विश्व रहे, इसमें कौन आश्चर्यकी बात है। यही है योगेश्वरका योग। चरणचिह्नकी संख्या कुछ लोगोंने ३२, कुछने ३६, कुछ लोगोंने ५६, कुछ लोगोंने ६४ और कुछ लोगोंने १०८ मानी है, जिनमेंसे चार प्रधान चिह्नोंका संक्षिप्त वर्णन ऊपर हो चुका। ये चार चिह्न श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीविष्णु सभी विग्रहोंमें रहते हैं। शेष चिह्नोंमें कुछ आयुध हैं, जैसे धनुष, बाण, असि, बरछी, शक्ति, शूल, गदा तथा चक्र; यह विष्णु भगवान्‌का चिह्न है। पशुओंमें अश्व, हाथी और हरिण हैं; नक्षत्रोंमें सूर्य तथा चन्द्र हैं; ऋषियोंमें नारद हैं; पुष्पोंमें दिव्य पुष्प; जलचरोंमें मीन; सर्पोंमें शेषनाग; पक्षियोंमें गरुड़; वाहनोंमें रथ; फलोंमें कदम्बका फल; स्वर्गके पदार्थोंमें उर्वशी, कामधेनु और कल्पवृक्ष; पर्वतोंमें सुमेरु; यहाँके वृक्षोंमें अश्वत्थ; राजचिह्नोंमें छत्र और सिंहासन; वस्त्रोंमें पीताम्बर; आभूषणोंमें बाजूबन्द; वाद्योंमें मुरली और वीणा; पात्रोंमें स्वर्णकुम्भ और देवताओंमें ब्रह्मा हैं। इनके अतिरिक्त स्वस्तिक, अग्निकुण्ड, बलि, ऊर्ध्वरेख, त्रिकोण, अष्टकोण, नवकोण, दर्पण, घंटिका, महल, शङ्ख, तिल एवं जौके चिह्न हैं। तिल, अथवा स्वधा, पितृलोकका प्रतीक है और स्वाहा देवलोकका प्रतीक है। इनके अतिरिक्त भगवान्‌के चरणोंमें एक और विशेषता यह है कि उनके दाहिने चरणमें उनकी शक्ति रहती हैं: श्रीकृष्णके चरणमें श्रीराधा, श्रीरामके चरणमें श्रीजानकी और श्रीविष्णुके चरणमें श्रीलक्ष्मी। और इनका आकार इन सारी वस्तुओंका बना हुआ रहता है। चक्र, चामर, लता आदिके चिह्न श्रीराधिकाजीके चरणोंमें रहते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

The extent of the Lord's foot is held to be fourteen aṅgulas. One may wonder how the whole universe can fit within a sole measuring fourteen aṅgulas. The answer is that when all creation abides in the Lord's resolve, what wonder is there if the universe abides in His feet? Such is the yoga of the Lord of yoga. Some have counted 32 foot-marks, some 36, some 56, some 64, and some 108; a brief account of the four principal marks has already been given. These four marks are found in every form of Śrī Rāma, Śrī Kṛṣṇa, and Śrī Viṣṇu. Among the remaining marks are weapons such as the bow, arrow, sword, spear, śakti, trident, mace, and discus, the latter being the mark of Lord Viṣṇu. Among animals are the horse, elephant, and deer; among luminaries, the sun and moon; among sages, Nārada; among flowers, divine flowers; among aquatic creatures, the fish; among serpents, Śeṣanāga; among birds, Garuḍa; among vehicles, the chariot; among fruits, the kadamba fruit; among heavenly objects, Urvaśī, Kāmadhenu, and the wish-fulfilling tree; among mountains, Sumeru; among trees here, the aśvattha; among royal emblems, the parasol and throne; among garments, the yellow garment; among ornaments, the armlet; among instruments, the flute and vīṇā; among vessels, the golden pot; and among gods, Brahmā. In addition there are marks of the svastika, fire-pit, bali, vertical line, triangle, octagon, nonagon, mirror, little bell, palace, conch, sesame, and barley. Sesame, or svadhā, signifies the world of the ancestors, and svāhā signifies the world of the gods. The Lord's feet have one further distinction: in His right foot resides His śakti: Śrī Rādhā in Śrī Kṛṣṇa's foot, Śrī Jānakī in Śrī Rāma's foot, and Śrī Lakṣmī in Śrī Viṣṇu's foot. Their forms are made in the shapes of all these objects. Marks such as the discus, yak-tail fan, and creeper are found on the feet of Śrī Rādhikā.

ORIGINAL

कोई यह कहे कि छोटे-से चरणोंमें ये सब चीजें यथास्थान अपने-अपने आकारमें कैसे रहती हैं, तो इसका उत्तर यह है कि इस प्रकारकी बात तो प्राकृतिक संसारमें भी सम्भव है। उदाहरणतः हम एक छोटे-से प्लेटमें बड़े-से-बड़े मकान, पहाड़, नदी, समुद्र आदिका भी फोटो ले सकते हैं और उस प्लेटके अंदर मकान आदिका आकार बहुत छोटा होनेपर भी देखनेमें बहुत बड़ा लगता है। जब भौतिक संसारमें भी ऐसी बात सम्भव है, तब भगवान्‌के लिये कौन-सी बात असम्भव है। जिनकी मायाको ही शास्त्रोंमें अघटन-घटनापटीयसी आदि विशेषणोंसे विशेषित किया है, वे आकाशमें अनवकाश और अनवकाशमें अवकाश कर सकते हैं। वे भ्रूविलास-मात्रसे सृष्टिको रचा देते हैं और फिर उसी प्रकार उसे अपनेमें विलीन कर लेते हैं। वे चाहें तो एक सूईके छेदमेंसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंको ज्यों-का-त्यों निकाल सकते हैं। ऐसा करनेके लिये उन्हें सूईके छिद्रको बड़ा करने अथवा ब्रह्माण्डोंके आकारको छोटा करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। यही तो उनका ऐश्वर्य है। इस प्रकारकी कुछ आंशिक सिद्धियाँ तो योगियोंतकमें पायी जाती हैं। जैसे बहुत-से योगी केवल आकाश-वायुतत्त्वका शरीर रचकर दीवालको बिना फोड़े हुए उसमेंसे निकल सकते हैं। परंतु योगियोंकी गति पञ्चभूतोंतक ही सीमित है। उनसे आगे वे नहीं जा सकते। परंतु भगवान् जो चाहें सो कर सकते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

If someone asks how all these things can exist, each in its own form and proper place, within such small feet, the answer is that this is possible even in the natural world. For example, on a small photographic plate we can take a picture even of very large houses, mountains, rivers, and oceans; though their forms on that plate are very small, they appear very large when viewed. If such a thing is possible in the material world, what is impossible for the Lord? His māyā itself is described in the scriptures by epithets such as aghaṭana-ghaṭanā-paṭīyasī, "skilled in making the impossible happen." He can make space in what has no space, and what has no space in space. By the mere play of His eyebrows, He creates the universe and in the same way absorbs it into Himself. If He wishes, He can bring forth countless millions of universes, just as they are, through the eye of a needle. To do this, He need not enlarge the needle's eye or diminish the size of the universes. This is His sovereignty. Some partial accomplishments of this kind are found even among yogīs. Many yogīs, for example, can form a body consisting only of the ether-and-air element and pass through a wall without breaking it. But the yogīs' reach is limited to the five elements; they cannot go beyond them. The Lord, however, can do whatever He wishes.

ORIGINAL

सारांश यह कि ऊपर बतायी हुई सारी वस्तुएँ अपने असली रूपमें और चेतन होकर भगवान्‌के चरणोंमें रहती हैं, जिस प्रकार अर्जुनके रथमें श्रीहनुमान्‌जी साक्षात् रूपसे ध्वजाके ऊपर रहते थे। यों तो यह भौतिक जगत् भी सारा परमात्मारूप होनेके नाते चेतन ही है; यहाँ जो कुछ जड़ रूपमें दिखलाई देता है, वह वास्तवमें चेतन ही है; किंतु यह बात ज्ञान-दृष्टिसे कही जाती है। केवल भगवान्‌के तत्त्वको जाननेवालोंको ही सारा जगत् चेतन-रूप दिखायी देता है, अज्ञानियोंको नहीं। परंतु भगवान्‌से सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक वस्तु लौकिक नेत्रोंसे भी चेतन दिखलायी देती है; यद्यपि जिन नेत्रोंके सामने भगवान्‌का विग्रह प्रकट होता है वे नेत्र लौकिक होते हुए भी दिव्य भावापन्न हो जाते हैं। जब सारा जड़-चेतन संसार भगवान्‌के चरणोंमें समाया हुआ रहता है, तब इतने चेतन पदार्थ एक साथ उनके अंदर रहें, इसमें आश्चर्य ही क्या है। 'तद्विष्णोः परमं पदम्' ऐसा उपनिषदें कहती हैं। सब कुछ भगवान्‌के चरणोंमें ही है। सारी विभूतियाँ उनके चरणोंमें प्राप्त हो सकती हैं।

ENGLISH TRANSLATION

In summary, all the things mentioned above abide in the Lord's feet in their original forms and as conscious beings, just as Śrī Hanumān visibly remained atop the banner on Arjuna's chariot. Indeed, this whole material world is conscious because it is entirely of the nature of the Supreme Self; whatever appears here as inert is in truth conscious. Yet this is said from the standpoint of knowledge. Only those who know the Lord's reality see the entire world as conscious; the ignorant do not. But every object related to the Lord appears conscious even to ordinary eyes, although the eyes before which the Lord's form manifests, while ordinary, become imbued with divinity. When the entire world, inert and conscious, is contained in the Lord's feet, what wonder is there that so many conscious entities should dwell within them together? The Upaniṣads say, “tad viṣṇoḥ paramaṁ padam.” Everything is in the Lord's feet. All opulences may be obtained in His feet.

ORIGINAL

ऊपर जितने चिह्न गिनाये गये हैं, सब सार्थक हैं। उनमें एक भी व्यर्थ नहीं है। उन सबमें गूढ़ रहस्य भरा हुआ है। चरणोंमें इतने सारे चिह्न धारण करनेमें भगवान्‌के दो प्रधान हेतु हैं। एक तो यह कि जिसमें सारे विश्वका नमूना एक जगह आ जाय। इसीलिये ऋषि, मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी, नक्षत्र, आयुध, आभूषण, वृक्ष, पर्वत, वस्त्र, राजचिह्न, वाद्य, पात्र, फल, फूल, सभी वर्गोंमेंसे एक-एक वस्तु चुनी गयी है। दूसरा हेतु, जिसका सम्बन्ध खासतौर पर भक्तोंसे है, यह है कि यद्यपि भगवान्‌के चरणोंको हृदयके ऊपर स्थापित करनेका प्रत्येक भक्तको अधिकार नहीं है, केवल उनकी प्रेयसियोंको ही यह अधिकार प्राप्त है, वह भक्तके हाथकी बात नहीं है; तथापि उनको हृदयके भीतर ले आनेकी तो प्रत्येक भक्तमें सामर्थ्य है ही। ऐसी दशामें जो भगवान्‌के चरणोंको हृदयमें रख लेता है, उसके हृदयमें उन चरणोंके साथ ये सभी पदार्थ अपने आप आ जाते हैं, जिस प्रकार रत्नोंसे भरे हुए पात्रको अपने घरपर ले आनेपर उस पात्रके साथ-साथ वे रत्न अपने-आप आ जाते हैं। सारे विश्वका ऐश्वर्य और माधुर्य उन चरणोंके साथ-साथ भक्तके हृदयमें आ जाता है, क्योंकि भगवान्‌के चरण सारे ऐश्वर्य और माधुर्यके स्रोत हैं।

ENGLISH TRANSLATION

All the marks enumerated above are meaningful; not one is useless. Each is filled with deep mystery. The Lord has two principal purposes in bearing so many marks upon His feet. The first is that a model of the entire universe may be gathered in one place. Therefore one object has been selected from each class: sages, human beings, gods, animals, birds, luminaries, weapons, ornaments, trees, mountains, garments, royal emblems, instruments, vessels, fruits, and flowers. The second purpose concerns devotees especially. Although every devotee has no right to establish the Lord's feet upon the heart, for only His beloved consorts possess that right and it is not within a devotee's control, every devotee does have the power to bring them into the heart. Thus, when one places the Lord's feet in the heart, all these objects come there of themselves with those feet, just as jewels come home of themselves together with the jewel-filled vessel when one brings that vessel home. The sovereignty and sweetness of the whole universe enter the devotee's heart along with those feet, for the Lord's feet are the source of all sovereignty and sweetness.

ORIGINAL

प्रेमाभक्तिके आचार्य स्वयं नारदजी उन चरणोंके साथ हृदयमें आ जाते हैं, तब वह भक्त प्रेमाभक्तिसे कैसे वंचित रह सकता है। स्वस्तिकका चिह्न शुभका प्रतीक है। सर्वतोदिश मंगलका द्योतक है। अतः जो शुभ चाहनेवाला है उसके हृदयमें स्वस्तिक प्रवेश कर उसका सब प्रकारसे कल्याण करता है। उपर्युक्त पदार्थ सब दिव्य धामके हैं और भगवान्के ही रूपमें वे सारी शक्तियोंको लेकर हमारे हृदयमें आते हैं। अतः योगसिद्धियोंसे भी अधिक सिद्धियाँ उसे प्राप्त होती हैं, जिसके हृदयमें भगवान्के चरण आ जाते हैं; क्योंकि सारी शक्तियोंके स्रोत भगवान्के चरण हैं। जब सारी शक्तियोंका आधार ही हृदयमें आ गया तब शेष शक्तियाँ कैसे बाकी रह सकती हैं। योगी उन शक्तियोंके किसी अंशको प्राप्त होकर उनका उपयोग करता है। किंतु भक्त भगवान्के प्रेममें मस्त होकर शक्तियोंको भूल जाता है। इसके ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने भक्तश्रेष्ठ श्रीहनुमानजी हैं। उनमें सब प्रकारकी शक्ति होते हुए भी उसकी उन्हें सर्वथा विस्मृति रहती थी। जाम्बवान् आदिके द्वारा उस शक्तिका स्मरण दिलाये जानेपर महान् शक्तिमान् हो जाते थे। ईश्वरीय शक्ति रहती है भगवान्के चरणोंमें। उन चरणोंमें जिनका मन लग गया, उसके अंदर वह शक्ति क्रमशः उतरती आती है। और जिसके मनमें वे चरण एक बार स्वयं प्रवेश कर जाते हैं, फिर वे वहाँसे हटते नहीं। ऐसा भक्त अतुल शक्तिशाली हो जाता है। सारी शक्तियाँ उसकी आज्ञावाहिनी होकर उसके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं, किंतु वह उनकी ओर ताकता भी नहीं। श्रीमद्भागवतमें कहा है:

ENGLISH TRANSLATION

Nārada himself, the teacher of loving devotion, enters the heart together with those feet; how then could that devotee remain deprived of loving devotion? The svastika mark symbolizes auspiciousness and signifies good fortune in every direction. Therefore, entering the heart of one who desires auspiciousness, the svastika brings that person welfare in every way. All the objects mentioned above belong to the divine abode, and, as forms of the Lord Himself, they come into our hearts bearing all powers with them. Therefore one whose heart receives the Lord's feet attains accomplishments greater even than yogic powers, for the Lord's feet are the source of all powers. When the very foundation of all powers has entered the heart, how can any remaining power be absent? A yogī obtains and employs some portion of those powers. But, intoxicated with love for the Lord, a devotee forgets the powers. The eminent example before us is the foremost devotee Śrī Hanumān. Although he possessed every kind of power, he was entirely unaware of it. When Jāmbavān and others reminded him of that power, he became immensely powerful. Divine power abides in the Lord's feet. Into the person whose mind becomes attached to those feet, that power gradually descends. And once those feet themselves enter a person's mind, they do not depart from there. Such a devotee becomes incomparably powerful. All powers stand before that devotee with folded hands, awaiting command, yet the devotee does not even look toward them. The Śrīmad Bhāgavata says:

ORIGINAL

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्॥

ENGLISH TRANSLATION

One who has offered the self to Me desires neither the station of Brahmā, nor the abode of Indra, nor universal sovereignty, nor dominion over the nether regions, nor yogic perfection, nor even freedom from rebirth, nor anything apart from Me.

ORIGINAL

यहाँ एक बात और ध्यान देनेकी है, वह यह है कि भगवान्‌के चरणोंमें जितनी वस्तु ऊपर गिनायी हैं वे सब-की-सब भक्तके हृदयमें भगवान्‌के चरणोंका प्रवेश होते ही अपनी-अपनी क्रिया प्रारम्भ कर देती हैं। उदाहरणतः भगवान्‌के चरणोंमें जो सूर्य है, उसके चरणोंके साथ हृदयमें प्रवेश होते ही भक्तके हृदयका सारा अन्धकार विलीन हो जाता है। इसी प्रकार चरणगत चन्द्रमाके प्रवेश होते ही भक्तके हृदयमें अमृतकी वर्षा शुरू हो जाती है, जिससे उसके सारे पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

One further point should be noted: all the objects enumerated above in the Lord's feet begin their respective functions as soon as the Lord's feet enter the devotee's heart. For example, as soon as the sun in the Lord's feet enters the heart along with those feet, all darkness in the devotee's heart dissolves. Likewise, as soon as the moon situated in the feet enters, a shower of nectar begins, whereby all the devotee's sins and afflictions are destroyed.

ORIGINAL Hindi and Sanskrit

Source: Scans 18 to 19, following the opening continuation

कामधेनुके प्रवेश होनेसे वासना हृदयमें उठनेसे पहले ही पूर्ण हो जाती है। कल्पवृक्षके प्रवेश होनेसे मनमें किसी प्रकारका संकल्प रह ही नहीं जाता। उर्वशी, जो भगवान् नारायणके शरीरसे उत्पन्न हुई है, उसके हृदयमें प्रवेश करते ही सौन्दर्यकी सांसारिक वासना नष्ट हो जाती है। ज्ञान-वैराग्य सब आ जाते हैं। वज्रके आनेसे पापोंके पहाड़ बात-की-बातमें नष्ट हो जाते हैं। चरणोंके अन्दर जो शक्ति नामका आयुध है, उसके सामने पाप-तापकी सारी शक्तियाँ क्षीण-बल हो जाती हैं।

भगवान् वंशीको अपने चरणोंमें इसीलिये रखते हैं कि वह सांख्ययोग, निष्कामकर्म और शरणागतिकी मूर्तरूप है। वंशीरव इतना मनोमुग्धकारी है कि उसके सुननेमात्रसे ही 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज', इस भगवद्वाक्यका स्वरूप स्वतः सिद्ध हो जाता है। सारे धर्मोंका परित्याग फिर करना नहीं पड़ता। वह अपने-आप हो जाता है। लोकधर्म, वेदधर्म और देहधर्म सब वंशीके अमृतद्रवमें धुलकर साफ हो जाते हैं, बह जाते हैं। वंशी देखनेमें जड़ बाँसकी बनी हुई प्रतीत होनेपर भी थी कोई सिद्ध भक्ता, जिसने लौकिक दृष्टिमें जड़ बनकर भी भगवान्के अधरमें, करकमलोंमें तथा पेटीमें नित्य आश्रय प्राप्त किया था। मनुष्य तो क्या, किसी देवताको भी यह सौभाग्य मिल जाय तो क्या वह इसे छोड़ना चाहेगा? जिस भूमिपर भगवद्भक्तोंके पैर पड़ते हैं, ब्रह्मादिक देवता तो उस भूमिके लता-गुल्मादि बननेमें भी अपना सौभाग्य मानते हैं।

कुछ प्रेमी चाहते हैं कि हम दर्पण बन जायँ जिसमें मनमोहन अपने जगन्मोहनरूपको निरखते रहें। एक प्रेमी भक्तने उस वृक्षकी डाल बननेकी कामना की है जिस डालपर झूला डालकर प्रिया और प्रियतम झूलते हैं। इसपर वेदान्ती लोग आक्षेप किया करते हैं कि भक्त लोग चेतनसे जड़ बनना चाहते हैं। वे लोग भूलते हैं। वास्तवमें मुरली आदि वाद्य तथा भगवान्के आयुध, आभूषण, वस्त्र आदि सभी चेतन एवं भगवान्के नित्य परिकरोंमें हैं, जो सदा भगवान्के साथ रहकर भगवान्की सेवामें संलग्न रहते हैं।

एक बार किसी गोपीने भगवान्की वंशीसे पूछा कि तूने ऐसा कौन-सा तप किया है जिसके कारण तू सदा भगवान्के अधरामृतका पान करती है। इसपर मुरलीने कहा कि मैंने अपने हृदयको एकदम खोल दिया है, अहंकारशून्य कर दिया है। भगवान् जैसा सुर मेरे अन्दर भरते हैं वही राग मैं अलापने लगती हूँ, मैं अपनी बुद्धिका प्रयोग नहीं करती। अमुक राग बजाओ, ऐसा नहीं कहती। अहा! अचेतन होनेपर भी मुरलीने इस प्रकारका जड़त्व ग्रहण कर लिया था, तभी तो उसे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जिसे देखकर भगवान्की अति प्रेयसी व्रजांगनाओंको भी ईर्ष्या होती थी।

इससे यह सूचित होता है कि मुरलीमें सारा ज्ञान और कर्म भरा है। उसमें कामका और फलासक्तिका ही त्याग नहीं है, अहंकारका भी पता नहीं है। जिसे सांख्यमार्गके द्वारा सिद्धि प्राप्त करनी है वह मुरलीसे सांख्यकी दीक्षा ले, निष्कामकर्म सीखना हो मुरलीसे सीखे। इसीलिये ये भगवान् इसे अपने चरणतलमें रखते हैं।

इसके अतिरिक्त एक महत्त्वकी बात और है, वह यह है कि मुरलीका केवल मनुष्योंपर ही नहीं, जड़-चेतन सबपर समान रूपसे अक्षुण्ण प्रभाव पड़ता है। उसके रवको सुनकर जड़ चेतन और चेतन जड़ हो जाते हैं। वृक्षोंसे रस टपकने लगता है। सूखी लकड़ियाँ भी गीली हो जाती हैं। शुष्क हृदय रसमय बन जाता है। जिस समय भगवान्की

वह अनोखी मुरली व्रजमें बजती थी, लाखों गायें और बछड़े उन्हें घेरकर खड़े हो जाते थे और स्तब्ध एवं निश्चेष्ट होकर उस शब्दको सुनते थे। यहाँ कोई यह आश्चर्य न करे कि व्रजमें लाखों गायें कहाँसे आयीं? जिसके पास नौ लाख गायें होती थीं उसकी नन्द संज्ञा होती थी, और उससे कुछ कम संख्याकी गायें जिसके पास होती थीं वह उपनन्द कहलाता था। इस प्रकारके उपनन्द तो गोकुल और वृन्दावनमें अनेक थे। उन सबकी गायें एकत्र होकर व्रजकी वनभूमिमें गोप-बालकोंकी देख-रेखमें चरने जाती थीं और नन्दनन्दन उन सबोंके नेता थे।

जिस समय वे अपनी मुरलीमें सुर भरते, सब-की-सब गायें और बछड़े दूर-दूरसे वंशी-रवको सुनकर दौड़े आते और सब कुछ भूलकर उस वंशी-रवको सुननेमें तल्लीन हो जाते थे। उस समय उन सारे पशु-पक्षियोंतकका बिना किसी प्रकारका प्रयत्न किये योग सध जाता था। गायें चरना भूल जातीं और बछड़े अपनी माताओंका दूध पीना छोड़ देते थे। जो जिस अवस्थामें होता उसी अवस्थामें स्तब्ध-सा होकर रह जाता। सारी क्रिया उसकी बन्द हो जाती। हिलना-डुलना तक बन्द हो जाता। उस अलौकिक कर्ण-रसायनके कानोंमें आते ही आत्यन्तिक तृप्ति हो जाती थी। इससे यह भाव लेना चाहिये कि जिसके हृदयमें भगवान्‌के चरणोंके साथ वह मुरली आ गयी, उसमें उस मुरलीके गुण आ जाते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scans 18 to 19, following the opening continuation

When Kāmadhenu enters the heart, desire is fulfilled before it can even arise. When the wish-fulfilling tree enters, no intention or craving remains in the mind. When Urvaśī, born from Lord Nārāyaṇa's body, enters the heart, worldly desire for beauty is destroyed and both knowledge and dispassion arise. When the thunderbolt enters, mountains of sin disappear in an instant. Before the weapon named Śakti within the Lord's feet, every power of sin and affliction becomes feeble.

The Lord keeps the flute at his feet because it is the embodied form of Sāṅkhya-yoga, action without desire for fruit, and surrender. Its sound so captivates the mind that merely hearing it spontaneously fulfils the Lord's command, "Abandoning all dharmas, take refuge in me alone." One need not deliberately renounce every dharma. Social duty, Vedic duty, and duty toward the body are washed clean and swept away in the flute's stream of nectar. Though outwardly made of inert bamboo, the flute was a perfected devotee who, by becoming inert in the world's eyes, gained an eternal place at the Lord's lips, in his lotus hands, and in his sash. If even a deity received such fortune, would that deity wish to relinquish it? Brahmā and the other gods consider it blessed even to become a creeper or shrub upon ground touched by devotees' feet.

Some lovers wish to become a mirror in which Manamohana may gaze upon his world-enchanting form. One loving devotee wished to become the branch from which the beloved pair's swing is hung. Vedāntins sometimes object that devotees seek to descend from consciousness into inert matter, but they are mistaken. The flute and other instruments, the Lord's weapons, ornaments, and garments are all conscious, eternal companions continually engaged in his service.

A gopī once asked the flute what austerity it had performed to drink forever the nectar of the Lord's lips. The flute replied, "I opened my heart completely and emptied it of ego. I voice only the melody the Lord breathes into me. I do not apply my own intelligence or tell him which rāga to play." By accepting this apparent inertness, the flute obtained a fortune that aroused jealousy even in the most beloved women of Vraja.

The flute therefore contains the fullness of knowledge and action. It has renounced not only desire and attachment to results, but ego itself. Whoever seeks perfection through Sāṅkhya should receive initiation from the flute; whoever wishes to learn selfless action should learn from it. This is why the Lord keeps it beneath his feet.

The flute's unimpaired influence falls equally upon human beings, conscious creatures, and apparently inert nature. Hearing its sound, the inert becomes conscious and the conscious motionless. Sap drips from trees, dry wood grows moist, and arid hearts fill with rasa. When that wondrous flute sounded in Vraja, hundreds of thousands of cows and calves gathered around Kṛṣṇa and listened in utter stillness. One should not wonder where so many cows came

from. A chief possessing nine hundred thousand cows was called a Nanda, while one possessing somewhat fewer was an Upananda. Many such Upanandas lived in Gokula and Vṛndāvana. Their herds grazed together under the cowherd boys, with Nanda's son as leader.

The moment he breathed melody into the flute, cows and calves ran from far away, forgot everything, and became absorbed in its sound. Without effort, even the animals and birds entered yoga. Cows forgot to graze, calves stopped drinking their mothers' milk, and every creature froze in whatever posture it held. All activity and movement ceased. The supernatural elixir entering their ears brought perfect fulfilment. Thus, when the flute enters someone's heart together with the Lord's feet, the flute's qualities also enter that person.

ORIGINAL

Hindi, Sanskrit, and Awadhi

Source: Scans 20 to 21

अर्थात् उसका मनरूप पक्षी इधर-उधर उड़ना छोड़कर स्थिर हो जाता है। उसकी इन्द्रियरूप गायें अपने-आप वशमें हो जाती हैं। उन्हें फिर रोकनेके लिये प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इसीलिये श्रीमद्भागवतके योगीश्वर हरिने जनकसे भक्तके लिये कहा है कि वह आँख मूँदकर भी यदि दौड़े, तब भी उसे गिरने अथवा लड़खड़ानेका डर नहीं रहता, 'धावन्निमील्य वा नेत्रे न पतेदिह च स्खलेत्।' बात यह है कि जिसके मन-इन्द्रिय वशमें हों, वही आँख मूँदकर दौड़ सकता है और उसके गिरनेका भय नहीं रहता। यह बात तो हम संसारमें भी देखते हैं। जिस सवारका घोड़ा सधा हुआ होगा, वह सोते हुए सवारको भी निर्विघ्नतापूर्वक इष्ट स्थानपर पहुँचा देगा। ऐसे उदाहरण घोड़ों और बैलोंके सम्बन्धमें कई देखनेमें आते हैं।

एक भाव मुरलीका और है। वह यह है कि मुरली केवल भगवान्‌के पास रहती है। उसे भगवान्‌का ही स्वामित्व स्वीकार है। कभी-कभी सखियाँ उसे चुरा अवश्य लेती हैं, परंतु अधिकार उसपर नन्दनन्दनका ही रहता है। इसी प्रकार हमलोग भी वास्तवमें भगवान्‌के ही हैं। हमारे ऊपर भगवान्‌का स्वामित्व रहना चाहिये; हमें उन्हींका होकर रहना चाहिये और इस बातके लिये सतर्क एवं सचेष्ट रहना चाहिये कि हमारे ऊपर किसी अन्यका प्रभुत्व न होने पावे। गोस्वामी तुलसीदासजीने विनयपत्रिकामें भगवान्‌से यही प्रार्थना की है कि यह हृदय आपका मन्दिर है। इसे काम-क्रोधादिक डाकू लूटे डालते हैं, इन्हें हटाकर यदि आप इसपर कब्जा नहीं कर लेंगे तो इसमें आपकी बदनामी होगी:

कह तुलसिदास सुनु रामा। तस्कर लूटहिं तव धामा॥
चिन्ता यहि मोहि अपारा। अपजस नहिं होय तुम्हारा॥

मुरली भगवान्‌की ही होकर रहती है, इसलिये भगवान् उसे क्षणभरके लिये भी नहीं छोड़ते। बस, उसी प्रकार यदि तुम भी भगवान्‌के ही होकर रहोगे तो तुम्हें भी भगवान् कभी नहीं छोड़ेंगे, सदा अपने पास रखेंगे, यही मानो मुरली हमें शिक्षा दे रही है। इस प्रकारके भाव केवल कल्पनाप्रसूत नहीं हैं, ढूँढ़नेपर शास्त्रोंमें मिल सकते हैं और संतोंका अनुभव भी ऐसा है। और-और चिह्नोंका भी इसी प्रकारका भाव बताया जा सकता है।

एक भाव वंशीका और है। वंशीमें छेद हो रहे हैं, उसका शरीर बिंधा हुआ है। इससे अभिप्राय यह निकलता है कि जिसका हृदय प्रेमके बाणोंसे बिंध जाता है, जिसके हृदयमें छेद हो जाते हैं, उसीको भगवान्‌की प्राप्ति होती है। वंशी प्रेमकी याद दिलाती है।

अब जो चरणोंमें चन्द्र और सूर्य हैं, उनका भाव सुनिये। यों तो भाव अनेक हैं, परंतु जो-जो ध्यानमें आते हैं, वही सुनाये जाते हैं। यहाँके सूर्य और चन्द्रमें जो प्रकाश है वह भगवान्‌के चरणोंसे ही आता है। यह ऊपर बताया जा चुका है कि भगवान्‌के चरणोंका नाम ही परमपद है, क्योंकि भगवान्‌का नित्य धाम यहाँके चन्द्र-सूर्यसे प्रकाशित नहीं है:

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।

वहाँ दूसरे ही चन्द्र-सूर्य हैं और वे भगवान्‌के चरणोंमें स्थित हैं। उन्हींसे यहाँके चन्द्र-सूर्यको प्रकाश मिलता है। यही भाव चरणोंमें चन्द्र-सूर्यके होनेका है।

दूसरा भाव यह है कि जिनकी परमगति होती है, वे सूर्यमण्डलको भेदकर जाते हैं। भगवान्‌के चरणोंका आश्रय ग्रहण कर लेनेपर आश्रयी भक्त अपने-आप सूर्य-मण्डल-भेदी हो जाता है। उसे इस लौकिक सूर्य-मण्डलको भेदनेकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती है।

तीसरा भाव यह है कि चन्द्र और सूर्य विश्वके नेत्र हैं। सूर्य, चन्द्र न रहें तो जगत्‌में सर्वत्र अन्धकार हो जाय और सृष्टिका काम ही न चले। परंतु इन सूर्य-चन्द्रका प्रकाश तो सदा नहीं रहता। भगवान्‌के चरणोंमें रहनेवाले चन्द्र-सूर्य सदा प्रकाशित रहते हैं, जिससे उन चरणोंका ध्यान करनेवालोंके हृदयका तम सदाके लिये नष्ट हो जाता है।

चौथा भाव यह है कि शिव जहाँ भक्तकोटिमें हैं, वहाँ वे चन्द्रमाको अपने मस्तकपर इसीलिये रखते हैं कि वह भगवान्‌के चरणोंकी वस्तु है, वह उन चरणोंकी याद दिलाता है।

कदम्बके फलको चरणोंमें धारण करनेका भाव यह है कि भगवान् श्रीकृष्णको कदम्बसे बढ़कर और कोई वृक्ष प्रिय नहीं है। कदम्ब भगवान्‌के दिव्य लोकमें उनके दिव्य भवनके बीचमें एक रत्नवेदीके ऊपर स्थित है और इसीकी छायामें भगवान् विराजते हैं। वह कदम्ब-वृक्ष नित्य है और उसके फल भी नित्य हैं। उन फलों तथा उसीके फूलोंकी गन्धसे, जो एक साथ ही लगते हैं, प्रेमका प्रवाह नित्य झरता रहता है और दिव्य भवनमें प्रवाहित होता रहता है। अतः कदम्बका फल प्रेमका द्योतक है। जिनके हृदयमें भगवान्‌के चरण निवास करते हैं, उनसे प्रेम कदापि अलग नहीं हो सकता।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scans 20 to 21

The bird of the mind then stops flying here and there and becomes still. The cows of the senses come under control of themselves, without having to be restrained. This is why the lord of yogīs Hari says to Janaka in the Bhāgavata that even if a devotee runs with eyes closed, there is no fear of falling or stumbling: “Even running here with eyes closed, one neither falls nor slips.” Only one whose mind and senses are mastered can run with closed eyes without danger. We see a worldly analogy in a trained horse that carries even a sleeping rider safely to the intended destination, and similar accounts are told of horses and oxen.

Another meaning of the flute is that it remains only with God and recognizes his ownership alone. The sakhīs sometimes steal it, yet Nanda's son retains the true claim. We too belong in reality to God alone. His ownership should remain upon us, and we should be alert that no other power gains mastery. In the Vinaya-patrikā Tulasīdāsa prays that the heart is the Lord's temple, but robbers such as desire and anger are plundering it. If the Lord does not drive them out and take possession, his own reputation will suffer:

Tulasīdāsa says: listen, Rāma, thieves are plundering your dwelling.
This is my boundless concern: may no dishonor fall upon you.

Because the flute belongs wholly to God, he does not abandon it even for a moment. In the same way, if you become wholly his, he will never leave you and will always keep you near. Such meanings are not merely imagined. They may be found in scripture and accord with saints' experience. Other marks upon the feet may be understood similarly.

The flute's pierced body gives another meaning: one attains the Lord only when the heart is pierced through by the arrows of love. The flute recalls such love.

Now consider the sun and moon upon the Lord's feet. The light within our sun and moon comes from those feet. His feet are called the supreme abode, for his eternal realm is not illumined by the sun, moon, or fire of this world: “The sun does not illumine it, nor the moon, nor fire.” Another sun and moon dwell upon his feet, and from them our luminaries receive their light.

Those who attain the supreme destination are said to pass beyond the solar sphere. By taking refuge at the Lord's feet, the devotee automatically transcends that sphere and need not pierce this material sun. The sun and moon are also the eyes of the universe; without them creation would be covered in darkness and cease to function. Their light, however, is not constant, while the sun and moon at the divine feet shine forever, permanently dispelling the darkness from the heart of one who meditates upon them. Śiva, considered here in the category of devotees, wears the moon upon his head because it belongs to the Lord's feet and reminds him of them.

The kadamba fruit upon the feet signifies that no tree is dearer to Kṛṣṇa. In the divine realm, an eternal kadamba stands upon a jewelled platform at the center of his palace, and the Lord sits in its shade. Its eternal fruits and flowers appear together, and their fragrance pours an unending current of love through the divine dwelling. The kadamba fruit thus signifies love. Love can never be separated from one whose heart is inhabited by the Lord's feet.

ORIGINAL Hindi and Sanskrit

Source: Scans 22 to 23

भगवान्‌के चरणगत अश्‍वत्थके दो भाव हैं। एक तो यह कि अश्‍वत्थ सब वृक्षोंमें श्रेष्ठ और भगवान्‌का स्वरूप है, ‘अश्‍वत्थः सर्ववृक्षाणाम्।’ दूसरा भाव यह है कि अश्‍वत्थका वृक्ष आयुर्वेदिक शास्त्रके अनुसार बड़ा उपयोगी है। उसकी जड़, छाल, फल, गूदा, स्कन्ध, शाखा सभीमें रोगनाशक शक्ति है। वैद्य इसीके नीचे बैठकर समस्त रोगोंकी चिकित्सा कर सकते हैं। यह वैद्यककी विभूति है। अतः जो भगवान्‌के चरणगत अश्‍वत्थकी छायामें आ गया, उसके शारीरिक-मानसिक सभी प्रकारके रोग सदाके लिये शान्त हो गये।

तीसरा भाव यह है कि इस संसारको गीताजीने अश्‍वत्थ कहा है, जिसकी शाखा नीचे और मूल ऊपर है, ‘ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्‍वत्थं प्राहुरव्ययम्।’ यह संसाररूपी अश्‍वत्थ भगवान्‌के चरणोंमें है, अर्थात् सारे संसारकी उत्पत्ति उनके चरणोंसे है। ये चरण जिसके हृदयमें स्थित हो गये, वह मानो सारे संसारका आधार बन गया।

भगवान्‌के चरणोंमें जो कुम्भ है, वह अमृतसे पूर्ण है। उसीसे सबको अमृत मिलता है, अतः देवताओंकी रक्षाका आधार वही है। इसीलिये प्रत्येक वैदिक एवं तान्त्रिक अनुष्ठानमें पहले घट-स्थापन किया जाता है। घट-स्थापनसे देवता सुरक्षित हो जाते हैं। अतः जहाँ यह अमृत-कलश है, वहाँ सुरक्षितता है। असुर, राक्षस, भूत, प्रेत आदिकी पराजय अपने-आप होती रहती है। जिसके हृदयमें इस अमृत-कलशसे युक्त भगवान्‌के चरण रहते हैं, वह हृदय निरुपद्रव रहता है। वहाँ किसी प्रकारकी आसुरी अथवा राक्षसी वृत्तियाँ उपद्रव नहीं कर सकतीं।

मीनका भाव यह है कि मीनका जलके साथ घनिष्ठ एवं अनन्य प्रेम है। जलके वियोगमें मछली क्षणभर भी जी नहीं सकती। जलके अतिरिक्त उसे हम चाहे दूधमें, शर्बतमें अथवा अमृतमें ही क्यों न रखें, वह उसके भीतर रहकर भी प्राण धारण नहीं कर सकती। जल ही उसके जीवनका एकमात्र अवलम्बन है। जलसे वियुक्त होते ही वह पूरी तरह छटपटाने लगती है। इतनी व्याकुल होती है कि उसकी व्याकुलताका हम अनुमान भी नहीं कर सकते। इसी प्रकार भक्तके हृदयमें भगवान्‌के प्रति ऐसा तीव्र अनुराग होना चाहिये कि वह पलभरके लिये भी भगवान्‌के चिन्तनका अभाव न सह सके, उसके प्राण कण्ठगत हो जायँ। भगवान्‌के चरणोंमें रहनेवाली मछली हमें यह सिखलाती है कि मछलीकी भाँति हमें भगवान्‌में अनन्यचित्त होकर रहना चाहिये। मछली यद्यपि चंचल है, किन्तु उसकी चंचलता पानीमें ही है। इसी प्रकार हमारा यह मन भी भगवान्‌रूपी अमृतसमुद्रमें ही दौड़ता रहे। यही चेष्टा हमलोगोंको करनी चाहिये। हमारे चित्तका सारा स्पन्दन भगवान्‌में होता रहे, चित्तवृत्ति सदा भगवान्‌में ही लगी रहे। प्रेमकी अनन्यताको सूचित करनेके लिये मानो भगवान्‌ने मछलीको अपने चरणोंमें स्थान दे रखा है।

दूसरा भाव यह है कि मछली रसग्राहिका है। जहाँ खानेकी वस्तु उसे मिलती है, वहाँ वह सब कुछ भूल जाती है, प्राणतक दे डालती है। इसी प्रकार भगवान्‌के रसमें हमारा चित्त भी मछलीकी तरह रागयुक्त होना चाहिये। यही शिक्षा मानो भगवान्‌के चरणोंकी मछली हमें दे रही है।

भगवान्‌के चरणोंमें जो सिंहासन है, अब उसका विचार करते हैं। सिंहासन किसको प्राप्त है? जो सम्राट है, विजयी है, अधिकारयुक्त है, उसीको सिंहासन मिलता है, वही सिंहासनपर आसीन हो सकता है। अर्थात् जो भगवान्‌के चरणोंका सेवक बन गया, चित्त, इन्द्रिय आदि जितने आन्तर एवं बाह्य करण हैं, वे सब उसके अधीन हो जाते हैं।

इन सबका वह राजा हो जाता है। दूसरा भाव यह है कि जो मनुष्य ईश्वरका जन हो गया, ईश्वर स्वयं उसके बन जाते हैं; फिर उनके सारे ऐश्वर्यपर भी उसका अधिकार हो जाता है, यद्यपि वह उस ऐश्वर्यकी परवा न कर ऐश्वर्योंके स्वामीमें ही चित्तको निवेशित किये रहता है।

तीसरा भाव यह है कि राजा सबको अपनी इच्छानुसार चलाता है। इसी प्रकार भक्तके मन और इन्द्रियाँ भी जैसे वह उनको चलाना चाहता है वैसे ही चलने लगते हैं। उनपर उसका पूरा प्रभुत्व हो जाता है। यही उनका सम्राट होता है।

भगवान्के चरणोंमें जो रथ है, उसमें घोड़े नहीं जुते हैं। उसे चलानेके लिये किसी अन्य चेतनकी आवश्यकता नहीं है। यह बात पहले चाहे किसीकी समझमें न आयी हो, पर आज जब हम मोटर, रेल, साइकिल आदिको देखते हैं तो आश्चर्य नहीं होता। अन्तर यह है कि उनमें मशीन आदि तो रहती हैं, भगवान्के इस रथमें मशीन भी नहीं है। बात यह है कि इस स्थूल जगत्के पीछे एक सूक्ष्म जगत् है, जिसे अन्तर्जगत् भी कहते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scans 22 to 23

The aśvattha mark upon the Lord's feet carries several meanings. First, the sacred fig is supreme among trees and a manifestation of God: “Among all trees, I am the aśvattha.” Second, Ayurveda regards every part of the tree, root, bark, fruit, pulp, trunk, and branch, as medicinal. A physician could sit beneath it and treat every illness. It is a glory of medicine. Thus all bodily and mental disease is forever calmed in one who enters the shade of the aśvattha upon the Lord's feet.

Third, the Gītā calls this world an imperishable aśvattha whose root is above and branches below. The cosmic tree rests in the Lord's feet, for the whole universe arises from them. One whose heart contains those feet becomes, as it were, a support of the entire world.

The pitcher upon the feet is filled with nectar, from which everyone receives immortality, and it therefore protects the gods. For this reason a sacred vessel is established first in every Vedic and Tantric rite. Where this nectar-filled pitcher is present, there is safety. Demons, rākṣasas, ghosts, and spirits are defeated of themselves. A heart containing the Lord's feet together with this pitcher remains free of disturbance, and no demonic tendency can trouble it.

The fish signifies exclusive love for water. A fish cannot live even a moment separated from it. Place it in milk, sweet drink, or even nectar, and it cannot survive, for water alone supports its life. Once removed, it writhes with anguish beyond our imagining. A devotee should feel such intense attachment to God that even a moment without contemplation seems unbearable and life rises to the throat. The fish upon the Lord's feet teaches us to remain single-mindedly absorbed in him. Though a fish is restless, all its movement remains within water. Likewise let the mind move only within the nectar-ocean of God, every pulse and disposition of consciousness fixed in him. To signify love's exclusiveness, the Lord has placed the fish upon his feet.

The fish also seizes rasa. When it finds food, it forgets everything and may surrender even its life. Our consciousness should likewise become passionately absorbed in divine rasa.

The throne belongs to an emperor who is victorious and endowed with authority. One who becomes a servant of the Lord's feet gains mastery over all inner and outer instruments, including mind and senses, and becomes their king. Moreover, when a person becomes God's own, God becomes that person's own, and all divine sovereignty comes within the devotee's right. Yet the devotee cares nothing for those powers and remains absorbed in their Lord. As a king directs subjects according to his will, the devotee's mind and senses begin to move exactly as directed.

The chariot upon the feet has no horses and needs no other conscious driver. Modern vehicles make the idea of horseless motion less surprising, though they require machinery and this chariot does not. Behind the gross world lies a subtle or inner world whose operations are not material.

ORIGINAL

Hindi and Sanskrit

Source: Scans 24 to 25

उसमें जो क्रियाएँ होती हैं, उन्हें हम चाहे जान न सकें, परंतु उन्हें हम अस्वीकार नहीं कर सकते। रेडियोने इस बातको प्रमाणित कर दिया है। रेडियोका सम्बन्ध भी स्थूल जगत्से ही है। रेडियोके द्वारा आज हम हजारों कोसोंकी बात ज्यों-की-त्यों यहाँ बैठे सुन सकते हैं। रेडियोका यन्त्र बिना तारके सम्बन्धके हजारों कोसोंके शब्दको बाँधकर हमारे कर्णगोचर कर देता है। श्राद्धका अन्न ब्राह्मणोंके पेटके द्वारा हमारे पितरोंको कैसे प्राप्त हो जाता है? इसका रहस्य भी रेडियोके उदाहरणसे हमें कुछ-न-कुछ समझमें आने लगा है। अग्निष्वात्तादि पितृगण इसी कार्यके लिये खास तौरपर नियुक्त हैं। उन्हींकी शक्तिसे यह काम होता रहता है। जब शब्दोंके पोथे हजारों कोसकी यात्रा करके चले आते हैं तो क्या हमारा पहुँचाया हुआ अन्न पितरोंको प्राप्त नहीं हो सकता? उन पितृगणोंकी शक्ति बिना किसी स्थूल आधारके ही काम करती रहती है।

दक्षिणमें एक चांगदेव नामक योगी हो गये हैं, जो एक हजार चार सौ वर्षोंतक जीवित रहे। वे प्रत्येक सौ वर्षके बाद कायाकल्पके द्वारा उसी शरीरमें दूसरा शरीर रच लेते थे, किंतु उन्हें वह क्रिया प्राप्त नहीं हुई, जिससे वे भगवान्में मिल जाते। इसीलिये वे एक बार ज्ञानेश्वर महाराजके यहाँ, जो महायोगी थे, सिंहपर सवार होकर आये। उस समय ज्ञानेश्वर महाराज बालक थे, वे एक दीवारपर चढ़े हुए अपनी बहन मुक्ताबाईके साथ खेल रहे थे। उन्होंने जब योगी चांगदेवको सिंहपर आरूढ़ होकर अपने सामने आते हुए देखा, तब उन्होंने उस दीवारको जिसपर वे सवार थे, चलनेकी आज्ञा दी। बात-की-बातमें दीवार चलने लगी। यह देखकर चांगदेव बड़े लज्जित हुए और ज्ञानेश्वर महाराजके चरणोंपर गिर पड़े।

इस प्रकार ज्ञानेश्वर महाराजकी मनःशक्तिसे जब जड़ दीवार भी चेतनवत् चलने लगी, तब योगेश्वर भगवान्का रथ यदि बिना घोड़ोंके चले तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? उनकी संकल्प-शक्तिसे तो वह रथ ही क्या, यह सारा सौरमण्डल चल रहा है। हमारे पूर्वजोंकी मनःशक्ति इतनी प्रबल थी कि उन्हें रेल, तार आदि भौतिक साधनोंकी कभी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हुई और इसीलिये उस समय ये आविष्कार आदि नहीं हुए। उनमें इन आविष्कारोंको करनेकी शक्ति नहीं थी, यह बात नहीं है। जो काम आज रेल, तार, हवाई जहाज और रेडियोसे होते हैं, वे तो योगकी बहुत स्थूल शक्तियोंसे निष्पन्न हो जाते थे।

भाव यह है कि भगवान्के चरणोंका आश्रय पाकर भक्त उस रथपर सवार हो जाता है, जो बिना किसी घोड़े आदिके भगवान्की मनःशक्तिसे ही संचालित होकर उसे बात-की-बातमें भगवान्के समीप पहुँचा देता है। कहीं-कहीं भगवान्के चरणोंको रथ कहा गया है। भक्त भगवान्के चरण-रथपर सवार होकर भगवान्के निकट पहुँच जाता है। वास्तवमें चरण प्राप्त हो जानेपर फिर चलना क्या है? चरण मिल जानेपर फिर भगवान् बाकी थोड़े ही रहते हैं। भगवान्के चरण भगवान्से पृथक् थोड़े ही हैं।

ज्ञान और भक्तिके साधनमें यही अन्तर है। भक्तिपथके पथिक साधनकालमें भी भगवान्के साथ रहते हैं, किन्तु ज्ञानमार्गी निःसहाय रहता है। उसे भगवान्का सहारा साक्षात् रूपसे प्राप्त नहीं होता। इसीलिये रास्तेमें उसे चोर-डाकुओंका भी भय रहता है। भक्तकी भाँति वह आँखें मूँदकर नहीं दौड़ सकता।

अब भगवान्‌के चरणोंमें रहनेवाले धनुषकी बात सुनिये। इस धनुषमें डोरी, प्रत्यंचा, नहीं है। बिना डोरीके ही उसमें बाणका संधान होता है। यही उसकी विशेषता है। भगवान्‌के चरणोंमें धनुष आदि जितने शस्त्र हैं, उन सबका उद्देश्य भक्तोंके विरोधियोंका विनाश करना है। भगवान्‌का निजका कोई शत्रु नहीं है। अपने भक्तके विरोधियोंमें ही वे विरोधित्वका आरोप कर लेते हैं, किंतु भगवान् अपने भक्तके विरोधियोंको मारकर भी उन्हें तार देते हैं। सच पूछिये तो उन्हें तारनेके लिये ही वे उन्हें मारते हैं। वास्तवमें किसीको मारनेका अधिकार उसीको है जो मारकर तार सके। यह शक्ति भगवान् अथवा उन्हींकी शक्तिको प्राप्त किये हुए कारक पुरुषोंमें ही होती है। अतः मारनेका अधिकार उनको छोड़कर और किसीको नहीं है।

भगवान् दुष्कृतियोंको मारनेके लिये नहीं, अपितु उन्हें तारनेके लिये ही अवतार लेते हैं। जिसे वे मारते हैं, उसके अघरूप अघासुरका वे बीज नाश कर देते हैं। उसकी आत्माको वे अमर कर देते हैं, अपनेमें मिला लेते हैं। उसका मरना सदाके लिये मिट जाता है। ये शस्त्र भी जिसको मारते हैं, उसको तार देते हैं। जो इन शस्त्रास्त्रोंसे युक्त चरणोंका आश्रय ले लेते हैं, उनका कोई विरोधी नहीं रह जाता। उनके सब अनुकूल हो जाते हैं:

जा पर कृपा राम कर होई। ता पर कृपा करहिं सब कोई॥

उसके लिये आगकी दाहिका शक्ति मिट जाती है, विष भी अमृत हो जाता है।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scans 24 to 25

We may not know the inner world's operations, but cannot deny them. Even radio, though belonging to the material world, lets us hear words spoken thousands of miles away without a wire. This analogy helps explain how food offered in śrāddha through brāhmaṇas reaches the ancestors. The Agniṣvātta and other ancestral beings are specially appointed for this work, which proceeds through their power without a gross material support. If bundles of sound can travel thousands of miles, why should offered food be unable to reach the ancestors?

In southern India lived the yogī Cāṅgadeva, said to have survived fourteen hundred years by renewing his body every century, though he had not attained the process of union with God. He once rode a lion to visit the great yogī Jñāneśvara, then a child playing with his sister Muktābāī atop a wall. Seeing Cāṅgadeva approach, Jñāneśvara ordered the wall to move. It immediately travelled forward like a living being. Cāṅgadeva felt ashamed and fell at Jñāneśvara's feet.

If an inert wall could move by Jñāneśvara's mental power, why should the Lord of yoga's chariot not move without horses? By his power of will the chariot and the entire solar system move. The author says that the mental power of the ancestors was so strong that material devices such as railways and telegraphy seemed unnecessary, and that the work now performed by trains, telegraphs, aircraft, and radio could then be accomplished by comparatively gross yogic powers.

The meaning is that one who takes refuge in the Lord's feet boards a chariot moved solely by divine mental power and is carried to him in an instant. In some places the feet themselves are called the chariot. Once the feet are attained, what journey remains? They are not separate from the Lord.

This marks a difference between the disciplines of knowledge and devotion. Travellers on the devotional path remain with God even during practice, whereas the follower of the path of knowledge remains without directly visible support and fears the thieves and bandits along the way. Such a traveller cannot run with closed eyes like a devotee.

The bow upon the Lord's feet has no string, yet an arrow is set upon it. Its special purpose, like that of all the weapons upon the feet, is to destroy opposition to devotees. God has no personal enemy. He treats a devotee's opponents as his own, yet even when he kills them, he liberates them. Indeed, he kills only in order to deliver. Only one who can save through killing possesses the right to kill, and this power belongs to God or to agents endowed with his power.

The Lord incarnates not merely to slay evildoers but to deliver them. He destroys the demonic seed of sin within the person he strikes down, makes the soul immortal, absorbs it into himself, and forever abolishes its dying. His weapons likewise liberate those they strike. Anyone sheltered at the feet bearing these weapons is left without an enemy, for everyone becomes favorable:

Upon one who receives Rāma's grace, everyone else also bestows grace.

For such a devotee fire loses its burning power and poison becomes nectar.

ORIGINAL Hindi, Sanskrit, and Awadhi

Source: Scan 26, with its concluding sentence at the opening of scan 27

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिन्धु अनल सितलाई॥

भक्त प्रह्लादके लिये ऐसा ही हुआ था। उनका विष्णुपुराणमें वचन है:

रामनामजपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसन्धिषु पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

अग्नि हमें तभीतक इष्ट है जबतक वह हमारे अनुकूल कार्य करती है, रसोई आदि बनानेमें सहायता देती है; किंतु ज्यों ही वह हमारे अंग आदिको जलाने लगती है, त्यों ही हम उसे बुझा देते हैं। जो भक्त भगवान्के प्रेममें अपने-आपको भूले रहते हैं, उनके लिये भगवान् यह कार्य स्वयं करते हैं, अग्निको शीतल कर देते हैं, उसकी दाहिका शक्तिको खींच लेते हैं। शस्त्रोंकी शक्ति भी उसके अंगोंके स्पर्शमें आकर कुण्ठित हो जाती है। भक्तोंको कष्टका अनुभव भी नहीं होता। लौकिक दृष्टिसे दुःखी होनेपर उनका दुःख भगवान्के आयुधोंद्वारा कटता रहता है, जिससे वे सदा प्रसन्न रहते हैं।

सभी शत्रुओंके लिये सब अवस्थाओंमें एक ही प्रकारके आयुधका प्रयोग नहीं होता। इसलिये भगवान् कई प्रकारके शस्त्रास्त्र अपने चरणोंमें धारण करते हैं। बाणके द्वारा दूर शत्रुपर प्रहार किया जाता है। इसी प्रकार भगवान्के चरणोंमें रहनेवाला बाण हमारे दूरके जन्म-जन्मान्तरके पापोंका नाश कर देता है। भगवान्के बाणमें अन्य बाणोंकी अपेक्षा यह विशेषता है कि और बाणोंकी सीमा होती है, एक निर्दिष्ट दूरीसे आगे उनकी गति नहीं होती, किंतु भगवान्के बाणकी कोई सीमा नहीं है। यह बात जयन्तके उपाख्यानसे सिद्ध होती है। भगवान्ने सींकका जो बाण छोड़ा वह अमोघ था, उसकी गति अप्रतिहत थी, अबाधित थी। इसीलिये किसी भी अचूक दवाका नाम 'राम-बाण' हो गया है। जयन्त देवपुत्र होनेपर भी उस बाणसे नहीं बच सका। वह सभी लोकोंमें गया, किंतु उसकी कोई भी रक्षा नहीं कर सका।

यही बात भगवान्के चक्रके सम्बन्धमें अम्बरीषके प्रसंगसे द्योतित होती है। और बाणोंका तो यह हाल है कि निशान यदि हट जाय अथवा चूक जाय तो वे निष्फल हो जाते हैं, किंतु भगवान्का बाण निशानेको छोड़ता नहीं, चाहे वह कहीं क्यों न चला जाय। भगवान्की कौमोदकी गदा, देवदत्त नामक असि तथा अन्य बरछी आदि शस्त्र समीपके, अर्थात् प्रारब्ध तथा संस्कारगत पापोंका नाश कर देते हैं। तात्पर्य यह है कि भगवान्के चरणोंका आश्रय जिन्हें प्राप्त हो गया है, उनके दूर, समीप अथवा स्वप्नमें भी पाप नहीं रह सकते।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 26, with its concluding sentence at the opening of scan 27

Poison becomes nectar, an enemy acts as a friend, the ocean shrinks to a calf's hoofprint, and fire becomes cool.

So it happened for the devotee Prahlāda. The Viṣṇu Purāṇa gives his words:

What fear can there be for those who repeat Rāma's name, the one medicine that calms every affliction?
Look, father: even fire has now become water upon the joints of my body.

Fire is welcome while it acts favorably by cooking our food, but the moment it begins to burn our limbs we extinguish it. For devotees who forget themselves in divine love, the Lord himself performs this work. He cools fire and withdraws its burning power. Weapons too become blunted upon touching their bodies. Devotees do not experience torment. Even when they appear afflicted from a worldly perspective, the Lord's weapons continually cut away their suffering, so they remain joyful.

The same weapon is not used against every enemy in every circumstance, so the Lord bears many kinds of arms upon his feet. An arrow strikes an enemy at a distance. Accordingly, the arrow upon his feet destroys remote sins accumulated through birth after birth. Ordinary arrows have a limited range, but God's arrow has none. The story of Jayanta demonstrates this. The Lord released a blade of grass as an unfailing arrow whose course could not be resisted or obstructed. Hence any infallible remedy is called a “Rāma-arrow.” Though Jayanta was a god's son and travelled through every realm, no one could protect him from it.

The episode of Ambarīṣa teaches the same about the Lord's discus. An ordinary arrow fails if the target moves or the archer misses, but the divine arrow never abandons its mark, wherever it may flee. The Kaumodakī mace, the sword called Devadatta, and spears and other close weapons destroy nearby sins, meaning those already bearing fruit and those embedded as impressions. Thus no sin can remain distant, near, or even in the dream of one who has gained refuge at the Lord's feet.

ORIGINAL Awadhi

ये सारे चिह्न भक्तोंके उपयोगके लिये हैं। भगवान् साकार विग्रह भक्तोंके लिये ही धारण करते हैं। जगत्में भगवान्की जो लीला होती है, उसमें भी उनके भक्त परिकररूपसे सदा साथ रहते हैं। इसीलिये वे मुक्ति नहीं चाहते, क्योंकि वे मुक्त तो हैं ही। बिना मुक्त हुए किसीके कर्म लीलावत् नहीं हो सकते। वेदान्तदर्शनमें भी एक सूत्र है:

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।

यहाँ 'माया' शब्दका प्रयोग न होकर 'लीला' शब्दका प्रयोग हुआ है। इससे यह स्पष्ट है कि वेदान्तसूत्रोंके रचयिता भी भगवान् और उनके भक्तोंकी लीलाको स्वीकार करते हैं। खेल सदा एक-सा नहीं होता, इसलिये वह अनित्य है। किंतु वह 'असत्' नहीं है, क्योंकि वह होता है।

अस्त्र-शस्त्रोंका दूसरा भाव यह है कि इन शस्त्रोंके द्वारा जिनका नाश होता है वे भी तर जाते हैं। जो वस्तु सत् है उसका नाश नहीं होता, उसकी शुद्धि हो जाती है, रूपान्तर हो जाता है। देवर्षि नारद अपने सूत्रोंमें कहते हैं कि काम-क्रोधादि भी भगवान्के प्रति ही करने चाहिये। इससे यह सिद्ध होता है कि भक्तके अन्दर काम-क्रोध तो रहते हैं, नहीं तो उनका प्रयोग भगवान्के प्रति करनेकी बात क्यों कही जाती? परंतु वे काम-क्रोध दोषवाले एवं विकारयुक्त नहीं होते। उनका रूप दूसरा हो जाता है, वे शुद्ध हो जाते हैं:

प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।

गोपियोंके प्रेमको ही लोग काम कहने लगे हैं। जहाँ प्रेम है वहाँ उसका विषय प्रेमास्पद अवश्य होना चाहिये और प्रेमास्पदमें अद्वैत होते हुए भी द्वैतकी कल्पना करनी पड़ती है। यह बात पहले कह आये हैं कि भगवान्के शस्त्रोंद्वारा जो मारे जाते हैं वे तर जाते हैं। शिशुपाल आदि मरकर भगवान्के परिकर हो गये। इसी प्रकार मनके विकार विकार-रूपसे नष्ट हो जानेपर भी लीलारूपमें खेलनेके लिये रह जाते हैं, अतएव दानलीला, मानलीला आदि लीलाएँ होती हैं। ये सब शास्त्रोक्त हैं, छल, कपट और दम्भ नहीं। ये सब बुरे भाव शुद्ध रूपमें आ जाते हैं, क्योंकि भक्तके लिये मलिन मायाका पर्दा फट जाता है। वे भगवान्के दासत्वका अभिमान बनाये रखना चाहते हैं। तुलसीदास महाराजने कहा है:

अस अभिमान जाइ जनि मोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

ENGLISH TRANSLATION

All these marks exist for devotees' benefit. The Lord assumes an embodied form for their sake. In his līlā within the world, his devotees remain always beside him as companions. They do not desire liberation because they are already liberated; without freedom, no one's actions could have the quality of līlā. The Vedānta has the aphorism:

The Lord's sole motive is play, as in the world.

The word used here is not “māyā” but “līlā,” showing that the author of the Vedānta-sūtras accepts the līlā of God and his devotees. Play does not remain identical from moment to moment and is therefore non-eternal in that sense, yet it is not unreal, because it occurs.

The weapons carry a second meaning: those they destroy are also delivered. What is real cannot be annihilated; it is purified and transformed. Devarṣi Nārada says in his aphorisms that even desire and anger should be directed toward God. This proves that desire and anger remain within a devotee, for otherwise there would be no instruction to direct them toward him. Yet they are no longer defective or distorted. Their form changes and becomes pure:

It was love alone among the women of Vraja that came to be known as desire.

Where there is love, there must be a beloved as its object, and even though beloved and lover are nondual, a distinction must be conceived. As said earlier, those struck down by the Lord's weapons are delivered. Śiśupāla and others became his companions after death. Similarly, the mind's passions are destroyed as distortions but remain in a purified form to play within līlā; hence the gift-taking līlā, the līlā of loving pique, and others. These are sanctioned by scripture and are not deceit, hypocrisy, or pretence. Every formerly harmful feeling appears purified because the veil of impure māyā has been torn for the devotee. Devotees wish to retain pride only in being the Lord's servants. Tulasīdāsa Mahārāja says:

“May such pride never leave me: I am the servant, and Raghupati is my master.”

ORIGINAL Awadhi

बात भी ठीक है, जिसके मनमें मुक्तिका लोभ नहीं, उसके चरणोंमें मुक्ति खेलती है। उस मनको मोहनेवाले मुखड़ेको देखते रहनेकी कामना यदि हट जाय तो वह काहेका भक्त और काहेका ज्ञानी? ऐसी कामनाको कौन छोड़ना चाहेगा। इसीलिये गोसाईजी महाराजने कहा है-

अस बिचारि हरि भगति सयाने। मुकुति निरादरि भगति लुभाने॥

वास्तवमें इन भक्तोंसे बढ़कर चतुर कौन होगा? क्योंकि मुक्ति तो उन्हें ऐसे ही उत्तराधिकारके रूपमें मिल जाती है। मुक्तिपर तो उनका पैतृक अधिकार हो जाता है-'मुक्तिपदेऽस्य दायभाक्'। भगवत्प्रेम अथवा भगवान्की लीलामें सम्मिलित होना मुक्तिसे परेकी वस्तु है। अतः मुक्तिके पीछे इस सुखको कौन छोड़ना चाहेगा? ऐसे भक्तोंके अंदर कामना रहती है; परंतु वह एकमें केन्द्रीभूत रहती है। भक्तराज वृत्रासुरने भगवान्से यही माँगा है। उसने कहा-'मुझे न मुक्ति चाहिये, न किसी प्रकारकी सिद्धि चाहिये, न इन्द्रका पद चाहिये, न ब्रह्माका पद चाहिये, न तो त्रिलोकीका राज्य ही चाहिये। मेरी तो एक ही लालसा है कि जिस प्रकार पक्षिशावक जिनके अभी पर नहीं आये हैं, जो उड़ नहीं सकते, अपनी माताको पुकारते हैं, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे लिये छटपटाता रहूँ।' वाह, कैसी अनोखी कामना है। बात भी ठीक है, जिसकी माँ भगवान् बन जायँ वह उस भगवान्रूप माँकी गोदको क्यों छोड़ेगा? मुक्ति तो उसकी छाया है।

तात्पर्य यह है कि भक्त शुद्धकामी होते हैं, उनका यह काम सारे सांसारिक कामोंको जलाकर उनकी चिताकी भस्म शरीरमें रमाकर नाचता है। शिव काम-प्रेम-रूप ही हैं। दूषित काम तो उनके तीसरे नेत्रसे ही दग्ध हो जाता है। शिवका रूप ही मदन-दहन है। वे सारी कामनाओंकी राखको लपेटकर दिन-रात प्रेमास्पदके नामको रटते हैं। इसी प्रकार भक्त भगवान्के अति कामी होते हैं। हमलोगोंके काम झूठे काम हैं; क्योंकि पहले तो झूठी वस्तुको चाहता है जो नश्वर है, दूसरे वह अनेकको चाहता है। इसके विपरीत भगवत्काममें दूसरेको स्थान नहीं है, उस एकमें ही अनेक समाये हुए रहते हैं। मीरा कहती है-

Language: Rajasthani/Braj

ऐसे वरको क्या वरूँ, जो जनमै औ मर जाय।

वर वरिये एक साँवरो जो चूड़लो अमर हो जाय॥

यह भगवत्काम अन्य सारी कामनाओंके जल जानेपर उत्पन्न होता है।

ENGLISH TRANSLATION

It is fitting. Liberation plays at the feet of one whose mind has no greed for liberation. If the desire to go on gazing at that mind-enchanting face were removed, what sort of devotee or knower would that person be? Who would wish to relinquish such a desire? Therefore Gosāīñjī Mahārāja said:

“Reflecting thus, the wise are drawn to devotion to Hari, and hold liberation in contempt.”

Who could be more discerning than such devotees? Liberation comes to them as an inheritance. They possess a birthright to liberation: “He becomes an heir to the state of liberation.” Love of God, or participation in the Lord's līlā, lies beyond liberation. Who would abandon that joy for liberation? Such devotees do retain desire, but it is centered upon one alone. The king of devotees, Vṛtrāsura, asked this very thing of the Lord. He said, “I desire neither liberation, nor any kind of supernatural power, nor the station of Indra or Brahmā, nor even sovereignty over the three worlds. I have only one longing: as unfledged nestlings that cannot yet fly cry for their mother, so may I continue to yearn for You.” What a wondrous desire. If God Himself has become one's mother, why would one leave the lap of that divine Mother? Liberation is merely her shadow.

The point is that devotees possess pure desire. Their longing burns all worldly desires, smears the body with the ashes of their funeral pyre, and dances. Śiva is himself the form of desire transformed into love. Corrupt desire is burned by his third eye. Śiva's very form is the burning of Madana. Wrapped in the ashes of every desire, he repeats day and night the name of his beloved. In the same way, devotees intensely desire God. Our desires are false because they first seek false and perishable objects, and secondly seek many objects. In divine desire there is no place for another, for the many are contained in that One. Mīrā says:

“Why choose a bridegroom who is born and then dies? Choose the one Dark Bridegroom by whom the bridal bracelet becomes immortal.”

This divine desire arises when all other desires have burned away.

ORIGINAL

भक्तोंके क्रोध और मान भी इसी श्रेणीके होते हैं। सीता वनगमनके प्रसंगमें श्रीरामसे कहती हैं कि यदि मुझे यह मालूम होता कि आप मुझे इस तरह अकेली छोड़कर वन जानेके लिये प्रस्तुत हो जायेंगे तो मैं अपने पितासे कह देती कि वे मुझे आपके साथ न ब्याहें। भगवान् श्रीकृष्णके सखा तो कभी-कभी भगवान्‌को थप्पड़ भी लगा देते थे। भगवान् यह चाहते थे कि वे ऐसा करें, नहीं तो भला उनकी इच्छाके विरुद्ध कोई आँख उठाकर उनकी ओर देख तो ले! यह अधिकार मामूली नहीं है। अर्जुन भी 'विहारशय्यासनभोजनेषु' भगवान्‌के साथ रहा था। उसने भगवान्‌के अंगोंपर पैर रखे थे। उनके साथ लिपटकर सोया था; किंतु भगवान्‌के विश्वरूपको देखकर वह डर गया, क्षमा माँगने लगा-'प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।' तब भगवान्‌ने उसे समझाया, सान्त्वना दी और कहा-तुम्हारा वह सारा व्यवहार, जिसके लिये तुम क्षमा माँगते हो, प्रमाद नहीं था, प्रणय था। यह सब मैंने ही कराया था। भक्तोंमें मान भी होता है, योग भी होता है, क्रोध भी होता है। माँग पूरी न होनेपर मान होता है। भक्तकी माँग पूरी न कर भगवान् सोचते हैं कि देखें, यह खीझता है कि नहीं; और उसे खीझते देखकर प्रसन्न होते हैं! तब भक्त उनसे रूठकर मान करके बैठ जाता है। 'प्रेमपत्तन' ग्रन्थमें कृष्णकी एक प्रेयसी यहाँतक कह बैठती है कि हमारे सामने नन्दनन्दनका नाम भी न लो। वहाँ प्रेमी और प्रेमास्पदमें व्यवधान ही सुखकर होता है; परन्तु यह प्रेमकी एक स्थिति होती है। यह कहनेकी वस्तु नहीं है। हमलोग इन प्रेमलीलाओंका यदि अनुकरण करने लगें तो यह अनुचित होगा। इसीलिये यह कहा गया है कि गुरुके सभी आचरणोंका अनुकरण न करो। इसका अर्थ यह नहीं है कि पहुँचे हुए गुरुसे अशुभ आचरण भी होते हैं। तात्पर्य यही है कि उनके जो आचरण हमारी दृष्टिमें उपेक्षणीय, शंकायुक्त अथवा निषिद्ध प्रतीत हों, उन्हें हमें कदापि नहीं करना चाहिये।

कहते हैं, एक बार भगवान् शंकराचार्य अपने शिष्य समुदायके साथ किसी ग्राममें भिक्षाके लिये गये। वे ज्ञान और प्रेममें ऐसे छके हुए थे कि उन्हें बाहरका अनुसन्धान ही नहीं था। ऐसी दशामें वे किसी कलवारके घर पहुँचे और वहाँ उनके भिक्षापात्रमें उन लोगोंने थोड़ी-सी शराब डाल दी, जिसे शंकर भगवान् पी गये। उनकी देखा-देखी उनके शिष्योंने भी ऐसा किया। भगवान् शंकराचार्यने सोचा, वे लोग उच्छृङ्खल हो रहे हैं और हमारी सब बातोंका अनुकरण करने लगे हैं, इन्हें थोड़ी शिक्षा देनी चाहिये। ऐसा मनमें सोचकर वे किसी ऐसी दूकानपर गये जहाँ गरम शीशा ढल रहा था। दूकानदारने उनके आवाज लगानेपर झुँझलाकर उनके पात्रमें वही गला हुआ शीशा डाल दिया। भगवान् शंकराचार्य सिद्धयोगी ठहरे। वे योगबलसे उसे भी चढ़ा गये! जब शिष्योंकी बारी आयी तब तो वे लगे घबराने और बगल झाँकने। तब गुरुजीने उनसे कहा कि तुम हमारे शास्त्रानुकूल आचरणोंका ही अनुसरण करो। जो बात तुम्हें दूषित अथवा शंकास्पद लगे उसे न करो। भागवतमें भी यही बात लिखी है और शंकरजीका उदाहरण दिया है। जो लोग शंकरजीकी भाँति हलाहल विषका पान कर सकते हैं, वे ही उनकी सारी लीलाओंका अनुकरण कर सकते हैं, अन्यथा इस प्रकारके अनुकरणसे बड़ी हानि होती है।

ENGLISH TRANSLATION

The anger and loving pride of devotees belong to this same category. When Rāma prepared to go into exile, Sītā told him that had she known he would leave her alone in this way and set out for the forest, she would have told her father not to marry her to him. Kṛṣṇa's cowherd friends sometimes even slapped the Lord. The Lord wished them to act so; otherwise who could so much as raise his eyes toward Him against His will? This privilege is no ordinary thing. Arjuna too remained with the Lord "in recreation, bed, seat, and meals." He placed his feet upon the Lord's limbs and slept embracing Him. Yet when he saw the Lord's universal form, he became afraid and begged forgiveness: "O God, as a beloved forgives a beloved, please bear with me." The Lord then instructed and comforted him: the conduct for which you seek forgiveness was not heedlessness but intimacy. I Myself caused all of it. Devotees experience loving pride, union, and anger. When a request is not fulfilled, loving pride arises. The Lord leaves a devotee's request unfulfilled to see whether the devotee becomes vexed, and is delighted to see that vexation. The devotee then sulks and sits apart in loving pique. In the work Premapattana, one of Kṛṣṇa's beloveds goes so far as to say, "Do not even speak Nandanandana's name before us." There, separation between lover and beloved may itself be delightful, but this is a particular state of love and not a matter for ordinary description. It would be improper for us to imitate these līlās of love. Hence we are told not to imitate every action of the guru. This does not mean that an accomplished guru performs evil deeds. It means that we must never imitate actions that appear to us objectionable, doubtful, or forbidden.

It is said that Śaṅkarācārya once went with his disciples to beg alms in a village. He was so intoxicated with knowledge and love that he had no awareness of the external world. In that state he arrived at a liquor seller's house. They poured a little wine into his begging bowl, and Śaṅkara drank it. Seeing him, his disciples did the same. Śaṅkarācārya thought, "They are becoming undisciplined and imitating everything I do. They need a lesson." He therefore went to a shop where molten lead was being cast. Irritated when he called out, the shopkeeper poured molten lead into his bowl. Śaṅkarācārya was a perfected yogī and drank that too by yogic power. When the disciples' turn came, they grew alarmed and looked away. The guru told them, "Follow only those of my actions that accord with scripture. Do not do anything that appears corrupt or doubtful to you." The Bhāgavata teaches this very principle and gives the example of Śaṅkara. Only those who can drink the halāhala poison as Śaṅkara did may imitate all his līlās. Otherwise such imitation causes great harm.

ORIGINAL Sanskrit

अस्तु, जब मुक्तिकी कामनाको ही कामना नहीं कहते तब जो कामना मुक्तिको त्यागनेके अनन्तर होती है, उसे कामना कैसे कह सकते हैं? लौकिक कामको तो भगवान्ने शत्रु कहकर मारनेकी आज्ञा दी है-

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।

नामोंसे भ्रम फैल गया। जैसे सगुण नामसे ही भगवान्को वेदान्ती लोग मायाविशिष्ट एवं मायिक कहने लगे; किंतु जिनके अंग-गन्धसे मायाके पार पहुँचे हुए सिद्ध पुरुष कामना-क्षुब्ध हो जाते हैं उन्हें हम मायाविशिष्ट कैसे कह सकते हैं? जिस प्रकार नरक भी एक लोक है और गोलोक भी एक लोकविशेष है, उसी प्रकार हमलोगोंके कामकी और भक्तोंके कामकी तुलना की जाती है। वास्तवमें भक्तोंका काम तो सब कुछ समर्पण हो जानेके बाद प्रकट होता है और वही महायोग है। सच पूछिये तो वहाँ श्रेयका ही नाम काम है।

भक्तके हृदयमें काम-क्रोध आदिकी गन्ध भी नहीं होती। उसकी एकमात्र कामना भगवत्प्राप्तिकी होती है और जैसे ही भगवत्प्राप्तिकी कामना उत्पन्न होती है, उसी समय सारे दोष नष्ट हो जाते हैं। भगवान् कितने आनन्दमय हैं, कितने प्रेममय हैं, उनमें कितनी अधिक शान्ति है-यह जानते ही मनुष्यका ध्यान संसारसे छूट जाता है और वह एकमात्र भगवान्के लिये व्याकुल हो उठता है, उसे भगवान्के अतिरिक्त उपनिषदों आदिमें किसी भी वस्तुकी आकांक्षा रहती ही नहीं। वेदान्तमें जिसे मुमुक्षा कहते हैं, वही भक्तकी लालसा कहलाती है। संसारकी सभी वस्तुएँ तुच्छ हो जाती हैं। वैराग्यकी प्रथमावस्थामें ही-मुमुक्षाकी प्रारम्भिक स्थितिमें ही-संसारके सभी विषय काकविष्ठावत् तुच्छ, घृणित, हेय प्रतीत होने लगते हैं। जब संसारके किसी विषयसे राग नहीं, काम नहीं तब फिर क्रोध कहाँसे होगा? जब किसी वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छा ही नहीं रही तब फिर क्रोध होगा ही क्यों? वहाँ तो मानाभिमान भी नष्ट हो जाते हैं। भगवान्के रहस्यको जानकर अपनी हीनताका ज्ञान होता है। “मत्समः पातकी नास्ति” का भाव यही आता है। यही वास्तविक हीनताका आतुर अनुभव है। अभिमान करनेकी उसके पास कोई वस्तु रह नहीं जाती। भगवान्की अप्राप्तिमें जो अपनेको कंगाल मानता है वही सच्चा दीन है। इस दीनतामें दोष स्वयं भस्म हो जाता है। भक्त अपने हृदयका कोना-कोना टटोलता है। वह अपने भीतर दोषोंका अनुभव करता है। हो सकता है कि जबतक भगवत्-प्राप्ति नहीं हो जाती, दोषोंका लेशांश रह जाय। भगवत्-प्राप्ति होते ही सारा अन्तस्तल तेजसे उद्दीप्त हो जाता है।

प्रेमके मार्गमें भगवान्के साथ, भगवान्की इच्छानुसार, भगवान्की लीलाके लिये भक्तके हृदयमें केवल भगवान्की प्राप्तिकी कामना रह जाती है। भगवान्में भक्तकी लालसा और भक्तमें भगवान्की कामना होती है। सीताके विरहमें राम लताओंसे, हिरणसे पूछते हैं-'कहीं तुमने सीताको देखा है?' पागलकी भाँति राम वन-वनकी खाक छानते फिरते हैं। रामकी विकलता देखकर आश्चर्य होता है; परंतु सीताके प्राप्त हो जानेपर उनका परित्याग कर देते हैं। इसमें कामनाकी गन्ध भी नहीं। यह तो प्रभुकी प्रेम-लीलाकी रहस्यपूर्ण क्रीड़ा है।

Language: Sanskrit

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

> यही उनका व्रत है। भक्तके मनमें प्रभुकी कामनासे ही संकल्प उठता है। परमात्माका प्रेम पाकर भक्त आनन्दसे नाच उठता है और भक्तका आनन्द देखकर भगवान्‌का प्रेम उमड़ आता है। इस प्रकार प्रेम और आनन्दकी अजस्र वर्षा होती रहती है। प्रेमसे आनन्द और आनन्दसे प्रेमकी वृद्धि होती है। उस दिव्य कामकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। सांसारिक पदार्थों और विषयोंके साथ उस प्रेम-कामको घटाना प्रेमका अपमान करना है। अनधिकारियोंके कारण ही प्रेमका मार्ग अपमानित और कलंकित हो गया। दुरुपयोग तो लोग गीतातकका करते हैं। अपने दुराचारका समर्थन करनेके लिये मनुष्य शास्त्र और संतोंकी शरण लेता है। प्राचीन कालमें आचरणपर अधिक ध्यान रखा जाता था, साहित्यपर कम। आज तो प्रेसकी दयासे साहित्य सहज हो गया है और आचरण दुरूह।

ENGLISH TRANSLATION

When even the desire for liberation is not called desire, how can the longing that remains after renouncing liberation be called desire? The Lord has commanded us to slay worldly lust as an enemy:

“Slay this invincible enemy in the form of desire, O mighty-armed one.”

Names have caused confusion. Because the Lord is called saguṇa, Vedāntins began describing Him as conditioned by māyā and māyic. Yet how can we call Him conditioned by māyā when even perfected beings who have crossed beyond māyā are stirred with longing by the fragrance of His limbs? Hell is one realm and Goloka another distinct realm; in the same way, our desire is compared in name with the desire of devotees. A devotee's longing appears only after everything has been surrendered, and it is itself the great yoga. In truth, there the highest good alone is called desire.

Not even the scent of lust or anger remains in a devotee's heart. The sole desire is to attain God, and as soon as that longing arises all defects are destroyed. On learning how blissful, loving, and peaceful the Lord is, a person's attention leaves the world and yearns for Him alone. Apart from God, such a person seeks nothing even in the Upaniṣads. What Vedānta calls longing for liberation is called the devotee's longing. Every worldly thing becomes insignificant. At the very first stage of detachment, the initial state of longing for liberation, all worldly objects appear trivial, disgusting, and rejectable like a crow's droppings. If there is no attachment or desire for worldly objects, how can anger arise? If no wish to obtain anything remains, why would anger exist? Pride and self-importance are also destroyed. Knowing the mystery of God brings awareness of one's own lowliness. The feeling arises, “There is no sinner equal to me.” This is the anguished experience of genuine humility. Nothing remains in which to take pride. One who considers oneself destitute without attainment of God is truly humble. In this humility defects burn away of themselves. The devotee searches every corner of the heart and perceives faults within. A minute trace may remain until God is attained, but at attainment the entire interior becomes radiant with light.

On the path of love, the devotee's heart retains only the desire to attain the Lord, in His company, according to His wish, and for His līlā. The devotee longs for God, and God desires the devotee. Separated from Sītā, Rāma asks the vines and deer, “Have you seen Sītā anywhere?” Like a madman he searches the dust of forest after forest. We marvel at Rāma's anguish, yet after Sītā is recovered He abandons her. There is not even the scent of ordinary desire in this. It is the mysterious play of the Lord's līlā of love.

“As people surrender unto Me, so do I reciprocate with them.”

This is His vow. The devotee's resolves arise solely from longing for the Lord. Receiving the Supreme's love, the devotee dances in bliss, and on seeing the devotee's bliss, the Lord's love surges forth. Thus love and bliss rain down without end. Love increases bliss, and bliss increases

love. We cannot even imagine that divine desire. To reduce that loving desire to the level of worldly objects and sense pleasures is to dishonor love. The path of love has been disgraced and stained by those without qualification. People misuse even the Gītā, taking shelter in scripture and saints to justify misconduct. In ancient times greater attention was given to conduct and less to literature. Today, by the grace of the printing press, literature has become easily available and conduct difficult.

ORIGINAL Sanskrit

भक्ति, ज्ञान अथवा योगमार्गमें साधनाद्वारा किसी भी मार्गमें काम-क्रोधादिका समर्थन नहीं हो सकता। निष्काम कर्मयोगमें भी, सिद्धि-असिद्धिमें सम होकर, संगका त्याग जहाँ कार्य होता है, फिर उसमें क्रोधादि कहाँसे आयेंगे? भगवान्के लिये कर्मोंका नाम भक्ति है और जिसकी भक्ति करते हैं, उसे जाननेका नाम ज्ञान है। कर्म, भक्ति और ज्ञानमें कोई विरोध है ही नहीं। इनके साधनमें समानरूपसे काम, क्रोध और लोभ निःशेष हो जाना परमावश्यक ही नहीं; अपितु अनिवार्य है। भगवान्ने अर्जुनको ललकारते हुए कहा है-

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।

इन शत्रुओंके वशमें जबतक हम हैं, तबतक हमारे मनमें भगवत्प्राप्तिकी इच्छा ही नहीं होगी।

Language: Sanskrit

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

(गीता १६।२१)

काम, क्रोध और लोभ-ये नरकके द्वार हैं। ये आत्माका पतन करनेवाले हैं। इन तीनोंका नाश करनेपर ही भक्तिका अधिकार प्राप्त होता है। जहाँ काम है, वहाँ राम नहीं। क्रोध तो पिशाच है। काम, क्रोधादि मोहिनी, आसुरी और राक्षसी वृत्तियाँ हैं। भक्ति तो क्या संसारके सुखके लिये भी काम-क्रोधादिको मिटा देना आवश्यक है। भक्तिके पथमें आश्वासनकी बात अवश्य यह है कि भक्तिमें लग जानेपर इन शत्रुओंका नाश स्वयं हो जाता है। भगवान्के बलकी शरण ले लेनेपर इनका नाश सहज ही हो जाता है। भरोसेकी बात यह है कि भगवान्की प्रतिज्ञा है-'हमारी शरणमें चले आओ, मैं तुम्हारे सब पापोंका नाश कर दूँगा।' जब भगवान्का बल, भगवान्का भरोसा हमें प्राप्त हो गया तब फिर डरना कैसा! भगवान्के बलका भरोसा रख उनकी ही कृपाके आश्रित होकर निरन्तर मन-वाणीसे उनका नाम लेता रहे-

Language: Awadhi

बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।

जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ! सो समरामहे॥

भगवान्पर विश्वास हो जाय, दूसरेपरसे आशा हट जाय, भगवान्का आश्रय लेकर भगवान्के नामका जप करता रहे-फिर क्या पूछना, बिना श्रमके वह संसारसे तर जाता है। जीवन थोड़ा है, विघ्न अनेक प्रकारके हैं। साधनाके उपयुक्त न स्थान है, न सामग्री है और न गुरु है। ऐसी दशामें सीधा मार्ग तो केवल भगवान्का नाम ही है। नामके जहाजपर 'उस पार' पहुँचना अत्यन्त सुगम है। इससे परे कोई साधना नहीं। मनको इधर-उधर न भटकने दें-भगवन्नामका दास होकर 'राम-नामके जपसे ही मनुष्य तर जाता है।' शर्त यह है कि भगवान्में पूर्ण विश्वास हो। किसी दूसरेकी आशा न हो और नाम न छूटे-फिर तो सारा काम सध ही गया।

यह इसलिये निवेदन कर दिया कि कहीं भक्ति-प्रेमकी आड़में आप कामादिको प्रश्रय न दें। साधनाके पथमें बहुत सावधानीके साथ चलनेकी आवश्यकता है। यह बार-बार निवेदन किया जा चुका है और बार-बार दुहरानेपर भी यह बात बासी नहीं होती-वह यह कि सावधानी ही साधना है।

ENGLISH TRANSLATION

No path of practice, whether devotion, knowledge, or yoga, can support lust, anger, and their companions. Even in desireless karma-yoga, where one acts with equality in success and failure and renounces attachment, how could anger and the rest arise? Action performed for God is called devotion, and knowing the One whom one worships is called knowledge. There is no opposition among action, devotion, and knowledge. In the practice of each, the complete eradication of desire, anger, and greed is not merely supremely necessary but unavoidable. The Lord challenged Arjuna:

“Slay this invincible enemy in the form of desire, O mighty-armed one.”

So long as we remain under these enemies' control, the desire to attain God cannot arise in our minds.

“This threefold gate of hell destroys the self: desire, anger, and greed. Therefore one should abandon these three.”

Desire, anger, and greed are the gates of hell and cause the self's downfall. Only after destroying them does one become qualified for devotion. Where kāma is, Rāma is not. Anger is a ghoul. Desire, anger, and the rest are deluding, demonic, and rākṣasa-like tendencies. They must be removed not only for devotion but even for happiness in the world. The assurance on the path of devotion is that once one engages in devotion, these enemies perish of themselves. Taking refuge in the Lord's strength makes their destruction easy. We may trust His promise: “Come into My refuge, and I shall destroy all your sins.” Once we possess the Lord's strength and confidence in Him, why should we fear? Trusting His power, relying only upon His grace, one should continually repeat His name with mind and speech:

“Trusting You, abandoning every other hope, those who remain Your servants cross worldly existence without effort by repeating Your name. O Lord, this I remember.”

Once there is faith in God, hope in every other support falls away, and one continues repeating His name under His refuge, what more remains to be said? Without effort one crosses the world. Life is short and obstacles are many. We have neither a suitable place nor materials for practice, nor a guru. In such a condition, the sole direct path is the Lord's name. It is exceedingly easy to reach the farther shore aboard the ship of the Name. There is no practice beyond it. Do not allow the mind to wander. Become a servant of the divine name, for “a person crosses by repeating Rāma's name alone.” The condition is complete faith in God, no hope in another, and unbroken repetition of the Name. Then the whole task is accomplished.

This has been said so that you do not shelter lust and its companions beneath the cover of devotional love. One must walk the path of practice with great care. This has been stated repeatedly, and repetition does not make it stale: carefulness itself is spiritual practice.

ORIGINAL Sanskrit

भगवान्के चरणोंका ध्यान हो रहा था। वे चरण हमारे हृदयमें तभी बसते हैं, जब काम-क्रोधादि किसी प्रकारके विकार न रहें। भगवान्के चरण-चिह्नोंमें, जिनका उल्लेख पहले आ चुका है, उसके बाद चलता हूँ। भगवान्के चरणोंमें अग्निकुण्ड है, जिसमें भक्तोंके सारे पाप भस्म हो जाते हैं। जिसके हृदयमें ये चरण आ बसे, उसका सारा पाप भस्म हो गया। इसके सिवा भी यह अग्निकुण्ड यज्ञकुण्ड है, जिसमें संसारके सभी यज्ञ-याग पहुँचते हैं। हम जो भी आहुति देते हैं वह भगवान्के चरणोंमें ही पहुँचती है। सभी यज्ञोंके भोक्ता वे ही हैं-

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५।२९)

देवताओंके रूपमें भी वे ही भोक्ता हैं। जो जिस रूपमें भक्ति करता है, उसी रूपमें भगवान् श्रद्धा उत्पन्न कर देते हैं। भगवान्के चरणोंकी अग्नि बराबर जलती रहती है। उसमें भक्तके समस्त पाप स्वाहा हो जाते हैं। इस अग्निकुण्डका भाव भक्तोंके हृदयमें एक और है और वह है बड़ा मनोहर। जैसे गोपियाँ भगवान्के विरहमें जलती रहती हैं, उसी प्रकार भगवान्की विरहाग्नि भी जलती रहती है।

ENGLISH TRANSLATION

We were contemplating the Lord's feet. Those feet dwell in our heart only when no disorder such as desire or anger remains. I now continue with the marks upon the Lord's feet mentioned earlier. On His feet is a fire altar in which all the devotees' sins are burned. When these feet settle within one's heart, every sin is reduced to ash. This fire altar is also the sacrificial altar to which all the world's rites and sacrifices arrive. Whatever oblation we offer reaches the Lord's feet, for He alone is the enjoyer of every sacrifice:

“Knowing Me as the enjoyer of sacrifices and austerities, the great Lord of all worlds, and the friend of every being, one attains peace.”

He is the enjoyer even in the forms of the gods. Whichever form one worships, the Lord establishes faith in that very form. The fire of the Lord's feet burns continuously, and all the devotee's sins are offered into it. This fire altar carries another, most enchanting meaning in devotees' hearts. As the gopīs burn in separation from the Lord, so the Lord's own fire of separation continues to burn.

ORIGINAL

भगवान्के चरणोंमें जौ और तिलके चिह्न हैं। जौका भाव है-देव-कर्म और तिलका भाव है पितृ-कर्म। भगवान्के चरणोंका आश्रय लिये बिना कोई भी देवकर्म अथवा पितृकर्म सम्पन्न नहीं होता। उन कर्मोंमें जो कुछ भी अपूर्णता होती है, वह भगवान्के नामसे पूर्ण हो जाती है। गीताजीमें इसी को 'ॐ तत्सदिति' कहा है।

भगवान्के चरणोंमें त्रिकोणका जो चिह्न है उसका भाव है आदि योनि, जिसमें बिन्दु स्थापित होता है। यही प्रकृतिकी साम्यावस्था है। उसीसे जगत् उत्पन्न होता है। इस त्रिकोणमें त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा त्रिगुण-(सत्, रज, तम)-का भाव भी है। इसके सिवा भी बहुत रहस्यपूर्ण भाव हैं। साधनाके सभी मार्गोंमें त्रिपुटी होती है। भक्तिमें भक्त, भक्ति और भगवान् तथा ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय और ध्यानमें ध्याता, ध्यान, ध्येय। इन तीनोंकी एकता ही सच्ची प्राप्ति है और त्रिपुटीकी एकता इन चरणोंमें ही प्राप्त होती है।

भगवान्के चरणोंमें जो 'नव कोश' हैं उनका भाव है नवधा भक्ति तथा नवग्रह। नवधा भक्ति तथा नवग्रह भगवान्के चरणोंके आश्रित हैं। इसके अतिरिक्त नौको चाहे जिस संख्यासे गुणा करें नौ-का-नौ ही होता है। नौसे १,२,३,४,५,६,७,८,९,१० से गुणा करनेपर जो भी गुणनफल होगा उसमेंसे प्रत्येकका योग ९ ही होगा। ९,१८,२७,३६,४५,५४,६३,७२,८१,९० मेंसे किसीको जोड़ें योगफल ९ ही होगा। सारे संसारका विस्तार उस 'एक' से ही है। वह रहता है, उतना ही उतना।

भगवान्के चरणोंमें ब्रह्माजी हैं। ये मूलसृष्टिकर्ता हिरण्यगर्भ हैं। उन्हींका दूसरा नाम मूल प्रकृति है। उन्हींसे वेद प्रकट होते हैं। ये भगवान्के चरणोंके आश्रित हैं। ब्रह्माजीका स्थान भगवान्के चरणोंमें कमलके पास ही है। कमल ही आदि पुष्प है। भगवान्के चरणोंमें ही निवासकर ब्रह्मा सृष्टिकी रचना करते हैं। इस प्रकार सारी सृष्टि मूलरूपसे भगवान्के चरणोंमें संनिहित है।

भगवान्के चरणोंमें शेषनागका चिह्न है। जिस शेषनागके मस्तकपर पृथ्वी स्थित है, उस शेषनागका आधार भगवान्के चरण-कमल हैं। शेषनाग हजार मुखोंसे भगवान्का गुणानुवाद कर रहे हैं। वे पृथ्वीको फूलके समान सिरपर लिये रात-दिन हजारों फणोंसे भगवान्की स्तुति करते रहते हैं।

भगवान्के चरणोंमें जो अश्वका चिह्न है उसका भाव यह है कि भगवान्के चरणोंका आश्रय लेकर जो जहाँ चाहे जा सकता है। अश्वमेधसे महापातकोंका नाश होता है। भगवान्के चरणोंके ध्यानसे हजारों अश्वमेधोंका पुण्य होता है। असंख्य अश्वमेधसे भी बढ़कर भगवान्के चरणोंका ध्यान है। भगवान्के चरणोंका आश्रय जिन्होंने लिया उनकी अबाध गति हो जाती है; जैसे-नारद आदिकी थी।

ENGLISH TRANSLATION

On the Lord's feet are marks of barley and sesame. Barley signifies rites for the gods, while sesame signifies ancestral rites. No rite for gods or ancestors is completed without taking refuge in the Lord's feet. Whatever remains incomplete in those rites is completed by the Lord's name. The Gītā refers to this as “Om Tat Sat.”

The triangular mark on the Lord's feet signifies the primal womb in which the point is established. This is the equilibrium of primordial nature, from which the world arises. The triangle also signifies the three deities, Brahmā, Viṣṇu, and Maheśa, and the three guṇas, sattva, rajas, and tamas. It carries many other mysterious meanings. Every path of practice has a triad: in devotion, devotee, devotion, and God; in knowledge, knower, knowledge, and known; in meditation, meditator, meditation, and object of meditation. The unity of these three is true attainment, and the unity of every triad is attained at these feet.

The “nine compartments” upon the Lord's feet signify ninefold devotion and the nine planets, all of which depend upon His feet. Moreover, multiply nine by any number and it remains nine in its digit sum. When nine is multiplied by 1 through 10, the digits of every product add to nine: 9, 18, 27, 36, 45, 54, 63, 72, 81, and 90 all have a digit sum of nine. The entire world expands from that One, who nevertheless remains exactly as He is.

Brahmā is present on the Lord's feet. He is Hiraṇyagarbha, the primal creator, whose other name is primordial nature and from whom the Vedas manifest. He rests upon the Lord's feet. Brahmā's place there is beside the lotus, the primordial flower. Dwelling at the Lord's feet, Brahmā creates the universe. Thus all creation is present there in its root form.

The mark of Śeṣanāga is on the Lord's feet. Śeṣa supports the earth upon his heads, while the lotus feet of the Lord support Śeṣa. Bearing the earth upon his head as lightly as a flower, he glorifies the Lord day and night with his thousand mouths and hoods.

The mark of a horse signifies that by taking shelter of the Lord's feet one may go wherever one wishes. The Aśvamedha removes the gravest sins, while contemplation of the Lord's feet gives the merit of thousands of Aśvamedhas. Indeed, it surpasses numberless such sacrifices. Those who take refuge in His feet gain unhindered movement, as Nārada and others did.

ORIGINAL

ऐरावत हाथीका चिह्न भी भगवान्के चरणोंमें है। ऐरावत चौदह रत्नोंमें एक है। वह इन्द्रका वाहन है। जो भगवान्के चरणोंको प्राप्त हो गया उसे इन्द्रत्व प्राप्त हो गया। गजराजकी एक टेरपर भगवान् दौड़े आये। गरुड़की गतिसे संतोष नहीं हुआ; वे उसे छोड़कर उतर आये। गजका चिह्न भगवान्की भक्तवत्सलताका स्मरण दिलाता है।

गरुड़का चिह्न भी भगवान्के चरणोंमें है। गरुड़ तीव्र-गतिका द्योतक है। इसके सिवा गरुड़ साँपोंको खा जाता है। बड़े-से-बड़े विषधर विषय उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते, जिसे भगवान्के चरण प्राप्त हैं। भगवान्के चरण-कमलोंको हृदयमें बसा लेनेपर फिर विषयकी क्या हस्ती?

भगवान्के चरणोंमें 'अष्टकोण' का जो चिह्न है, उसके सम्बन्धमें तन्त्र-ग्रन्थोंमें कई प्रकारके भाव आये हैं। यह आठों दिशाओंके अभिमन्त्रणका प्रतीक है। साधक अनुष्ठान आरम्भ करनेके पूर्व अपने इष्टदेवको अष्टकोणमें स्थापित कर पुनः आठों दिशाओंमें प्रतिष्ठापित करता है। वह आठों दिशाओंमें अपने भगवान्को ही देखता है। अष्टकोणका तात्पर्य अष्टसिद्धियोंसे भी है। जिसके हृदयकमलमें भगवान्के चरणकमल बसने लगे, उसे अष्टसिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं, परंतु भगवान्के चरणोंको प्राप्त पुरुष अष्टसिद्धियोंकी ओर कभी देखतातक नहीं। उसका मन तो निरन्तर भगवान्के चरणोंमें रम रहा है। उसे सिद्धियोंकी ओर देखनेका अवकाश ही कहाँ है। अष्टकोणका एक और बड़ा मनोहर भाव है। जिसका मन भगवान्के चरणोंमें रम रहा है, उसके हृदयमें निरन्तर आठों पहर भगवान् रम रहे हैं। भगवान्के चरणोंका आश्रय जहाँ जिसने लिया कि भगवान् उसके हृदयमें आ बसते हैं, फिर क्या पूछना?

भगवान्के चरणोंमें जो हरिणका चिह्न है, वह प्रेमियोंको बड़ा ही सुख देनेवाला है। हरिणका चित्त बड़ा ही सरल होता है। वह वीणाके मधुर स्वरपर अपने-आपको अपने पकड़नेवालेके हाथ दे डालता है, मृत्युतककी परवाह नहीं करता। भक्त भी भगवान्के गुण-श्रवणमें इतना परायण हो जाता है तथा उसका चित्त इतना सरल होता है कि वह अपनी मृत्युतककी परवा नहीं करता। भगवान्का गुणानुवाद जहाँ सुननेको मिला, वह मुग्ध मृगकी भाँति सारी सुध-बुध भुलाकर तल्लीन हो जाता है।

ENGLISH TRANSLATION

The mark of Airāvata the elephant is also on the Lord's feet. Airāvata is one of the fourteen jewels and the vehicle of Indra. One who attains the Lord's feet attains the sovereignty of Indra. At a single cry from Gajarāja, the Lord rushed to him. Garuḍa's speed did not satisfy Him, so He dismounted and went ahead. The elephant mark recalls the Lord's tenderness toward His devotees.

The mark of Garuḍa is also on His feet. Garuḍa signifies tremendous speed, and he devours serpents. Even the most venomous sensory objects cannot harm one who has attained the Lord's feet. Once those lotus feet dwell in the heart, what power can sense objects retain?

Tantric texts offer many meanings for the octagonal mark on the Lord's feet. It symbolizes the consecration of the eight directions. Before beginning a rite, the practitioner establishes the chosen deity within an octagon and then installs that deity in all eight directions, seeing the Lord alone everywhere. The octagon also signifies the eight supernatural powers. One in whose heart-lotus the Lord's lotus feet begin to dwell easily gains all eight powers, yet a person who has attained those feet never even looks toward them. The mind remains absorbed in the Lord's feet and has no leisure to attend to powers. The octagon carries another enchanting meaning. When the mind delights in the Lord's feet, the Lord sports within the heart through all eight watches of the day. Once anyone takes refuge in His feet, He comes to dwell in that person's heart. What more need be said?

The deer mark on the Lord's feet gives great delight to lovers. A deer's heart is exceedingly guileless. Enchanted by the sweet music of a vīṇā, it delivers itself into the hunter's hands without caring even for death. A devotee becomes so devoted to hearing the Lord's qualities and so simple-hearted that death itself causes no concern. Wherever the Lord's praises are heard, the devotee forgets all awareness like a spellbound deer and becomes absorbed.

ORIGINAL

नारदजीका निवास भगवान्‌के चरणकमलोंमें भी है। नारदजी प्रेमाभक्तिके प्रतीक हैं। भगवान्‌के गुण, भक्ति और प्रेमका प्रचार करनेमें ही वे निरन्तर निरत हैं। भक्तिके तो वे आचार्य ही ठहरे। महर्षि वाल्मीकिको भगवत्प्रेरणा देनेवाले और श्रीरामायण-रचनाकी ओर प्रवृत्त करनेवाले ये ही देवर्षि हैं। श्रीवेदव्यासजी महाभारतका प्रणयनकर उदास बैठे थे। उनकी वाणीको श्रीमद्भागवतकी ओर प्रेरित कर देवर्षि नारदने भक्तिकी वह धारा बहा दी जिसमें आज भी स्नानकर हम पवित्र हो रहे हैं। इस प्रकार व्यासको शान्ति देनेवाले नारदजी ही हैं। भगवद्भक्तिमें श्रीशुकदेवजीको प्रवृत्त करनेवाले नारदजी हैं। देवताओंकी कौन कहे असुरोंतकमें वे भक्तिका प्रचार करते थे। प्रह्लादजी जब गर्भमें थे, तभी नारदजीने उन्हें भक्तिका इतना रस पिलाया कि संसारमें प्रह्लादकी जोड़ीका भक्त ही न हुआ। प्रह्लादकी जननी कयाधू भी भगवद्भक्तिपरायणा हो गयी।

नारदजी जहाँ जाते हैं, वहीं वीणा हाथमें लिये भगवान्‌के गुण गाने लगते हैं और भगवान् वहीं उपस्थित हो जाते हैं। नारद भक्तोंके लिये आदर्श हैं। स्वयं प्रेमाभक्तिमें आत्मविस्मृत रहना; अहर्निश भगवान्‌के प्रेमकी ही चर्चा करना और जहाँ जाना वहीं भक्तिकी वार्ता करना। ऐसे ही भक्तोंको चरण-रज-प्रपन्न कहते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

Nārada too resides upon the Lord's lotus feet. He is the embodiment of loving devotion and remains ceaselessly engaged in spreading the Lord's qualities, devotion, and love. He is indeed an ācārya of bhakti. This divine sage inspired the seer Vālmīki toward God and set him upon composing the Rāmāyaṇa. After composing the Mahābhārata, Vedavyāsa sat in sorrow. By directing Vyāsa's speech toward the Śrīmad Bhāgavata, Nārada caused a current of devotion to flow in which we still bathe and become pure. Thus it was Nārada who gave Vyāsa peace. Nārada also drew Śukadeva into devotion to the Lord. He spread devotion not only among the gods but even among the asuras. While Prahlāda was still in the womb, Nārada made him drink so deeply of bhakti-rasa that the world has known no devotee equal to him. Prahlāda's mother Kayādhū also became wholly devoted to God.

Wherever Nārada goes, he takes up his vīṇā and begins singing the Lord's qualities, and the Lord becomes present there. Nārada is the devotees' model: to remain self-forgetful in loving devotion, to speak day and night only of the Lord's love, and wherever one goes to speak of bhakti. Such devotees are said to have surrendered to the dust of His feet.

ORIGINAL

मनुष्याकृतिमें नारदजी, ब्रह्माजी और श्रीराधिकाजी भगवान्‌के चरणोंमें हैं। ब्रह्माजी तथा नारदजीके सम्बन्धमें निवेदन किया जा चुका है। अब श्रीराधिकाजीके भावपर आइये। राधाजी तो भगवान्‌के चरणोंका प्रतिबिम्ब हैं। राधाजीको जो भगवान्‌से भिन्न मानते हैं वे महान् पापके भागी हैं। श्रीभगवान् अपनी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजीको लेकर ही आविर्भूत होते हैं। उनके मधुर दिव्य विग्रहमें रसराज और महाभावकी अद्भुत एकता होती है। आह्लादिनी-शक्ति ही भगवान्‌के प्रत्यक्ष विग्रह होनेमें हेतु है। आह्लाद ही वपुको प्रकट करता है। भगवान् जहाँ जाते हैं वहाँ पहले ही राधाजी पहुँचती हैं; क्योंकि उनका निवास भगवान्‌के चरण हैं। जिनके हृदयमें भगवान्‌के चरण निवास करते हैं उस हृदयमें श्रीराधाजी भी बसती हैं और उस हृदयमें प्रेमाभक्तिका निरन्तर निवास होता है।

ENGLISH TRANSLATION

In human form Nārada, Brahmā, and Śrī Rādhikā are present upon the Lord's feet. Brahmā and Nārada have already been discussed; now consider the meaning of Śrī Rādhikā. Rādhā is the reflection of the Lord's feet. Those who regard her as different from the Lord incur grave sin. The blessed Lord manifests only together with His bliss potency, Śrī Rādhā. Within their sweet divine form, Rasarāja and Mahābhāva possess a wondrous unity. The bliss potency is the very cause of the Lord's manifest form, for bliss reveals embodiment. Wherever the Lord goes, Rādhā has already arrived, because her dwelling is His feet. In the heart where the Lord's feet reside, Śrī Rādhā also dwells, and loving devotion resides there without cease.

ORIGINAL

भगवान्‌के चरणोंमें दिव्य पीताम्बर भी है। इन चरणोंमें सारा विभूतियोग है। भगवान्‌के वस्त्र, आभूषण, आयुध, गुण आदि सभी दिव्य हैं और स्वयं भगवान् उन रूपोंमें हैं। अतः ये सभी चिन्मय हैं। बस, इस पीताम्बरका ध्यान हो गया कि मनुष्य निहाल हो गया। श्रीराधाजीका वर्ण कनकके समान है। वह पीताम्बर भी कनक-रंगका ही है। श्रीराधाजीका वर्ण भगवान्‌के पीताम्बरका है। भगवान्‌का वर्ण नीला है और श्रीराधाजीका वस्त्र नीलवर्ण है। राधाका अम्बर श्रीकृष्ण हैं और भगवान्‌का अच्छादन श्रीराधाजी हैं। पीताम्बर उच्च प्रेमकी अद्वैतावस्थाका प्रतीक हैं। इस पीताम्बरके नीचेसे भगवान्‌का दिव्य नील वर्ण छन-छनकर आ रहा है और उस दिव्य योगमें राधा और कृष्णकी सम्पूर्ण एकता झलक रही है। जिसके हृदयमें भगवान्‌के चरण बसते हैं, उसे महाभावकी प्राप्ति अत्यन्त सुगम हो जाती है।

ENGLISH TRANSLATION

The divine yellow garment is also upon the Lord's feet. The entire yoga of divine manifestations is contained there. The Lord's clothing, ornaments, weapons, qualities, and all else are divine, and the Lord Himself is present in those forms. Therefore all of them are conscious and spiritual. The very contemplation of this yellow garment blesses a person completely. Śrī Rādhā's complexion resembles gold, and the yellow garment is also golden. Her complexion is the color of the Lord's garment. The Lord's complexion is blue, and Śrī Rādhā's garment is blue. Śrī Kṛṣṇa is Rādhā's covering, and Śrī Rādhā is the Lord's covering. The yellow garment symbolizes the nondual state of exalted love. The Lord's divine blue color shines through from beneath it, and the complete unity of Rādhā and Kṛṣṇa gleams within that divine union. One in whose heart the Lord's feet dwell attains Mahābhāva with great ease.

ORIGINAL

भगवान्‌के चरणोंमें एक दिव्य पुष्प है। इसका सम्बन्ध योग-क्रियासे प्राप्त योगसंसिद्धिसे है। योगी लोग जब साधकपर प्रसन्न होते हैं, तब अपने शिष्यको एक पुष्प दिया करते हैं। वह पुष्प अप्राकृत होता है। वह योगपुष्प होता है। यह दिव्य पुष्प जिसे प्राप्त होते हैं, वही दिव्य हो जाता है। जहाँ योगीश्वरने दिव्य पुष्प दिया कि उसकी साधना पूर्ण हो जाती है। भगवान् तो योगेश्वरेश्वर हैं। यह दिव्य योगपुष्प इनके चरणोंमें होता है और जिसके हृदयमें ये चरण बसते हैं उसे योगकी सारी पूर्णता प्राप्त हो जाती है। उसकी समग्र साधना सफल हो जाती है। इस दिव्य पुष्पको कुछ लोग पारिजातपुष्प भी मानते हैं। कुछ भक्तोंने इसे कुमुदनी माना है। जिस प्रकार कुमुदनी चन्द्रमाको देखकर खिल पड़ती है, उसी प्रकार भक्तका हृदय भी भगवान्‌के मुखचन्द्र एवं नखचन्द्रको देखकर खिल उठता है।

ENGLISH TRANSLATION

There is a divine flower upon the Lord's feet. It is connected with yogic perfection attained through yogic practice. When yogīs are pleased with an aspirant, they give their disciple a flower. That flower is supramundane, a flower of yoga, and whoever receives it becomes divine. The moment the lord of yogīs gives this divine flower, the disciple's practice is complete. The Lord is the Lord even of the lords of yoga. This divine yogic flower rests upon His feet, and one whose heart contains those feet attains the full perfection of yoga. That person's entire practice succeeds. Some regard this flower as the pārijāta, while other devotees consider it the night-blooming water lily. Just as that lily opens upon seeing the moon, the devotee's heart blossoms on seeing the moons of the Lord's face and toenails.

ORIGINAL

भगवान्के चरणोंमें छत्र है। छत्रके दो भाव हैं। ताप और उष्णसे बचनेके लिये छत्रका उपयोग होता है तथा आचार्यों और महाराजाओंके ऊपर भी छत्र रहता है। जिसे भगवान्के चरणोंका आश्रय मिल गया उसे विषयोंके अभावका ताप अथवा विषयोंकी बहुलताकी वर्षा कुछ नहीं कर सकती। विषयोंके नाशके समान मनुष्यके लिये कोई ताप नहीं। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक-ये त्रिविध ताप विषयोंके अभावका नाम हैं। जिसने भगवान्के चरणोंका आश्रय लिया उसे त्रिविध ताप सता नहीं सकते। मनुष्य विषयोंमें भीगा रहता है। इन चरणोंके आश्रयमें आ जानेसे ही विषयोंकी वर्षा बंद हो जाती है। उसे न विषयोंके नाशमें ताप होता है, न प्राप्तिमें आसक्ति होती है। जो भगवान्के चरणोंके आश्रयमें आ गया, उसके ऊपर देवता भी छत्र करते हैं। ऐसे पुरुषकी सेवा करके देवता भी अपनेको धन्य मानते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

There is a parasol upon the Lord's feet. It has two meanings. A parasol protects from heat and the sun, and is also held over ācāryas and kings. Once one has gained refuge at the Lord's feet, neither the heat caused by the absence of sensory objects nor the rain of their abundance can cause harm. For a person there is no torment like the loss of sense objects. The afflictions arising from divine forces, other beings, and one's own body and mind, these threefold miseries are the name given to the absence of sensory objects. One who has taken refuge in the Lord's feet cannot be afflicted by the threefold miseries. A person remains drenched in sense-objects. Only upon coming under the refuge of these feet does the rain of sense-objects cease. Such a person suffers neither when sense-objects are destroyed nor becomes attached when they are obtained. Over one who has come under the refuge of the Lord's feet, even the gods hold a parasol. By serving such a person, the gods too consider themselves blessed.

ORIGINAL

भगवान्के चरणोंमें बाजूबंद का चिह्न है। बाजूबंद अलंकारोंका भूषण है। यह एक प्रकारका कवच है। यह भूषण भी अप्राकृत है। इसके बिना श्रृंगार अपूर्ण है। जिसने भगवान्के चरणोंका आश्रय लिया उसके सम्पूर्ण योग-क्षेमका भार भगवान् वहन करते हैं तथा वही व्यक्ति त्रिलोकीका परम भूषण हो जाता है।

ENGLISH TRANSLATION

On the Lord's feet is the mark of an armlet. An armlet is the ornament of ornaments. It is a kind of armour. This ornament too is supramundane. Without it, adornment is incomplete. The Lord bears the entire burden of the acquisition and preservation of one who has taken refuge in His feet, and that very person becomes the supreme ornament of the three worlds.

ORIGINAL

भगवान्‌के चरणोंमें शंख है। शंख भगवान्‌का विशेष आयुध है। यह सदा विष्णुरूप भगवान्‌के हाथमें रहता है। शंख विजयका चिह्न है। जिसके हृदयमें भगवान्‌के चरण रहते हैं, वह सबपर विजयी हो जाता है। उसके सारे विरोधी भाव शंखध्वनिसे नष्ट हो जाते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

On the Lord's feet is a conch. The conch is the Lord's special weapon. It always remains in the hand of the Lord in His form as Viṣṇu. The conch is a mark of victory. One in whose heart the Lord's feet abide becomes victorious over all. All the contrary dispositions within that person are destroyed by the sound of the conch.

ORIGINAL

भगवान्‌के चरणोंमें ऊर्ध्वरेखा है। जिस किसीके चरणमें ऊर्ध्वरेखा होती है, वह सामुद्रिक विज्ञानके अनुसार सदैव ऊँचेकी ओर बढ़ता जाता है। उस मनुष्यकी दृष्टि भी ऊँचेकी ओर हो जाती है। जिसके हृदयमें भगवान्‌के चरण आ बसे, उसकी गति और दृष्टि ऊर्ध्व हो गयी, वह सीधे ही गन्तव्य स्थानको पहुँच जाता है।

ENGLISH TRANSLATION

On the Lord's feet is an upward line. According to the science of bodily marks, one whose feet bear an upward line continually rises upward. That person's vision too turns upward. When the Lord's feet come to dwell in someone's heart, that person's course and vision become upward, and the person reaches the destination directly.

ORIGINAL

भगवान्‌के चरणोंमें राजा बलिका चिह्न है। भगवान् बलिको ठगने गये थे, परंतु अपने-आप ठगे आये और सदा बलिके द्वारपर रहना पड़ा! भगवान्‌ने बलिके मस्तकपर अपने देवदुर्लभ चरण रख दिये, इतना ही नहीं, चरणोंमें ही बलिको स्वीकार कर लिया। बलिका शरीर भगवान्‌के चरणोंमें अंकित हो गया। इससे बढ़कर सौभाग्यकी बात क्या हो सकती है? बलिको पहले ऐश्वर्य-मद था। प्रह्लादने समझाया, पर बलि क्यों समझने लगे? निदान, प्रह्लादने देखा कि बीमारी बढ़ गयी; अतः भगवान्‌का स्मरण किया। भगवान्‌ने आकर बलिके सारे राज्य और शरीर तकको नाप लिया। भगवान्‌का व्यवहार शत्रुके साथ भी वैसा ही होता है जैसा माँका बच्चेके साथ। भगवान् जिसपर अनुग्रह करते हैं, उसका धन हर लेते हैं और सांसारिक कार्यमें उस व्यक्तिको पूर्णतया असफल कर देते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

On the Lord's feet is the mark of King Bali. The Lord went to deceive Bali, but returned having Himself been deceived, and had to remain forever at Bali's door! The Lord placed His divinely rare feet upon Bali's head; not only that, He accepted Bali into His very feet. Bali's body became imprinted upon the Lord's feet. What greater good fortune could there be? Bali was first intoxicated with prosperity. Prahlāda explained to him, but why would Bali understand? Finally, Prahlāda saw that the malady had increased; therefore he remembered the Lord. The Lord came and measured all Bali's kingdom, even his body. The Lord's conduct even toward an enemy is like a mother's toward her child. When the Lord bestows grace on someone, He takes away that person's wealth and makes that person wholly unsuccessful in worldly affairs.

ORIGINAL

संसार तो सफलताका ही पुजारी है, अतः उस असफल व्यक्तिपरसे आँखें हटा लेता है। असफल व्यक्तिके लिये घरवाले भी अपने नहीं होते। उस घोर तिरस्कारकी स्थितिमें तीव्र वेदना होती है। उस वेदनामें भगवान्‌का सहज स्मरण होता है; क्योंकि वे ही एकमात्र शरण्य रह जाते हैं। इस दशामें वह सर्वथा एकमात्र भगवान्‌का आश्रय लेता है। जैसा रोग होता है, भगवान् वैसी ही दवा देते हैं। बलिका सर्वस्व हरण कर लिया और सुदामाको सब कुछ दे दिया। बलिका राजमद हर लिया परंतु हरे गये स्वयं। अपने आप भगवान् बलिके दरवाजेपर सदा खड़े रहते हैं। बलिने अपनी पीठ नपवा दी। जो सब प्रकार अपनेको भगवान्‌के चरणोंमें समर्पण कर देता है, उसके साथ भगवान् सदा के लिये बस जाते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

The world worships success alone, and so turns its eyes away from the unsuccessful person. Even family members are not one's own to an unsuccessful person. In that condition of severe contempt there is acute pain. In that pain the Lord is naturally remembered, because He alone remains the sole refuge. In that state one takes refuge wholly and exclusively in the Lord. As is the disease, so is the medicine the Lord gives. He took away everything from Bali and gave everything to Sudāmā. He took away Bali's royal pride, but was Himself won over. Of His own accord the Lord always stands at Bali's door. Bali had his back measured. With one who surrenders oneself in every way at the Lord's feet, the Lord dwells forever.

ORIGINAL

भगवान्‌के चरणोंमें दर्पणका चिह्न है। दर्पणमें प्रतिबिम्ब दीखता है। यह जगत् भगवान्‌का प्रतिबिम्ब है। यह सर्वत्र भगवान्-ही-भगवान् है। जो जितना ही सजकर दर्पणके सम्मुख खड़ा होता है उसे उतना ही अधिक भगवान् आनन्द देते हैं और वह छवि कई गुना करके लौटा देते हैं। छविको दर्पण रखता नहीं, वरन् आनन्दको बढ़ाता है और छविकी उत्कृष्टताको बढ़ा देता है। दर्पण शोभा दिखलानेका निमित्तमात्र होता है। भगवान्‌को प्रेम देकर जो उन्हें सुखी करना चाहते हैं वे प्रेम और आनन्द प्रदान करनेवालेको ही कोटि गुना सुखी कर देते हैं। साधकके आनन्द और सुखको बढ़ानेके लिये भगवान् पूजा स्वीकार करते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

On the Lord's feet is the mark of a mirror. A reflection is seen in a mirror. This world is the Lord's reflection. Everywhere, it is nothing but the Lord. The more adorned a person stands before a mirror, the more joy the Lord gives that person, and the mirror returns that beauty multiplied many times. The mirror does not keep the beauty; rather, it increases joy and enhances the excellence of the beauty. A mirror is merely the occasion for displaying loveliness. Those who wish to make the Lord happy by giving Him love are themselves made happy a crore-fold by the giver of love and joy. The Lord accepts worship in order to increase the practitioner's joy and happiness.

ORIGINAL

इसके अतिरिक्त दर्पणके सामने जो जैसा जाता है, दर्पण उसे वैसा ही रूप लौटा देता है। भगवान्‌के चरणोंमें जो जिस भावसे जायगा भगवान् उसका वह भाव उसी रूपमें प्रदान करेंगे।

ENGLISH TRANSLATION

Further, whatever way one approaches a mirror, the mirror returns that very form. In whatever disposition one approaches the Lord's feet, the Lord will bestow that disposition in that very form.

ORIGINAL

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। जिसके जैसे कार्य होते हैं उसका फल भी वैसा ही होता है, दर्पणका यह भी एक भाव है।

ENGLISH TRANSLATION

"As people take refuge in Me, so do I respond to them." As one's actions are, so also is their fruit; this too is one significance of the mirror.

ORIGINAL

भगवान्के चरणोंमें सुमेरुपर्वतका चिह्न है। सुमेरुका अर्थ है, जिसका मेरु सुन्दर हो। सुमेरुको सोने का पहाड़ भी कहते हैं। सुमेरुके बिना किसी वस्तुकी स्थिति नहीं। सूर्य भी सुमेरुपर ही उगते हैं। अतएव सुमेरु रात-दिनकी संधि है। सुमेरु मालाको व्यवस्थामें रखनेवाला केन्द्र है। सुमेरु स्वर्णमय है। सुमेरुके अन्दर अनन्त धन-राशि छिपी है। जिसे भगवान्के चरण प्राप्त हो जाते हैं उसे सारी स्वर्ण-राशि प्राप्त हो जाती है। उसकी जीवनमाला व्यवस्थित हो जाती है। वह जीवन-मृत्युकी संधिको समझ जाता है।

ENGLISH TRANSLATION

On the Lord's feet is the mark of Mount Sumeru. Sumeru means that whose meru is beautiful. Sumeru is also called the mountain of gold. Without Sumeru nothing can remain established. The sun too rises only upon Sumeru. Thus Sumeru is the junction of night and day. Sumeru is the centre that keeps a rosary in order. Sumeru is made of gold. Within Sumeru an infinite store of wealth lies hidden. One who attains the Lord's feet attains the entire golden treasure. The rosary of that person's life becomes ordered. That person understands the junction of life and death.

ORIGINAL

इस सुमेरुको ही कुछ लोग गोवर्धन मानते हैं, जिसे भगवान्ने नखपर उठाया था। भगवान्ने उसे सदाके लिये अपने चरणोंमें बसा लिया है।

ENGLISH TRANSLATION

Some regard this very Sumeru as Govardhana, which the Lord lifted upon His nail. The Lord has established it forever in His feet.

ORIGINAL

भगवान्के चरणोंमें घंटिका है। यह भगवान्की विशेष वस्तु है। करधनीमें भी छोटी-छोटी घंटी लगी रहती हैं। नूपुरके साथ यह भी बजती है। इसका तान्त्रिक अभिप्राय भी है। पूजामें यह अत्यन्त आवश्यक उपकरण है। अनहद नादमें दस प्रकारके स्वर क्रमशः होते हैं। इसमें तीसरा स्वर घंटिकाका होता है। घंटी "क्लीं क्लीं क्लीं" का उच्चारण करती है। यही श्रीकृष्णका महाबीज, प्रेम-बीज है।

ENGLISH TRANSLATION

On the Lord's feet is a small bell. It is a special possession of the Lord. Small bells are also attached to the girdle. It rings together with the anklet. It also has a Tantric meaning. In worship it is an extremely necessary implement. In the unstruck sound there are, in sequence, ten kinds of tones. The third tone among them is that of the little bell. The bell pronounces "klīṁ klīṁ klīṁ." This is Śrī Kṛṣṇa's great seed syllable, the seed of love.

ORIGINAL

यह बीज घंटिकाके रूपमें आया है। इसीलिये पूजाका प्रधान उपकरण है। यह जगत्-प्रसविताका मूर्तिमान् आकार है। इसीलिये भगवान्के चरणोंमें इसे स्थान प्राप्त है।

ENGLISH TRANSLATION

This seed has appeared in the form of the little bell. Therefore it is a principal implement of worship. It is the embodied form of the one who brings forth the world. Therefore it has found a place on the Lord's feet.

ORIGINAL

भगवान्के चरणोंमें वीणाका चिह्न है। मुरलीको छोड़कर वीणा भगवान्की विशेष वस्तु है। उसे भगवान्ने नारदको प्रदान किया था। वाद्योंमें सबसे प्राचीन वीणा है। वीणामें सारे स्वर एक साथ हैं। यह आदिवाद्य है। गायनकी विभूतिरूपमें इसे भगवान्के चरणोंमें स्थान मिला है। वीणा भगवान्का नाम गाती है। जिसके हृदयमें भगवान्के चरण हैं उसे सर्वदा और सर्वत्र वीणाका स्वर सुनायी पड़ता है।

ENGLISH TRANSLATION

On the Lord's feet is the mark of a vīṇā. Apart from the flute, the vīṇā is a special possession of the Lord. The Lord gave it to Nārada. Of instruments, the vīṇā is the most ancient. All tones are present together in the vīṇā. It is the primal instrument. It has found a place on the Lord's feet as the divine excellence of song. The vīṇā sings the Lord's name. One whose heart contains the Lord's feet hears the sound of the vīṇā always and everywhere.

ORIGINAL

केलेका स्तम्भ ऊपरकी परत उतारनेपर जैसा चिकना और कोमल होता है वैसी ही भगवान्की जाँघ है। भगवान्की कटि सिंहकी-सी मानी गयी है। कमरमें वस्त्रके ऊपर तक तागड़ी है। यह भिन्न-भिन्न रूपोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी मानी गयी है। भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें तथा मथुरा और द्वारकाकी लीलामें भी बालरूपकी माधुरी भिन्न प्रकारकी मानी गयी है। तागड़ी यों तो सोनेकी कही जाती है, पर वह सोना लौकिक सोनेकी अपेक्षा कुछ और चीज है। सोनेसे वह हल्का होता है, किंतु होता उससे कहीं अधिक बहुमूल्य है। आभूषणोंका बोझा भगवान्को नहीं मालूम होता; क्योंकि भगवान्के आयुध, आभूषण और वस्त्र भगवान्से भिन्न नहीं हैं, उन्हींके अंग-सदृश हैं। इसके अतिरिक्त उस सोनेमें एक बिजलीकी-सी चमक है, किंतु उससे आँखें चौंधियाती नहीं। उसका प्रकाश सौम्य, शीतल एवं स्निग्ध है।

ENGLISH TRANSLATION

The Lord's thigh is as smooth and tender as the trunk of a banana plant after its upper layer has been removed. The Lord's waist is regarded as being like a lion's. Above the garment at His waist is a girdle. It is considered of different kinds in different forms. In the form of Lord Śrī Kṛṣṇa, and also in the līlās of Mathurā and Dvārakā, the sweetness of the child form is considered different in kind. The girdle is said to be of gold, yet that gold is something other than worldly gold. It is lighter than gold, but far more precious. The Lord does not feel the burden of ornaments, because His weapons, ornaments, and garments are not different from Him; they are like His own limbs. Moreover, that gold has a lightning-like gleam, but it does not dazzle the eyes. Its radiance is gentle, cool, and unctuous.

ORIGINAL

करधनीके बीचमें लड़ें लहरदार हैं जो वस्त्रोंपर लटकती हैं और

ENGLISH TRANSLATION

In the middle of the girdle are wavy pendants that hang upon the garments, and

ORIGINAL

उनके बीच-बीचमें एक-एक छोटी-छोटी घंटिकाएँ हैं जो बजती हैं। घुँघरूकी तरह उनका मुख बन्द नहीं है। घंटी स्वयं बजती है और उसका संघर्ष लटकनोंके साथ होनेसे उसमें और भी विलक्षण शब्द निकलता है। इसका शब्द दूरसे भी सुनकर गोपियोंको भगवान्के आनेका पता लग जाता था।

ENGLISH TRANSLATION

among them are small bells, each of which rings. Their mouths are not closed like those of ankle bells. The bell rings of itself, and because it strikes against the pendants, an even more remarkable sound arises from it. On hearing its sound even from afar, the gopīs would know that the Lord was coming.

ORIGINAL

भगवान्‌के उदरमें तीन रेखाएँ हैं, जो एक प्रकारसे तीन देवताओं अथवा तीन गुणोंका रूप हैं।

ENGLISH TRANSLATION

On the Lord's abdomen are three lines, which in one sense are forms of the three deities or the three guṇas.

ORIGINAL

भगवान्‌की नाभि पेंचदार है। उसे भी कमलकी उपमा दी जाती है। भगवान्‌की नाभिमें मानों संसारको उत्पन्न करनेका बीज है। इस नाभिमें सारा जगत् एवं उसके ज्ञान, वेद, को अपने अन्दर समेटकर लीन किये रहता है। संकल्प होनेपर वे बाहर आ जाते हैं। इसका आध्यात्मिक रहस्य भी है।

ENGLISH TRANSLATION

The Lord's navel is spiral-shaped. It too is compared to a lotus. In the Lord's navel there seems to be the seed for generating the world. Within this navel the entire world and its knowledge, the Vedas, remain absorbed and gathered within. When the resolve arises, they come forth. It has a spiritual secret as well.

ORIGINAL

इसके ऊपर भगवान्‌के स्तन हैं। महापुरुषोंके स्तनकी चूचुककी जगह एक रेखा-सी होती है। भगवान्‌के स्तनोंमें अंग-वर्णसे विलक्षण एक श्यामता है। भगवान्‌का वक्षःस्थल बहुत विशाल है; इसका आशय है कि उनका हृदय विशाल है। उसमें सबके लिये गुंजाइश है। महान्-से-महान् पापी अथवा क्रूर मनुष्यके लिये भी उसमें स्थान है। हृदय शरीरका प्रधान अंग है। बिना हृदयपन मनुष्य मनुष्य नहीं कहलाता। भगवान्‌का हृदय हृदयहीनको सहृदय बना देता है।

ENGLISH TRANSLATION

Above this are the Lord's breasts. In great persons, there is a line in place of the nipples. On the Lord's breasts is a dark hue distinct from the colour of His body. The Lord's chest is very broad; this means that His heart is broad. There is room in it for everyone. Even for the greatest sinner or cruel person there is a place in it. The heart is the principal organ of the body. Without heartfulness a human being cannot be called human. The Lord's heart makes the heartless compassionate.

ORIGINAL

भृगुका प्रसंग इसका परिचायक है। भगवान्‌का अंग दर्पणके समान है। उसके साथ जो स्पर्शमें आता है, वह वहाँ अंकित हो जाता है। इसीलिये भगवान् भृगुलता को धारण करते हैं। यह वैष्णवताका चिह्न है। यह सारे अवतारोंमें होता है। शत्रुता रखनेवालोंके प्रति भी उनके हृदयमें स्नेह भरा रहता है। उन्हें भी मुक्त कर देना चाहते हैं। मातृ-हृदयमें भगवान्‌के हृदयकी एक छाया है। वे गुणोंको देखकर हमारे ऊपर प्रसन्न नहीं होते। भगवान्‌के मनसे भी शरण हो जानेपर भगवान् शरणागतके वशीभूत हो जाते हैं। वे उसे अपनानेके लिये दौड़ पड़ते हैं। पहलेकी बात तो देखते ही नहीं। गुण-दोषों को देखकर अथवा पूरी पूजा ग्रहण कर जो किसीको अपनाते हैं वे वास्तवमें शरणागत-वत्सल नहीं हैं।

ENGLISH TRANSLATION

The episode of Bhṛgu indicates this. The Lord's body is like a mirror. Whatever comes into contact with it is imprinted there. Therefore the Lord bears the Bhṛgu-mark. This is a mark of Vaiṣṇavahood. It is present in all incarnations. Even toward those who bear enmity, His heart remains full of affection. He wishes to liberate them too. In a mother's heart there is a reflection of the Lord's heart. He is not pleased with us merely upon seeing our virtues. When one has taken refuge even in the Lord's mind, the Lord becomes subject to the surrendered person. He runs to make that person His own. He does not even look at what came before. Those who accept someone after considering virtues and faults, or after receiving complete worship, are not truly tender toward the surrendered.

ORIGINAL

“न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।

ENGLISH TRANSLATION

“Neither by study of the Vedas and sacrifices, nor by gifts, nor by rites, nor by severe austerities.

ORIGINAL

आमिषभोजी गृध्रको भगवान् पिताकी भाँति अंजलि देते हैं। मर्यादापुरुषोत्तम होते हुए भी वे गुहसे गले लगकर मिलते हैं। शबरीके बेर खाते हैं। भगवान्के हृदयकी कोमलताकी झलक कुछ-कुछ उनके सन्तोंमें देखनेको मिलती है। सन्तोंके हृदयको नवनीतकी उपमा दी गयी है। उनके अवतारका हेतु भी उनकी दया ही है। भक्तके दुःखको देखकर भगवान् ठहर नहीं सकते। गजेन्द्रके आख्यानमें इसका बड़ा अच्छा दिग्दर्शन होता है। भगवान्के सम्मुख जो गया उसका उद्धार हो गया, सम्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। कोटि जन्म अघ नासहिं तबहीं।

ENGLISH TRANSLATION

The Lord offers cupped hands like a father to the flesh-eating vulture. Though He is the Supreme Person of righteous conduct, He embraces Guha. He eats Śabarī's berries. A glimpse of the tenderness of the Lord's heart may be seen, in some measure, in His saints. The saints' hearts have been compared to fresh butter. Compassion itself is also the purpose of His descent. The Lord cannot remain still on seeing a devotee's suffering. The account of Gajendra gives an excellent illustration of this. Whoever came before the Lord was delivered: “When a creature turns toward Me, the sins of crores of births are destroyed at once.”

ORIGINAL

भगवान्का कण्ठ शंखका-सा माना गया है। कौस्तुभ, श्रीवत्स, वैजयन्ती, ये सब विग्रहोंमें होते हैं। इनके अतिरिक्त भगवान् श्रीकृष्ण वनमाला धारण करते हैं। उसमें गूँथे तुलसी आदिके पत्ते भी खोंसे रहते हैं। अनेक रंगकी मिट्टी भी वे अपने शरीरमें पोते रहते हैं। उसकी कुछ विचित्र आभा होती है। मुक्ताहार, गुञ्जाकी माला तथा पत्तोंकी माला है। मुरलीधर द्विभुज हैं। बायें हाथमें बेंत और दाहिने हाथमें मुरली है। मुरलीमें छेद है, दोनों हाथोंमें कंकण और फूलोंके गजरे हैं तथा बाहुओंमें बाजूबंद है।

ENGLISH TRANSLATION

The Lord's neck is considered to be like a conch. Kaustubha, Śrīvatsa, and Vaijayantī are all present in the divine forms. In addition, Lord Śrī Kṛṣṇa wears a forest garland. Leaves of tulasī and the like, strung into it, are also tucked in. He also smears earths of many colours upon His body; they have a singular radiance. There is a pearl necklace, a guñjā garland, and a garland of leaves. The flute-bearer has two arms. In His left hand is a stick and in His right hand a flute. The flute has holes; on both hands are bracelets and flower wristlets, and on the arms are armlets.

ORIGINAL

होठ बिम्बाफलके समान हैं। हँसी भी दो प्रकारकी है, उच्च हास्य और मुस्कराहट। मुस्कुराहट सदा रहती है। क्रोधकी अवस्थामें भी उनकी मुस्कुराहट बनी रहती है। संहार करते समय भी वे हँसते रहते हैं। दन्तपंक्तियाँ उनकी बड़ी श्वेत और प्रकाशयुक्त हैं। ओठोंकी आभासे मिलकर धवलिमा अत्यन्त शोभाको धारण करती है।

ENGLISH TRANSLATION

His lips are like the bimba fruit. Laughter too is of two kinds: loud laughter and a smile. The smile is always present. Even in a state of anger His smile remains. Even while destroying, He continues to smile. His rows of teeth are very white and radiant. Joined with the lustre of His lips, their whiteness assumes surpassing beauty.

ORIGINAL

नाकमें बुलाक रहता है। मुख, नासा, नेत्र, मस्तक और कर्ण मुखकी शोभाके लिये होते हैं। भगवान्‌का मुख तनिक-सा लम्बा, ऊपरकी ओर, और बाकी गोल है। कपोल न पिचके हैं और न उभरे हुए हैं। कपोलोंपर चार आभाएँ और आती हैं: बिखरी हुई अलकावलीकी छाया, कुंडलोंकी आभा, सिरपरके मुकुटकी और नेत्रोंसे सदा निकलनेवाली ज्योति, ये सब उसपर पड़ती हैं। नासिका अग्रभागपर कुछ मुड़ी हुई है।

ENGLISH TRANSLATION

There is a nose ornament in His nose. The mouth, nose, eyes, forehead, and ears serve the beauty of the face. The Lord's face is slightly elongated upward, while the rest is round. His cheeks are neither hollow nor protruding. Four further lustres fall upon the cheeks: the shadow of scattered curls, the splendour of the earrings, that of the crown on the head, and the light always issuing from the eyes. The nose is slightly curved at its tip.

ORIGINAL

नेत्र रक्तकमलके-से हैं। अरुणिमा उनकी खास चीज है। वे गुस्सेकी-सी लाल नहीं हैं। उनकी लालिमा स्वाभाविक है। क्रोधमें तो रक्त नीचे उतर आता है।

ENGLISH TRANSLATION

His eyes are like red lotuses. Their rosy glow is their special quality. They are not red like those of anger. Their redness is natural. In anger, blood descends downward.

ORIGINAL

भृकुटी इतनी सुन्दर है कि उसके देख लेनेपर काम-नाश हो जाता है।

ENGLISH TRANSLATION

His brows are so beautiful that upon seeing them, desire is destroyed.

ORIGINAL

नेत्र-रोम घने, काले और साफ हैं। नेत्र बड़े कटीले हैं। उनके सौन्दर्यकी कोई उपमा नहीं है। भगवान्का सबसे सुन्दर अंग नेत्रोंके नीचेका मुखभाग है।

ENGLISH TRANSLATION

The eyelashes are dense, black, and distinct. The eyes are greatly captivating. There is no comparison for their beauty. The most beautiful part of the Lord is the portion of the face beneath the eyes.

ORIGINAL

मस्तक बड़ा विशाल है, उसपर वल्लभसम्प्रदायवालोंका-सा तिलक है। उसके ऊपर रत्नका मुकुट है और उसपर मोरका चँदवा है।

ENGLISH TRANSLATION

His forehead is very broad; upon it is a tilaka like that of the Vallabha tradition. Above it is a jewel-studded crown, and upon that is a peacock plume.

ORIGINAL

कर्म आलस्यसे अच्छा है। परंतु कर्मका आधार यदि केवल कर्म है तो वह बन्धनका कारण है। केवल यथार्थ कर्म मुक्तिका देनेवाला है। कर्मका आधार भगवान्को होना चाहिये। कर्मका आधार भगवान् तभी हो सकते हैं जब सब समय भगवान्का स्मरण होता रहे, “योगस्थः कुरु कर्माणि” तथा फलमें भी भगवान् हों, “मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।”

ENGLISH TRANSLATION

Action is better than idleness. But if action rests only upon action, it becomes a cause of bondage. Only rightly grounded action bestows liberation. The Lord should be the basis of action. The Lord can be the basis of action only when He is remembered at all times: “Established in yoga, perform actions,” and when the Lord is also in the fruit: “Renouncing all actions in Me, with consciousness fixed on the Self.”

ORIGINAL

इसके अतिरिक्त मनुष्यको वे ही कर्म करने चाहिये जो भगवान्‌के स्मरणमें सहायक हों; चाहे वे लौकिक दृष्टिसे कितने ही नीच अथवा राजसिक ही क्यों न हों। इसके विपरीत जो कर्म सात्त्विक होनेपर भी हमारी केवल कर्ममें आसक्ति बढ़ाता है, वह त्याज्य है। सत्य, अहिंसा आदि व्रत भी यदि भगवान्‌से शून्य हैं तो उनसे काम नहीं बनेगा। “सर्वधर्मान् परित्यज्य” इन्हीं धर्मोंके सम्बन्धमें लागू होता है। भगवान्‌से शून्य ऊँचे-से-ऊँचा काम भी नीचा है। इसी प्रकार भगवत्सेवाके रूपमें यदि झाड़ू लगानेका काम भी किया जाय तो वह बहुत ऊँचा है। यदि निरंतर भजन होता रहे तो फिर यदि कर्म छूट भी जाय तो कोई हानि नहीं। उसे समय समझना चाहिये कि कर्म आज सफल हो गये। उनका काम पूरा हो गया; क्योंकि कर्मोंका फल भगवान्‌का भजन ही है। मनुष्य प्रपंचमें इतना फँसा हुआ रहता है कि वह यह समझता है कि मेरे बिना अमुक कार्य होगा ही नहीं, घरवालोंका पालन-पोषण कौन करेगा! किंतु जबतक शरीर स्वस्थ है तबतक भजन कर लेना चाहिये, फिर मृत्यु आ जानेपर बात हाथकी न रहेगी। शरीर रुग्ण हो जानेपर भी हम कुछ नहीं कर सकते। फिर पछतानेसे कुछ काम नहीं चलेगा। हमें प्रतिपल अपने उद्देश्यको सँभालते रहना चाहिये और देखते रहना चाहिये कि हम ठीक रास्ते, भगवान्‌के रास्तेपर हैं या नहीं।

ENGLISH TRANSLATION

Further, one should perform only those actions that assist remembrance of the Lord, even if from a worldly point of view they are very low or passionate. Conversely, any action which, though sāttvic, increases our attachment merely to action is to be abandoned. Even vows such as truthfulness and nonviolence will not suffice if they are devoid of the Lord. “Abandoning all dharmas” applies in relation to these very dharmas. The loftiest work devoid of the Lord is low. Likewise, if even the task of sweeping is done as service to the Lord, it is very lofty. If bhajana continues unceasingly, then even if action falls away, there is no loss. One should understand at that time that one's actions have today become successful. Their work is complete, for the fruit of actions is only devotion to the Lord. A person is so entangled in worldly complication that he thinks, “Without me this particular work will not happen at all; who will support the family?” But while the body is healthy, one should engage in bhajana; after death comes, the matter will no longer be in one's hand. When the body becomes diseased, we cannot do anything either. Afterwards regret will be of no use. At every moment we should safeguard our aim and keep seeing whether or not we are on the right path, the Lord's path.

ORIGINAL

दूसरी बात यह है कि किसीको छोटा न समझें, किसीका अपमान न करें, किसीका जी न दुखायें, किसीको कुछ सतावें नहीं, किसीका अहित न करें, कोई प्राणी घृणाका पात्र नहीं है, चाहे वह पापी हो, शत्रु हो चाहे हमें दुख देनेवाला हो। अपने रामको, अपने कृष्णको सर्वत्र देखना चाहिये। उन्हें सारे जगत्में आत्मारूपसे सर्वत्र देखना चाहिये। वर्णाश्रमके अनुसार कर्म करना अच्छा है। परंतु अपनेसे छोटे अपने नौकरको भी छोटा मानना और उससे घृणा करना बड़ा पाप है।

ENGLISH TRANSLATION

The second point is that one should not regard anyone as small, insult anyone, hurt anyone's heart, torment anyone, or do anyone harm. No creature is worthy of hatred, whether sinful, an enemy, or one who causes us pain. We should see our Rāma, our Kṛṣṇa, everywhere. We should see Him everywhere in the whole world as the Self. It is good to act according to varṇa and āśrama. But to regard even one's own servant, who is lower than oneself, as inferior and to hate that person is a great sin.

ORIGINAL

श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रके वर्ण, प्रकाश और सुगन्धके सम्बन्धमें कुछ बातें हो चुकी हैं। देखें, भगवान्के अंगका ऐसा सौन्दर्य है कि उसका वर्णन हो ही नहीं सकता; क्योंकि जगत्का सारा सौन्दर्य उसके सौन्दर्यका एक कणमात्र है। उनके अंगका सौन्दर्य ऐसा आकर्षक है कि देवता, ऋषि, मुनिलोगोंके मन को भी मोहित कर लेता है। सनकादिकोंने भगवान्के चरणोंमें की हुई तुलसीकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा कि हम भी इसीके सदृश हो जायें; क्योंकि ये चरणोंकी गन्ध लेनेसे तृप्त नहीं होती।

ENGLISH TRANSLATION

Some matters regarding the colour, radiance, and fragrance of Lord Śrī Kṛṣṇacandra have already been discussed. Consider: the beauty of the Lord's limbs is such that it cannot be described at all, for all the beauty of the world is but a particle of His beauty. The beauty of His limbs is so attractive that it enchants even the minds of gods, sages, and ascetics. While describing the greatness of the tulasī offered at the Lord's feet, Sanaka and the others said, “May we too become like this,” for they are not satisfied by smelling the fragrance of His feet.

ORIGINAL

भगवान्के आभूषण भी भगवान्के अंग ही हैं, क्योंकि ये सब चेतन हैं, सत् हैं और सुगन्धपूर्ण हैं। पहले मुरलीकी बात ही कर लें। मुरली बड़ी आकर्षक है। उसका स्वर जिसके कानोंमें पड़ जाता है वही मोहित हो जाता है। कहते हैं कि जिस समय वृन्दावनमें शरद्पूर्णिमाकी रात्रिमें भगवान्की मुरली बजी उस समय सब लोकोंमें जाकर उस ध्वनिने सबको मुग्ध कर दिया। ब्रह्मा, शिव आदिक मुग्ध हो गये और सबकी तो बात ही क्या है, केवल गोपिकाएँ ही नहीं खिंचीं, किंतु सब-के-सब खिंच गये। गोपिकाओंको सशरीर उस स्थानपर पहुँचनेका अधिकार था, अन्य सबको देखनेमात्र ही। चन्द्रमा, नक्षत्रादि सबकी क्रिया छः-छः महीनोंतक बन्द हो गयी। किसीको पता भी नहीं लगा कि कितना समय बीत गया। इन सबका कारण थी मुरलीकी ध्वनि। जितने सूखे तरु-पल्लव थे उनमेंसे रस झरने लगा। जितने वहाँ प्राणी थे, अचल हो गये। जिस बछड़ेने गायके स्तनको मुँहमें ले रखा था, उसका दुग्धपान करना बन्द होकर ज्यों-का-त्यों स्तब्ध हो गया। जिस मयूरने आँख खोल रखी थी उसी पलक नहीं पड़ी। इस प्रकार उस ध्वनिका असर हुआ। प्रकृतिका कर्म भी बन्द हो गया। सम्पूर्ण गोलोक वहाँ उतर आया। मुरलीने जिन-जिनको आह्वान किया उन सबकी क्रिया बन्द होकर जैसे ही उसी अवस्थामें दौड़ पड़ी, किसीको कुछ भी संकेत नहीं कर सकी। किसीके हाथमें ग्रास था तो कोई नेत्रोंमें अंजन दे रही थी, कोई वस्त्र या आभूषण पहन रही थी,

ENGLISH TRANSLATION

The Lord's ornaments too are limbs of the Lord, because all of them are conscious, real, and full of fragrance. Let us first speak of the flute. The flute is greatly attractive. Whoever hears its tone is enchanted. It is said that when the Lord's flute sounded in Vṛndāvana on the night of the autumn full moon, that sound went to all the worlds and captivated everyone. Brahmā, Śiva, and others were enthralled; and what need is there to speak of all the rest? Not only the gopīs but everyone was drawn. The gopīs had the right to reach that place in their bodies; all others only to behold it. The activity of the moon, stars, and all else stopped for six months at a time. No one even knew how much time had passed. The cause of all this was the sound of the flute. Nectar began to drip from all dry trees and leaves. All creatures there became motionless. The calf that had held the cow's teat in its mouth stopped drinking milk and remained fixed just as it was. The peacock that had its eye open did not blink. Such was the effect of that sound. Even nature's activity stopped. The whole of Goloka descended there. The activity of all whom the flute summoned ceased, and each ran just as they were in that very condition, unable to signal anything to anyone. One had a morsel in her hand, another was applying collyrium to her eyes, another was putting on garments or ornaments,

ORIGINAL

उसे वैसे ही बीचमें छोड़कर दौड़ चली। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि जब श्रीभगवान्‌का आह्वान होता है तब कोई रुक नहीं सकता। उस मुरलीकी ध्वनिने प्रेमका प्रवाह बहा दिया, “तदनङ्गवर्धनम्।” किंतु यह काम अन्य है, यह भी भगवान्‌के मिलनेकी आकांक्षाका काम है। जैसे श्रीभगवान्‌की सब वस्तुएँ नित्य हैं उसी प्रकार मुरली आदि भगवान्‌की सब वस्तुएँ नित्य हैं। वह मुरली जिस बाँस की थी वह बाँस बननेकी आकांक्षा गोपियोंने की। दूसरे तो भगवान्‌से मिलना चाहते हैं, किंतु मुरलीको भगवान् ही छोड़ नहीं सकते। मुरलीके समान आत्मसमर्पण किसीका नहीं है। यह आध्यात्मिक विवेचन है। उसने अपने सब अंगको पोला बना दिया था। जैसा स्वर भगवान् उसमें भरते वैसे ही वह बजती। उसने अपना सम्पूर्ण अहंकार त्याग दिया था। उसे किसी प्रकारकी चाह नहीं थी। मुरलीके अंदर अपना कुछ रहा ही नहीं। जो अपने सम्पूर्ण आचरणोंको भगवान्‌के अर्पण कर देता है, सम्पूर्ण हृदय भगवान्‌के लिये खाली कर देता है, उसीके हृदयमें भगवान् अपना आसन जमा लेते हैं। यह काम-बीज है जो यह “क्लीं” शब्द है; वह मुरलीका रूपान्तर है। जो सारा-का-सारा भगवान्‌के लिये चाहता है वह भगवान्‌का प्रेम है। भगवान्‌के स्वरकी महिमा नहीं कही जा सकती। कोयलके बच्चे आदि के सारे-के-सारे स्वर उसके कणमात्र हैं। भगवान्‌का स्वर अति सुरीला है, किंतु उस मुरलीका स्वर अति ही विलक्षण है। उसमें केवल माधुर्य-रस है, अन्य स्वरोंमें सब प्रकारके रस हैं, जैसे “कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो” यह स्वर सुनकर अर्जुन काँप गया। जो इस मुरलीका स्वर सुनने के अधिकारी हैं उन्हींके कानोंमें वह स्वर सुनायी देता है। मुरली वृन्दावनमें ही बजती है। जहाँ माधुर्य-रस रहता है वहीं मुरली बजती है। पाञ्चजन्य कुरुक्षेत्रमें बजता है, पर मुरली वहाँ नहीं बजती। एक कवि कहता है, एक दिनके १०-११ बजेका समय था। भगवान् व्रजसे लौटकर घरकी तरफ आये। हमेशा तो सन्ध्या-समय आते थे, आज भोजन करनेके समय आ गये। यह मुरलीका शब्द सुनकर एक, ‘मुरहररन्धनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम्’ कि इस समय इसे तो न बजाया करो; क्योंकि इसकी आवाज सुनकर सूखी लकड़ीमेंसे भी पानी चूने लगा, जिससे आग बुझ गयी।

ENGLISH TRANSLATION

leaving it just so in the middle, and ran away. This is no wonder, for when the Supreme Lord calls, no one can remain still. The sound of that flute set a current of love flowing: “that which increases love.” But this desire is different: it too is the desire to meet the Lord. Just as all things belonging to the Supreme Lord are eternal, so all the Lord's things, including the flute, are eternal. The gopīs desired to become the bamboo of which that flute was made. Others wish to meet the Lord, but the Lord Himself cannot leave the flute. No one's self-surrender is like the flute's. This is a spiritual exposition. It had made all its limbs hollow. Whatever sound the Lord filled into it, it sounded accordingly. It had abandoned its entire ego. It had no desire of any kind. Nothing of its own remained within the flute. One who offers all conduct to the Lord and empties the entire heart for the Lord alone, in that person's heart the Lord establishes His seat. This is the seed of desire, the syllable “klīṁ”; it is a transformation of the flute. To desire wholly and entirely for the Lord is love of the Lord. The greatness of the Lord's voice cannot be told. All the tones of the young cuckoo and the rest are but particles of it. The Lord's voice is exceedingly melodious, yet the tone of that flute is most extraordinary. It contains only the rasa of sweetness; other tones contain every kind of rasa, as in “I am Time, the mighty destroyer of worlds.” On hearing that voice Arjuna trembled. Only in the ears of those qualified to hear the flute's tone is that tone heard. The flute sounds only in Vṛndāvana. It sounds wherever the rasa of sweetness abides. Pāñcajanya sounds at Kurukṣetra, but the flute does not sound there. A poet says: One day it was ten or eleven o'clock. The Lord returned from Vraja toward home. He usually came at twilight; today He came at mealtime. Hearing the sound of the flute, one woman said, “O slayer of Mura, at cooking time do not make the flute sound sweetly,” for on hearing its voice even dry firewood began to drip water, and the fire was extinguished.

ORIGINAL

ब्रजमें एक नयी गोपी आयी,

ENGLISH TRANSLATION

A new gopī came to Vraja:

ORIGINAL

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

ENGLISH TRANSLATION

With minds fixed on Me and lives absorbed in Me, enlightening one another, they ever speak of Me and are content and delight in Me.

ORIGINAL

ये सब बातें गोपिकाओंमें चरितार्थ हुई थीं।

ENGLISH TRANSLATION

All these things had been fulfilled among the gopīs.

ORIGINAL

“या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप...... कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने”

ENGLISH TRANSLATION

“Whether in milking, carrying, churning, or smearing … I know no truth whatsoever higher than Kṛṣṇa.”

ORIGINAL

उस नयी आयी हुई गोपीसे सास, ननद, अड़ोस-पड़ोसकी सब स्त्रियाँ पूछती हैं कि तूने श्यामसुन्दरको देखा या नहीं। उसने कहा, क्या उसमें अनोखी बात है। मैंने गाँवके बहुत-से बालक देखे हैं। जब श्यामसुन्दर सन्ध्या-समय लौटे उस समय वह नवीन गोपी दीपक जला रही थी। उसके कानमें मुरलीकी मीठी आवाज आयी, जिसे सुनकर वह बेसुध हो गयी। दीपककी जगह उसकी अंगुली जलने लगी, जिसकी भी उसे सुधि ही नहीं। यह स्वर श्रवण-मंगल है। उससे तृप्ति नहीं है। अर्जुनने भी गीतामें ऐसा ही कहा था। मुरलीका स्वर बड़ा मधुर होता है। जितना निर्मल स्वर मुरलीके द्वारा होता है उतना अन्यका नहीं। यह तो मुरलीके स्वरकी महिमा है। आज स्वयं उस मुरलीकी क्या महिमा है कि उसके एक क्षणके वियोगको भगवान् सह नहीं सकते। जिसको भगवान्के हाथका स्पर्श प्राप्त है उसकी भी कोई महिमा कही नहीं जा सकती। तब जो मुरली श्रीभगवान्के अधर-ओष्ठोंका रसास्वाद-पान करती थी, उसकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है। यह भगवान्के संयोगकी महिमा है। गोपियाँ भी मुरली बननेके लिये तरस्ती रहीं, किंतु बन न सकीं।

ENGLISH TRANSLATION

The mother-in-law, sister-in-law, and all the women of the neighbourhood asked that newly arrived gopī whether she had seen Śyāmasundara. She replied, “What is so unusual about that? I have seen many boys in the village.” When Śyāmasundara returned at twilight, the new gopī was lighting a lamp. The sweet sound of the flute entered her ears, and hearing it she lost consciousness. Instead of the lamp, her finger began to burn, and she was not even aware of it. This sound is auspicious to hear. It never brings satiation. Arjuna too said the same in the Gītā. The tone of the flute is very sweet. No other produces as pure a sound as the flute does. Such is the greatness of the flute's tone. Today, what then is the greatness of that flute itself, that the Lord cannot endure even a moment's separation from it? The greatness of one who has received the touch of the Lord's hand cannot be told either. Then who can describe the greatness of the flute that drank and savoured the nectar of the Supreme Lord's lower lip? This is the greatness of union with the Lord. The gopīs too longed to become a flute, but could not become one.

ORIGINAL

मुरलीमेंसे प्रेम और ज्ञान दो प्रकारके स्वर निकलते हैं। जो प्रेमके अधिकारी नहीं हैं उन्हें ज्ञानका स्वर दबा लेता है। एक समयकी बात है, ऋषिलोग वनमें यज्ञ कर रहे थे, भगवान्ने मुरली बजायी, किंतु ऋषिलोग उसे न सुन सके। उनकी पत्नियोंको वह स्वर सुनायी पड़ा; क्योंकि वे प्रेमकी अधिकारिणी थीं। जब ये स्त्रियाँ भगवान्से मिलकर आयीं तब वे ऋषिलोग उन्हें देखकर अपनेको धिक्कार देने लगे।

ENGLISH TRANSLATION

Two kinds of tones issue from the flute: love and knowledge. Those not qualified for love are overwhelmed by the tone of knowledge. Once, sages were performing a sacrifice in the forest. The Lord played the flute, but the sages could not hear it. Their wives heard that tone, because they were qualified for love. When these women returned after meeting the Lord, the sages, seeing them, began to condemn themselves.

ORIGINAL

‘धिक्कुलं धिक्क्रियाशीलम्-’

ENGLISH TRANSLATION

“Shame on our lineage; shame on our conduct.”

ORIGINAL

भगवान् जैसी ध्वनि निकालना चाहते हैं वैसी ही निकलती है, जिसे सुनाना चाहते हैं उसे सुनायी देती है। सामवेद भगवान्का ज्ञान-गान है, जिसकी रचना हुई। किंतु भगवान्के प्रेम-गानकी रचना नहीं हो सकती। मुरलीका बड़ा साहित्य है। संस्कृत और हिन्दीके कवियोंने मुरलीपर बहुत लिखा है। सूरने "मुरली! कौन तप तू कियौं,.........." "मुरली तौ गोपालहि भावति।" आदि अनेक पद रचे हैं।

ENGLISH TRANSLATION

Whatever sound the Lord wishes to bring forth, that very sound emerges; it is heard by whomever He wishes to make hear it. The Sāmaveda is the Lord's song of knowledge, and it was composed. But the Lord's song of love cannot be composed. There is a vast literature about the flute. Sanskrit and Hindi poets have written extensively upon it. Sūra composed many songs, including "O flute, what austerity did you perform?" and "The flute is dear to Gopāla."

CHAPTER 3

भगवत्-लीला-चिन्तन कैसे हो!

How Should One Contemplate the Divine Līlā?

Source scan pages 47–55

ORIGINAL

भगवत्-लीला-चिन्तन कैसे हो!

जगत्के बन्धनसे मुक्त होनेके लिये निःसङ्कल्प होना बहुत आवश्यक है। जबतक जगत्के सङ्कल्प होते रहते हैं, तबतक मनकी जागतिक क्रिया बन्द नहीं होती; परन्तु मनका निःसङ्कल्प होना सहज बात नहीं है। फिर भी इसका एक बहुत सीधा रास्ता है: सङ्कल्पोंसे लड़ना छोड़ दें, उनका विषय बदल दें। जगत्के स्थानपर भगवत्-सङ्कल्प करें। भगवान्का लीला-गुणानुवाद, श्रवण, पठन और मनन किसलिये? क्या व्यासजी, जिन्होंने वेदोंका विभाग और ब्रह्मसूत्रोंकी रचना की, जो समस्त वेदान्तवादियोंके आदर्श हैं, इतने निकम्मे बैठे थे कि वेदान्तका परिशीलन छोड़कर लीला-कथाका गान करें? क्या नारदजी इतने अल्पबुद्धि थे कि व्यासजीको शान्ति प्राप्त करनेके लिये लीला-कथाका गान करनेका अनुरोध करें?

व्यासजी अपनेको अशान्त पाते हैं। यद्यपि उनमें सङ्कल्पोंका अभाव स्वाभाविक माना जाता है, क्योंकि वे भगवदवतार और वेदान्तसूत्रोंके निर्माता हैं, तथापि वे अशान्त हैं। नारदजी कहते हैं, “आपको शान्ति इसलिये नहीं मिली कि आपने ज्ञान-विज्ञानका निरूपण किया, परन्तु भगवत्-लीला-रसका पान न किया, न कराया। इसीलिये आपका चित्त अशान्त है।” इससे यही समझना चाहिये कि व्यास, शुकदेव, वसिष्ठ और नारद आदि ऐसे साधारण लोग नहीं थे जो ऊँची वस्तु छोड़कर नीचीकी ओर चलें।

हमारा मन प्राकृतिक मन है, पर अमलात्मा मुनियोंका मन मनोनाशके द्वारा मिट चुका है। उस मिटे हुए मनके स्थानपर भगवान्के गुण और सौन्दर्यका चिन्तन करनेके लिये जो मन बनता है, वह भगवान्का दिया हुआ मन है। उत्तम साधन यह है कि आप केवल भगवत्-सम्बन्धी सङ्कल्प करें।

ENGLISH TRANSLATION

How Should One Contemplate the Divine Līlā?

Freedom from worldly bondage requires release from worldly thoughts. So long as such conceptions continue, the mind's worldly activity does not cease. Yet becoming altogether free of thought is not easy. There is, however, a straightforward path: stop fighting thoughts and change their subject. Replace worldly conceptions with thoughts of God. Why do we hear, read, reflect upon, and sing the Lord's qualities and līlās? Was Vyāsa, who divided the Vedas and composed the Brahma Sūtras, the model of every Vedāntin, so idle that he abandoned Vedānta to sing divine stories? Was Nārada so unintelligent that he advised Vyāsa to sing the līlās in order to find peace?

Vyāsa found himself restless. Though freedom from ordinary thought should have been natural to an incarnation of God and author of the Vedānta Sūtras, he remained without peace. Nārada told him, “You expounded knowledge and realization, but neither drank nor offered others the rasa of divine līlā. Therefore your mind remains disturbed.” Vyāsa, Śukadeva, Vasiṣṭha, and Nārada were not ordinary people who would abandon something higher for something lower.

Our mind is a product of nature. The minds of stainless sages have been dissolved through the destruction of mind. In place of that vanished mind, God gives them another with which to contemplate His qualities and beauty. The highest practice is therefore to entertain thoughts related only to Him.

ORIGINAL

जैसे सन्ध्याका समय है, बछड़ोंको लेकर भगवान् लौटेंगे। भगवान्के आगमनकी प्रतीक्षा करें कि वे आ रहे हैं, अभी-अभी आनेवाले हैं। इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए खड़े हो गये। अब मनमें वही भाव, वही सङ्कल्प-विकल्प आते रहें: अब वे बछड़ोंके पीछे आते होंगे; अब मुरली बजाते होंगे। उनकी लीलाओंका अन्त नहीं है। मनमें जैसी लीला जब आवे, किसी क्रमका बन्धन नहीं कि अमुक प्रकारके क्रमसे ही भगवान्की लीलाका चिन्तन हो। जब जैसी मनमें आये, उनकी लीलाओंका सङ्कल्प-विकल्प होता रहे। फिर मनमें यही चिन्तन रहेगा कि हम भी खेलें, भगवान् हमें भी अपना परिकर बना लें। यह साधनाकी बात है।

निकुञ्ज-साधनकी बात मोटे रूपमें कह देनी है। निकुञ्ज-साधनामें क्या करना पड़ता है? इसमें सङ्कल्पज देह और सेवाका निर्माण होता है। पहले सङ्कल्प करना पड़ता है कि भगवान्के मण्डलमें निकुञ्जका मण्डल बड़ा विस्तृत है और उसके बहुत-से स्तर हैं। उनमें एक मञ्जरी-मण्डल है। मञ्जरीभाव बड़ा ऊँचा भाव है। उसमें निज-सुखका अभाव है। वे केवल राधा-माधवका सुख-सम्पादन करनेमें लगी रहती हैं, अपने लिये कुछ नहीं चाहतीं। उन मञ्जरियोंमेंसे किसी एकको भावराज्यमें भावसे आचार्यत्वके पदका वरण करें, गुरु मानें। सङ्कल्पसे अपनेको किसी मञ्जरी-देहमें ले जायँ और मञ्जरीकी कल्पना करें। उसके रूप-रङ्ग इत्यादिकी बहुत-सी बातें हैं, जिन्हें यहाँ कहनेकी आवश्यकता नहीं। उस गुरु-मञ्जरीके साथ सेवामें हिस्सा मिले ऐसी प्रार्थना करें। भावराज्यमें सङ्कल्पसे यह प्रार्थना स्वीकार हो जाय तब सेवा प्रारम्भ करें।

पहले बाहरकी सेवा प्राप्त होगी। कहीं निकुञ्जके बाहर झाड़ू लगा दी जाय, कहीं कुछ कण्टक साफ कर दिये जायँ, पीकदानीको लेकर फेंक दिया जाय। ये बड़े ज्ञाननिष्ठ लोगोंकी बातें नहीं हैं। उनके लिये तो यह चर्चा पागल लोगोंकी वस्तु है। ऐसा करते-करते पहले कल्पना-राज्यमें, फिर भावराज्यमें मञ्जरीत्व प्राप्त होगा। इसके लिये बड़े शास्त्र हैं। एक रासोल्लास-तन्त्र है, उसमें बड़ी विधि है; पर केवल विधिसे काम नहीं चलता, विधिवत् साधनामें प्रवृत्त होना पड़ता है। पहले कल्पना-मञ्जरी, फिर भाव-मञ्जरी और फिर मञ्जरी-देहकी प्राप्ति होती है।

ENGLISH TRANSLATION

Imagine that evening has come and the Lord will soon return with the calves. Stand waiting for Him: He is coming and will arrive at any moment. Let the mind remain filled with that feeling and its many possibilities. Perhaps He now walks behind the calves; perhaps He is playing His flute. His līlās have no end. There is no rule that they must be contemplated in a particular sequence. Whatever līlā arises in the mind may be developed there. In time one thinks only, “May I too play with Him. May He make me one of His companions.” This is a form of spiritual practice.

The practice of the grove may be described in broad outline. It involves forming a body born of contemplation and creating a mode of service. First imagine that within the Lord's vast realm of groves there are many levels, one being the circle of mañjarīs. Mañjarī-bhāva is exceedingly elevated because it contains no wish for personal happiness. The mañjarīs labor solely for the joy of Rādhā and Mādhava and desire nothing for themselves. In the realm of bhāva, choose one of them as teacher and guru. Through contemplation enter a mañjarī body and envision her. Many particulars concern her appearance and complexion, but they need not be discussed here. Pray to receive a share in service beside the guru-mañjarī. When that prayer is accepted within the contemplated realm, begin serving.

At first one receives outward service: sweeping beyond the grove, clearing thorns, or carrying away the spittoon. Such matters are not for lofty intellectuals, who may consider this the talk of mad people. Through continued practice one first attains mañjarī identity in imagination, then in the realm of bhāva. Major scriptures explain this, including the Rāsollāsa Tantra with its detailed method. Method alone is insufficient, however; one must engage in practice according to the method. First comes the imagined mañjarī, then the mañjarī of bhāva, and finally attainment of the mañjarī body.

ORIGINAL

इस देहके रहते जब कभी ऐसी तीव्र इच्छा हो, या जब वहाँकी आज्ञा हो, तब उस गुरु-मञ्जरीका अनुकरण करते हुए जो सेवा बतायी जाय उस सेवामें साधक नियुक्त हो जाता है। ऐसा होते-होते मञ्जरीके साथ निकुञ्जमें प्रवेशका अधिकार मिल जाता है। निकुञ्जमें प्रवेशका अधिकार मामूली चीज नहीं है। लीला-पुरियोंके अन्तःपुरमें भी सबका प्रवेशाधिकार नहीं। मथुरा, द्वारका, अयोध्या इत्यादि भगवान्‌की लीला-पुरियाँ हैं। व्रज वन और गोष्ठ है, वृन्दावन है। यहाँके निकुञ्ज दो प्रकारके हैं, धातुनिर्मित और रत्ननिर्मित; इनके अतिरिक्त बहुत-से निकुञ्ज लता-पुष्पनिर्मित हैं। यहाँका अधिकार मिलना अत्यन्त कठिन है।

भगवान् श्रीकृष्णके अन्तःपुरमें जब संजय जाते हैं तो वहाँका वर्णन करते हुए कहते हैं कि भगवान्‌के उस अन्तःपुरमें प्रवेशका अधिकार प्रद्युम्न तथा अभिमन्युको भी नहीं है, यद्यपि वे पुत्र हैं। संजय आदि भगवान्‌के विशिष्ट अन्तरङ्ग सहचर हैं; इन्हें मञ्जरी-स्थानापन्न ही समझिये। इनको अन्तःपुरमें प्रवेशका अधिकार है। संजयने वहाँ अर्जुन, श्रीकृष्ण, सत्यभामा और द्रौपदीकी अन्तरङ्ग-लीलाका दृश्य देखा। निकुञ्जमें प्रवेशका अधिकार हर एकको नहीं होता। जिस मञ्जरी-देहसे यह प्राप्त हो जाता है, उसे वैष्णव साधनामें बहुत ऊँचा स्थान माना जाता है।

इसलिये सङ्कल्पका परित्याग करनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवत्-लीला-सम्बन्धी सङ्कल्प करें और उनमें भी सर्वोत्तम निर्दोष बाललीला, भगवान्‌का बालचरित है। भगवान्‌के प्राकट्यसे लेकर गोवर्धन उठानेतकका बालचरित सर्वथा निर्दोष और सबके कामकी वस्तु है। घरमें अपने बच्चोंकी क्रीड़ामें भगवान्‌को देखें। विशेष कुछ करना-कराना नहीं है। इस प्रकारके सङ्कल्प होने लगें तो कुछ दिनों बाद वैसे ही दृश्य आने लगेंगे। यह करके देखनेकी चीज है और वही कर सकता है जो करना चाहे। यदि मनमें तीव्र आकाङ्क्षा पैदा हो जाय तो घरमें देखी हुई सीधी वस्तुका भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। फिर अकल्पित लीला-दर्शन होने लगेंगे। चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय लीला मनमें आने लगेगी। ध्यान करना नहीं पड़ेगा; वे दृश्य बलपूर्वक सामने आने लगेंगे। पर आने लगेंगे उनके सामने जो उनको पकड़ना चाहे। उपेक्षा करेगा तो मनमें नहीं आयेंगे। यदि मनमें हो कि आज बड़ा हर्ज हो गया, बड़ा जरूरी काम था, तो भगवान् किसीका जरूरी काम छीनना नहीं चाहते। जब भगवान्‌की जरूरत पैदा हो तब उन्हें पुकार लें। वे हर समय तैयार हैं।

ENGLISH TRANSLATION

While still living in this body, whenever intense longing arises or an order comes from that realm, the aspirant follows the guru-mañjarī and is assigned the service she indicates. Through continued service he gains the right to enter the grove beside her. Entry is no ordinary attainment. Not everyone may enter even the inner chambers of the Lord's līlā cities such as Mathurā, Dvārakā, and Ayodhyā. Vraja is forest, pasture, and Vṛndāvana. Its groves are made of metals, jewels, vines, and flowers, and gaining entrance is exceedingly difficult.

When Sañjaya entered Kṛṣṇa's private chambers, he observed that even Pradyumna and Abhimanyu, though sons of the family, had no right to enter. Sañjaya and similar intimate companions occupy a position analogous to the mañjarīs and therefore possess access. He saw the intimate sport of Arjuna, Kṛṣṇa, Satyabhāmā, and Draupadī. Not everyone may enter the grove; in Vaiṣṇava practice, attainment of the mañjarī body that grants such entry is considered very exalted.

There is therefore no need to abandon thought. Direct it toward divine līlā, especially the wholly innocent childhood pastimes from the Lord's appearance through the lifting of Govardhana. They are suitable for everyone. See God in the play of children at home. Nothing elaborate is required. If such contemplation begins, corresponding visions will arise after some time. This must be tested in practice and can be done by anyone who truly wishes. When intense longing awakens, the simple scenes observed at home can be connected with God, and unimagined visions of līlā begin to appear. While walking, sitting, sleeping, or waking, the līlā enters the mind continually. One no longer has to meditate deliberately; the scenes insist upon appearing. They begin to appear before those who wish to grasp and hold them, but not before one who neglects them. If someone thinks that divine contemplation has interfered with urgent work, the Lord does not wish to take anyone's necessary work away. Call Him when the need for Him arises. He is always ready.

ORIGINAL Sanskrit

गोपाङ्गनाओंकी क्या कम परीक्षा हुई? वह मामूली परीक्षा नहीं थी, लेकिन वे उत्तीर्ण हो गयीं। ऐसे प्रलोभन और भय सामने आते हैं। रासमण्डलकी परीक्षा मामूली नहीं थी। स्वयं भगवान्‌ने कहा, “नरकमें जाओगी। पतियोंको छोड़कर आयी हो। यह किसी पतिव्रता स्त्रीका काम नहीं है।” कोई भी उसी समय डर और काँप जाता। सबसे बड़ी परीक्षा स्वसुखकी होती है। यह बड़ी महीन चीज है। हम मान लेते हैं कि स्वसुखकी वाञ्छा नहीं है, लेकिन वही वाञ्छा भीतर काम करानेमें लगी रहती है।

ये पीछेकी बातें हैं। हम बहुत पहलेकी बात कहते हैं कि मनमें भगवान्‌का सङ्कल्प करें। आत्माका स्वरूप क्या और कैसा है, यह जाननेकी आवश्यकता नहीं। जिसको जितना जाननेकी आवश्यकता होगी, वे जना देंगे और नहीं जनाना चाहें तो कहेंगे, “भई! तुम ज्ञानवान हो। जहाँ जाते हो वहाँ तुम्हें ले चलेंगे। तुम इनको जानकर क्या करोगे?” भगवान् कहते हैं, “सर्वधर्मान् परित्यज्य,” मेरी शरणमें आ जाओ, मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा। पर सङ्कल्पोंका सब प्रकारसे विनाश मामूली बात नहीं। यदि जगत्‌का सङ्कल्प आ गया तो जगत्‌का चिन्तन त्यागके लिये भी न करें। मनोवैज्ञानिकोंका सिद्धान्त है कि त्यागके लिये भी त्यागने योग्य वस्तुका अधिक चिन्तन न करें, क्योंकि उससे त्याग नहीं होगा; उलटे उस वस्तुका चिन्तन करते रहनेसे वह मनके सङ्कल्पमें आ जायगी। इसलिये सङ्कल्पोंका विषय बदलना होगा। प्राकृत सङ्कल्पोंके स्थानपर भगवत्-सङ्कल्प लाने होंगे।

भगवान्‌का चिन्तन किसी प्रकारसे चित्तमें आवे। गीताके विभूतियोगमें भगवान्‌ने कहा:

द्यूतं छलयतामस्मि।

उन्होंने अपनेको जुआ बताया। किसी मनु, याज्ञवल्क्य या पराशर-स्मृतिमें जुएके समर्थनका उल्लेख बताइये! पर भगवान् कहते हैं, “मैं जुआ हूँ।” किनमें? छल करनेवालोंमें। जुआरियोंसे कोई कहे, “गीताभवनमें अमुक स्थानसे महात्मा आये हैं, जाकर उपदेश सुनो,” तो उन्हें फुरसत नहीं। पर कोई कहे, “भइया, जुआ खेलते हो? पासा फेंकते हो?” “हाँ।” “तो प्रत्येक पासेमें कहो, यह जुआ भगवान् हैं।” भगवदाकार-वृत्ति हुई कि जुआ छूटा। करना यही है। वृत्ति भगवदाकार होनी चाहिये। इस प्रकार जुआरीकी वृत्ति भगवदाकार हो गयी। भगवान् वहाँ थे ही, कोई झूठी बात नहीं। अतः सङ्कल्पोंमें भगवत्-सम्बन्धी विषय लानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

ENGLISH TRANSLATION

Were the women of Vraja not severely tested? Their test was no ordinary one, yet they passed. Such temptations and fears arise before the lover. The test in the circle of rāsa was formidable. God Himself warned, “You will go to hell. You have abandoned your husbands. This is not the conduct of faithful wives.” Anyone might have trembled at once. The greatest test is the desire for one's own happiness, a very subtle force. We may assume that it has vanished while it secretly motivates our actions.

These are later matters. At the beginning, simply contemplate God. There is no need to know the nature of the self. He will reveal as much as one needs. If He does not wish to reveal it, He may say, “You are already learned. We shall take you wherever you need to go. What will you do with more knowledge?” The Lord says, “Abandon every dharma and take refuge in Me; I shall free you.” Complete destruction of thoughts, however, is not easy. When a worldly thought arises, do not dwell upon the world even in order to renounce it. Psychology teaches that excessive thought about something to be abandoned prevents renunciation and fixes the object more firmly within the mind. Change the subject of thought and replace natural conceptions with divine ones.

Bring remembrance of God into the mind by any means. In the Vibhūti Yoga of the Gītā He says, “Among deceivers, I am gambling.” No lawbook of Manu, Yājñavalkya, or Parāśara endorses gambling, yet God calls Himself the gambling among cheats. A gambler has no leisure to hear a saint's teaching. Ask him instead whether he throws dice. When he answers yes, tell him to recognize God in every throw. The instant his mental tendency takes the form of God, gambling falls away. This is the aim: the mind must assume God's form. God is truly present there, so no falsehood is involved. We should therefore strive to bring God-related subjects into every conception.

ORIGINAL

सीधी बात यह है कि इन्द्रियोंमें आनेवाले भगवान्के सौन्दर्य-माधुर्यका सङ्कल्प करें। अपने मनमें जैसा आवे, उसी प्रकार भगवान्के सौन्दर्यकी कल्पना करें। उस कल्पित रूपको बार-बार मनमें देखें। उस रूपमें मन लगे तो उनकी लीलाको देखें: अरे, वे खेल ही रहे हैं, गुल्ली-डण्डा और आँखमिचौनी खेल रहे हैं, सखाओंके साथ खेल रहे हैं। भगवान् बड़ी ठोस वस्तु हैं और सब चीज तरल, उड़नेवाली और केवल हवासे भरी है। भगवान्को मनमें भरने लगें तो बेकारकी हवा अपने-आप निकलने लगेगी। भगवान् भर गये, हवा निकल गयी। वे मनमें जितना भर जायँगे, उतना निकलेंगे नहीं। भगवान्को पकड़ना आसान है, छोड़ना आसान नहीं। वे पकड़ना जानते हैं, छोड़ना नहीं। मनमें जितना स्थान उन्होंने ले लिया, जो उनके अधिकार आ गया, वे सदाके लिये उसके मालिक बन गये। इसलिये भगवत्-सम्बन्धी सङ्कल्प जैसे-जैसे मनमें आवें, करते रहें। इससे मन भगवत्-सङ्कल्पमय हो जायगा और उसकी प्रवृत्ति दृढ़ हो जायगी।

मनकी एक बड़ी सुन्दर स्थिति यह है कि वह तदाकार होना जानता है और जिसमें लगाया जाता है उसीके आकारका हो जाता है, ब्रह्माकार भी और विषयाकार भी। मनको भोगसे हटाकर भगवान्में लगाना है। हमारा बुरा अभ्यास यह है कि भोगोंमें पद-पदपर दुःखका अनुभव होनेपर भी हम उनकी ओर खिंचते जाते हैं। भगवत्-सम्बन्धी सङ्कल्पका रस चखा दिया जाय तो मन वह रस अपने-आप लेने लगेगा। चित्त शान्ति, आनन्द और द्वन्द्वरहित सुख चाहता है। ऐसा आत्यन्तिक, नित्य और पूर्ण सुख भगवान्के अतिरिक्त कहीं नहीं। सुखस्वरूप और आनन्दरूप भगवान्के सम्पर्कका सुख जब चित्तमें ठहरने लगे तो उसमें अपने-आप अत्यन्त विलक्षण नवीन सुखकी अनुभूति होगी।

जिसने बहुत कमजोर पतली बत्तीकी रोशनीमें रहनेका अभ्यास डाला हो, वह बिजली देखकर पहले चौंधिया जायगा। उसने ऐसी रोशनीका अनुभव नहीं किया। जब बिजलीका प्रकाश जान लेगा तो सोचेगा, इसमें न बत्ती, न तेल, न दीपक और न हवाका भय चाहिये। इतनी अच्छी रोशनीके रहते बत्तीको क्यों याद करेगा? इसी प्रकार मन भगवान्का सङ्कल्प करनेवाला बने तो संसार उसमेंसे निकलने लगेगा। भगवद्भावका राज्य प्रेमका राज्य है। उसमें भगवान्को प्रियतम मानकर उनकी लीलाओंका सङ्कल्प करना पड़ता है। मन अभी मानता नहीं क्योंकि भरा नहीं है। भगवान्को बार-बार लानेसे वह जल्दी उनमें लगने लगेगा।

ENGLISH TRANSLATION

The simple method is to contemplate the beauty and sweetness of God as accessible to the senses. Imagine His beauty in whatever form arises and repeatedly behold that form within the mind. Once the mind rests there, see His līlā. He is playing tipcat, hide-and-seek, and games with His friends. God alone is solid; everything else is fluid, fleeting, and filled only with air. As God fills the mind, useless air escapes by itself. The more fully He occupies it, the less He departs. It is easy to take hold of God but difficult to let Him go. He knows how to seize a person, not how to abandon one. Whatever space He occupies in the mind becomes His forever, and whoever enters His dominion remains His. Continue every God-related contemplation as it arises. The mind will become filled with divine conceptions and its tendency will grow firm.

The mind possesses the beautiful capacity to assume the form of whatever it attends to. It may become shaped like Brahman or like a sensory object. We must withdraw it from enjoyment and place it in God. Our bad habit is to be drawn repeatedly toward pleasures even while suffering at every step. Once the mind tastes the rasa of divine thought, it begins to seek that flavor of itself. The heart longs for peace, joy, and happiness free from opposites. Ultimate, eternal, complete happiness exists nowhere but in God. When the joy of contact with the Lord, who is happiness and bliss itself, settles in the heart, a new and extraordinary delight arises spontaneously.

A person accustomed to the dim light of a thin wick will at first be dazzled by electricity. Once he knows its brilliance, he realizes that it needs no wick, oil, lamp, or protection from wind. Why would he remember the little flame when such light is available? Likewise, when the mind begins conceiving God, the world begins leaving it. The realm of divine bhāva is the realm of love, where one regards God as the beloved and contemplates His līlās. The unfilled mind initially resists, but repeatedly bringing God into it makes it quickly attach to Him.

ORIGINAL Awadhi

भगवान्‌की चरित्र-कथा ऐसी है कि इसमें सबका मन स्वाभाविक लगता है। यह मधुर है और इसमें त्यागवाली कठिनता नहीं। त्याग चाहे कैसा हो, मनुष्यको त्याग करना पड़ता है। यह भगवद्भाव मिलेगा तो जगत्‌के वर्तमान भावको खा जायगा। चाहे जगत् इसी रूपमें रहे, पर दृष्टिमें भागवतस्वरूप बन जायगा। प्रत्येक क्षण और दशामें भगवत्-लीलाके दर्शन होंगे। सब जगह भगवान् खेल रहे हैं, सब जगह भगवान्‌का लीला-विलास हो रहा है। सभी परिस्थितियोंमें उनका लीला-विहार हो रहा है। मृत्यु, जीवन, सुख और दुःखमें भी प्रेमी अपने प्रेमास्पदका सुखद स्पर्श प्राप्त करता रहेगा। हाथसे होनेवाला स्पर्श स्थूल है। सूक्ष्म या वास्तविक स्पर्श आत्मस्पर्श, ब्रह्मस्पर्श और भगवत्स्पर्श है। वह इतना सुखद है कि हम उसकी कल्पना नहीं कर सकते। उसे व्यक्त करनेके लिये शब्द नहीं। शब्द तो मनकी भाषाके भी नहीं होते हैं। अध्यात्मका कोई शब्द है ही नहीं; केवल सङ्केत और शाखाचन्द्रन्यायसे बताया जाता है। वह गूँगेके गुड़के स्वाद-जैसा अवर्णनीय है:

गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

(रामचरितमानस १।२२९।२)

अपने सङ्कल्पोंमें जैसा आवे वैसा करना आरम्भ करें। अपनी कल्पनाके अनुसार करनेसे यह भाव उत्पन्न होगा कि भगवान् सत्य, सर्वमय, सर्वत्र, सबके लिये और सब समय हैं। भगवान् चाहें तो भगवान्-सम्बन्धी सङ्कल्पको सत्य कर सकते हैं, क्योंकि वे सङ्कल्पित जगत् और ध्यानमें भी विद्यमान हैं। वहाँ उनका अभाव नहीं। जब भगवान्‌का सङ्कल्प करने लगेंगे तो उसके अनुसार दर्शन होने लगेगा। यह करनेकी वस्तु है। ठीक ऐसा होनेपर एक विशेष आनन्दका अनुभव होगा और मन वहाँसे हटेगा नहीं। जागतिक त्याग सहज हो जायगा। त्यागमें कठिनता इसलिये पड़ती है कि जिसके लिये हम त्याग करते हैं उसका महत्त्व त्यागी जानेवाली वस्तुसे हमारी दृष्टिमें बहुत अधिक नहीं। आवश्यकता हो तो त्याग सरल है। घरमें दाल नहीं है तो रुपया लेकर जाते हैं, दाल थैलीमें डालते हैं और रुपया दे देते हैं। ऐसी आवश्यकतामें रुपयेका त्याग कठिन नहीं।

ENGLISH TRANSLATION

The Lord's life story naturally attracts every mind. It is sweet and lacks the painful effort of forced renunciation. Every other renunciation requires a person to give something up. When divine bhāva appears, it consumes the world's former appearance. The world may remain outwardly unchanged, yet one's vision sees it as the Lord's own form. Divine līlā becomes visible at every moment and in every condition. God is playing everywhere, and everywhere His sportive delight unfolds. In every circumstance His līlā-play continues. In death and life, happiness and sorrow, the lover continually receives the beloved's delightful touch. Physical contact by the hand is gross. Subtle or actual contact means the touch of the self, Brahman, and God. Its delight is beyond imagination and words. Words do not even belong to the mind's own language. Spiritual reality has no adequate vocabulary and can only be indicated indirectly, like pointing to the moon through a branch. Its taste is as indescribable as sugar to one unable to speak:

“Speech has no eyes, and the eyes possess no speech.”

Begin developing contemplation in whatever way it arises. Imagination gradually produces the conviction that God is real, present in all, everywhere, for everyone, and at every time. If He wishes, He can make a divine conception true, because He is already present within the imagined world and meditation. As one contemplates Him, visions corresponding to that thought begin to appear. This must be practiced. When it becomes real, extraordinary joy arises and the mind no longer withdraws. Worldly renunciation then becomes easy. Renunciation is difficult only when what we seek does not appear much more valuable than what we abandon. When the desired object is necessary, giving is effortless. If the house needs lentils, we carry money to the shop, place the lentils in our bag, and hand over the money without difficulty.

ORIGINAL Sanskrit

वैसे ही भगवान्की आवश्यकता और भगवान्में प्रियता, ये दो हो जायँ तो और कुछ नहीं चाहिये। प्रियता सर्वोपरि है। प्रियता होनेपर प्रेमीके लिये भगवान् मनका निर्माण करके उसके साथ मिलना चाहते हैं:

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।

वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

(श्रीमद्भागवत १०।२९।१)

भगवान् स्वयं रसास्वादन करना चाहते हैं। यदि रस पवित्र और अव्यभिचारी हो, उसमें कुरसता, विरसता या अरसता न हो, तो उसका आस्वादन करनेके लिये भगवान् चले आते हैं। मनमें विषय न हो, जीवनका समर्पण उनके सुखके लिये हो और उसमें त्याग भरा हो तो रस सरस बन जाता है, प्रेमरससे भर जाता है। सरस रस जहाँ बन गया हो, उसे लेने भगवान् आते हैं। सरस रस प्रियता और प्रियत्वमें होता है। जहाँ भगवान् प्रिय लगे, उनका नाम, धाम, सब कुछ और हर बात प्रिय हो गयी; सब मधुर हो गया। वल्लभाचार्यजीका मधुराष्टक सारा मधुर-ही-मधुर है। भगवान्के माधुर्यका प्राकट्य होनेपर सारे जगत्में मधुरता भर जाती है; उनके रसका प्रादुर्भाव होनेपर जगत् सरस और उनके प्रकाशका प्राकट्य होनेपर प्रकाशमय बन जाता है। जहाँ भगवान्का सम्पर्क नहीं, वहाँ न रस, न प्रकाश, न औज्ज्वल्य; वहाँ तम, अन्धकार, कुरस, विरस और अरस है।

भगवान्की चाह पैदा हो जाय, प्रियता न भी हो तब भी काम हो जाता है। जीवमात्र सुख चाहता है, पर अखण्ड, पूर्ण, नित्य सुख संसारमें नहीं, इसलिये कहीं तृप्ति नहीं मिलती। इन्द्र या ब्रह्मा हो जायँ, तब भी आगे कुछ और प्राप्त करना चाहते हैं। इसका अर्थ है कि हम नित्य, अखण्ड और पूर्णको चाहते हैं, चाहे उसे आत्मा, ब्रह्म या भगवान् कहें। आवश्यकता अमृतकी हो और मलका कीड़ा विष्ठापर बैठकर उसे अमृत कहे, उसीमें आवश्यकता पूरी करता रहे, तो अमृत कहाँ मिलेगा? सीधी बात यह है कि हम सब मलभक्षी हैं। आवश्यकता अमृतकी है, पर मलमें अमृत मानते हैं। रामकृष्ण परमहंसजीके चरित्रमें दो प्रकारकी मक्खियोंका वर्णन आता है। मधुमक्खी केवल शहद खाती है; दूसरी विष्ठाकी मक्खी शहद भी खाती है, पर मल दिख जाय तो शहद छोड़कर मलपर चली जाती है। इसलिये विषयासक्त लोगोंका स्वभाव है मलासक्ति। विषयासक्तिका अर्थ है मलासक्ति। भोगासक्तिका अर्थ है मलासक्ति।

हम विषयरूपी विष माँग-माँगकर पीना चाहते हैं। भगवान् न दें तो कहते हैं, “महाराज, आपने हमें अभावमें रखा। हमारा भाग्य फूट गया, आपने कृपा नहीं की।” भगवान् पूछते हैं, “क्या मैं तुम्हें याद आता हूँ?” “आप याद आयें या न आयें, पहले हमारी तकलीफ मिटाइये, फिर आपकी बात करेंगे।” रसकी आवश्यकता सबको है, क्योंकि रस भगवान्का स्वरूप है। सब भगवान्को चाहते हैं, पर उनकी चाह भोग और विषयसे पूरी करना चाहते हैं। चाह पूरी नहीं होती, फल दुःख-ही-दुःख है। भगवान्की कृपासे वह क्षण तभी मिलेगा जब मन यथार्थ देखेगा और केवल उस रसको प्राप्त करना चाहेगा। हमने गन्दी वस्तुको मिठाई और विषको सुधा समझ लिया। तुलसीदासजी कहते हैं:

Language: Awadhi

नर तनु पाइ विषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं॥

> (रामचरितमानस ७।४४।२)
>
> जो नरतन पाकर विषयोंमें मन लगाते हैं, वे अमृत देकर बदलेमें विष लेते हैं। ऐसे लोगोंको कौन बुद्धिमान् कहेगा जो पारसमणि खोकर घुँघची लेते हैं:
>
> ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। घुँघची ग्रहइ परस मनि खोई॥
>
> (रामचरितमानस ७।४४।३)
>
> इस जीवनमें भोगीको क्या मिलता है? नरक-यन्त्रणा और दुर्भाग्य:
>
> ते नर नरकरूप जीवत जग भव-भञ्जन-पद-बिमुख अभागी।
>
> (विनय-पत्रिका १४०)

ENGLISH TRANSLATION

In the same way, once God becomes both necessary and dear, nothing else is required. Dearness is supreme. When it arises, God forms a mind suited to the lover and wishes to unite with him:

“Seeing those autumn nights filled with blossoming jasmine, the Lord too made up His mind to sport, taking refuge in Yogamāyā.”

God Himself wishes to relish rasa. If it is pure, unwavering, and free from bad, stale, or absent flavor, He comes to taste it. When the mind contains no sensory object, life's surrender exists for His happiness, and renunciation fills it, rasa becomes succulent and filled with love. God comes wherever such rasa appears. It rests in loving dearness. When God becomes dear, His name, abode, everything belonging to Him, and every word about Him becomes dear; all becomes sweet. Vallabhācārya's Madhurāṣṭaka declares everything sweet. When divine sweetness manifests, it fills the world with sweetness; when His rasa appears, the world becomes flavorful; when His light manifests, the world becomes luminous. Without contact with God there is neither rasa, light, nor splendor, only darkness and absence of flavor.

Even longing for God without established love is sufficient to begin. Every being seeks happiness, but unbroken, complete, eternal happiness does not exist in the world, so satisfaction is never found. Even one who became Indra or Brahmā would desire something beyond. We seek the eternal, whole, and complete, whether named self, Brahman, or God. If a creature needing nectar sits upon filth and calls it nectar, how will it find the real thing? We need nectar but imagine it in refuse. The life of Rāmakṛṣṇa Paramahaṁsa describes two kinds of flies. A honeybee consumes only honey. The other may taste honey, but abandons it for excrement whenever that appears. Thus those attached to sense objects are naturally attached to filth. Attachment to sense objects means attachment to filth. Attachment to enjoyment means attachment to filth.

We beg to drink the poison of sensory objects. When God does not give it, we complain that He has deprived us and withheld grace. He asks whether we remember Him, and we reply that remembrance can wait until He removes our discomfort. Everyone needs rasa because it is God's own nature. Everyone seeks God, yet tries to fulfill that longing through enjoyment and objects. The longing remains unsatisfied and yields only sorrow. By His grace, truth will become visible when the mind desires that rasa alone. We have mistaken filth for sweets and poison for nectar. Tulasīdāsa says:

“Having obtained a human body, fools give their minds to sensory objects, exchanging nectar for poison.”

Who could call wise those who lose the philosopher's stone and pick up a worthless guñjā seed?

“No one ever calls him good who takes a guñjā seed after losing the philosopher's stone.”

What does the pleasure-seeker receive in this life? The torment of hell and misfortune:

“Those unfortunate people who turn away from the feet that destroy worldly existence live in this world as hell embodied in human form.”

ORIGINAL

इसीलिये सावधानीकी आवश्यकता है। सावधान होकर भगवान्‌में रस मानकर चलें। मन किसी दूसरी वस्तुमें ललचाये तो तत्काल गन्दगी याद कर लें। सच्ची बात यह है कि उधर मन लगनेपर स्थिति अपने-आप बनेगी। जिसका मन एक बार भगवान्‌में खिंचा, वह लौटेगा नहीं। यह उनका विलक्षण जादू है। भगवान्‌की ओर मन खिंच जाय तो उसे लौटाना अपने वशकी बात नहीं। ऐसी मजबूत पकड़ है कि फिर लौटता नहीं।

बस दो काम करें। एक तो मनमें भगवत्-सम्बन्धी बहुत सुन्दर सङ्कल्प करनेका प्रयास करें; दूसरे अपनी भाषामें, प्रेमभावकी भाषामें, अपना दुःख भगवान्‌के सामने रोयें। कातर प्रार्थना करें, “महाराज, आप कृपा करके ऐसा करें कि मेरे मनमें आपके सिवाय सारे सङ्कल्पोंका संन्यास हो जाय। मैं किसी अन्य प्रकारका सुख नहीं चाहता। केवल आपका स्मरण मनमें बना रहे।” यही सत्यसङ्कल्प भगवत्-चिन्तनका मूल है। ऐसा करते रहनेसे सहज ही भगवान् और उनकी लीलाका चिन्तन होता रहेगा। फिर हम साधनको ही नहीं, साध्यको भी प्राप्त कर लेंगे।

ENGLISH TRANSLATION

Care is therefore necessary. Proceed attentively, recognizing true rasa in God. When the mind is tempted by anything else, immediately remember its filth. In truth, once the mind turns toward God, the state develops by itself. A mind drawn to Him once does not return. This is His extraordinary enchantment. Once He draws the mind, recalling it lies beyond our power. His grip is so strong that it never turns back.

Do only two things. First, strive to form beautiful thoughts related to God. Second, in your own language, the language of loving feeling, weep out your sorrow before Him. Pray helplessly, “Lord, by Your grace let my mind renounce every thought but You. I desire no other happiness. May remembrance of You alone remain within me.” This true resolve is the root of contemplation of God. Continue in this way and thought of Him and His līlā will arise naturally. Then we shall attain not only the practice but its goal.

CHAPTER 4

गोपी-प्रेमकी भाव-तरंगें

Waves of Gopī Love

Source scan pages 56–63

ORIGINAL

Awadhi

गोपी-प्रेमकी भाव-तरंगें

प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है। वाणी जिसका निर्वचन नहीं कर सकती, बुद्धि जिसका आकलन नहीं कर सकती, उसका वर्णन असम्भव है। नारदभक्तिसूत्रमें कहा गया है, "प्रेमस्वरूपमनिर्वचनीयम्।" प्रेम केवल मनकी चीज है और मनके ही द्वारा इसकी अनुभूति होती है। पर अनुभव करनेवाला अपने-आपको विस्मृत कर देता है। इस प्रेमके स्वरूपको भगवान् रामने सीताको सन्देशमें कहलवाया:

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

(रामचरितमानस ५।१५।६-७)

"मेरे और तेरे प्रेमका तत्त्व, रहस्य, एक मेरा मन ही जानता है, पर वह मन भी कुछ बतला नहीं सकता, क्योंकि वह निरन्तर तुम्हारे पास ही रहता है। बस, मेरे प्रेमका सार इतनेमें ही समझ ले।"

गोस्वामीजी महाराजने कितनी सुन्दर व्याख्या कर दी। थोड़े ही शब्दोंमें प्रेम-तत्त्वका स्वरूप बतला दिया। प्रेमको प्रेमीका मन जानता है, पर वह मन निरन्तर प्रेमास्पदके समीप, प्रेमास्पदका होकर रहता है। यहाँ भगवान् राम प्रेमी बने हैं और भगवती सीता प्रेमास्पद हैं। यह उलटा क्रम प्रेमराज्यमें हो जाता है। यह मनकी वस्तु है, अन्तरकी वस्तु है; वाणीकी वस्तु नहीं, बाहर प्रदर्शित करनेकी वस्तु नहीं। नारदजीने कहा कि अन्तरकी वस्तु होते हुए भी कहीं-कहीं किसी पात्रमें इसका प्रकाश हो जाता है: "प्रकाशते क्वापि पात्रे।"

ENGLISH TRANSLATION

Waves of Gopī Love

The nature of love is indescribable. Speech cannot define it and intellect cannot measure it. The Nārada Bhakti Sūtra says, “The essential nature of love cannot be expressed.” Love belongs solely to the mind and is experienced through the mind, yet the one who experiences it forgets himself. In His message to Sītā, Lord Rāma described this love:

“Beloved, My mind alone knows the truth of the love between you and Me. Yet that mind always remains with you. Understand that the whole essence of our love lies in this.”

Gosvāmījī has explained the nature of love beautifully in very few words. The lover's mind knows love, yet that mind remains continually beside the beloved and has become the beloved's own. Here Lord Rāma is the lover and Goddess Sītā the beloved. In the realm of love the usual order becomes reversed. Love is inward and belongs to the mind; it is not a thing of speech or outward display. Nārada says that although it is inward, it occasionally manifests in a worthy vessel.

ORIGINAL Hindi verse

प्रेम-समुद्रमें जब कभी बाढ़ आ जाती है तब प्रीति-रस छलक उठता है और किसी अवस्था-विशेषमें उसका पता लगता है; अन्यथा यह उछलनेवाली वस्तु नहीं। बड़ी गहरी है, इतनी गहरी कि वहाँतक पहुँचना भी बड़ा कठिन:

डूबे प्रथम अतल तलमें तब मिलता कहीं प्रेम-रत्न निर्मल।

कहीं मृत्यु फल फलता उसमें कहीं कलङ्क लाभ केवल॥

भगवत्प्रेम तथा गोपी-प्रेममें तो सर्वस्व-त्यागकी आवश्यकता है। प्रेमसागरमें निमग्न चैतन्य महाप्रभुने श्यामसुन्दरसे कहा, “प्रभो! तुम चाहे मुझे गले लगाओ, चाहे ठोकर मारकर गिरा दो। तुम्हारे मनमें जो आवे वही करो, पर मेरे प्राणनाथ! मेरे लिये तेरे सिवाय दूसरा और कोई नहीं।”

गोपीभावके अनुयायी प्रेमीजन भगवत्सेवाको छोड़कर उनके द्वारा प्रदत्त मुक्तिको भी स्वीकार नहीं करते। भगवान्ने स्वयं कहा है:

Language: Sanskrit

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।

भगवान्के देनेपर भी वे उनकी सेवाको छोड़कर मुक्ति स्वीकार नहीं करते। वह सेवा है प्रेमास्पदकी रुचि, प्रेमास्पदको जो अच्छा लगे वही सेवा। प्रेमी भक्त सदा यही करते हैं: हमारे प्रेमास्पद प्रभु, हमारे प्राणनाथ और प्राणाराम सुखी होते रहें। इससे बढ़कर कोई सुख नहीं, कोई लाभ नहीं, कोई प्राप्त करने योग्य वस्तु नहीं, कोई इच्छा, ममता या वासना नहीं। यह प्रेमका विशुद्ध रूप और प्रेमका विशुद्ध मार्ग है। यही विशुद्ध अनुराग अथवा रागका विशुद्ध रूप है, जिसे भाव कहते हैं।

राग जब बढ़कर अनुरागत्वको प्राप्त होता है, तब उसमें भावका उदय होता है। इस रागभावके उत्पन्न होनेपर अपने अभिमानमें, अपने वर्णमें, अपनी जातिमें, यश-कीर्तिमें और लोक-परलोकमें भी ममता नहीं रहती। इसीका नाम सर्वत्याग है। ऐसी अवस्थामें कभी क्षोभ नहीं होता। वह हर अवस्थामें अपने प्रियतमका हँसता हुआ मुख देखना चाहता है। यहाँतक कि नरककी पीड़ा भी प्यारेके मुखपर मुसकान लानेवाली हो तो प्रेमीके लिये इससे बढ़कर कोई वस्तु वाञ्छनीय नहीं हो सकती।

काम और प्रेममें कई बार बहुत साम्य दिखायी देता है, परन्तु जहाँ हम दूसरेसे चाहते हैं उसका नाम काम और जहाँ हम अपना देकर दूसरेको सुखी करना चाहते हैं उसका नाम प्रेम है। यही काम और प्रेमका अन्तर है। प्रेम देना जानता है और काम लेना। काम सौदा करता है, प्रेम त्याग। प्रेमकी भित्ति त्याग है और कामकी भित्ति कॉन्ट्रैक्ट, सौदागिरी: हम तुमको यह देते हैं, इसके बदलेमें तुमको यह देना पड़ेगा। प्रेमीके मनमें कभी यह कल्पना भी नहीं आती कि प्रेमास्पद उसे कुछ दे। उसकी एकमात्र अभिलाषा होती है कि मेरा प्रेमास्पद मेरे द्वारा सुखी हो। परन्तु प्रेमास्पद प्रेमीके इस भावसे इतना कृतज्ञ हो जाता है कि उसे सुख देनेकी इच्छासे प्रेमीकी भावनाके अनुसार अपना मन बना लेता है।

ENGLISH TRANSLATION

When the ocean of love floods, the rasa of affection overflows and becomes visible in a particular state. Otherwise love is not something that leaps noisily upon the surface. It is so deep that even reaching its depths is exceedingly difficult:

“Only after first sinking to the bottomless depth does one sometimes find the stainless jewel of love. Elsewhere that ocean bears the fruit of death, and elsewhere only disgrace.”

Love of God and the love of the gopīs require the surrender of everything. Immersed in the ocean of love, Caitanya Mahāprabhu told Śyāmasundara, “Lord, embrace me or cast me down with a kick. Do whatever pleases You. Yet Lord of my life, I have no one but You.”

Those who follow gopī-bhāva will not abandon the Lord's service even to accept liberation offered by Him. God Himself says, “My people do not accept liberation when it is offered without service to Me.” Service means the beloved's preference, whatever brings pleasure to the beloved. Loving devotees desire only that their beloved Lord, the life and delight of their hearts, remain happy. Beyond this there is no happiness, gain, attainment, desire, possessiveness, or longing. This is love in its pure form and its pure path. It is pure attachment ripened into anurāga, called bhāva.

When attachment matures into anurāga, bhāva arises. With its appearance, attachment to one's pride, social order, caste, fame, this world, and the next disappears. This is complete renunciation. Such a lover is never agitated and wishes only to see the beloved's smiling face in every circumstance. Even the pain of hell would be supremely desirable if it brought a smile to that face.

Desire and love may sometimes look alike, but seeking something from another is desire, while giving oneself to make another happy is love. Love knows how to give; desire knows how to take. Desire bargains, while love sacrifices. Love rests upon renunciation; desire rests upon a contract: “I give you this and you must give me that in return.” A lover never imagines that the beloved should give him anything. His sole longing is that the beloved become happy through him. The beloved becomes so grateful for this disposition that, wishing to delight the lover, he shapes his own mind according to the lover's feeling.

ORIGINAL Sanskrit

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।

वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

रास क्या है? रमण क्या है? ये श्रीश्यामसुन्दरके स्वरूपानन्दका वितरण हैं। गौड़ीय सम्प्रदायके महानुभावोंने रास-पञ्चाध्यायीपर बड़ी सुन्दर टीका की है। परीक्षित्तकके मनमें सन्देहका उदय हो जाता है, प्रश्न पैदा हो जाता है। पर वहाँ वह बात नहीं होती। वहाँ दिव्य चिदानन्दमयी स्वस्वरूप-वितरणकी सुमधुर लीला होती है, जिसके भोक्ता और भोग्य दोनों स्वयं प्रभु ही होते हैं। यहाँ गन्दा काम नहीं है। यह उनका स्वीकार किया हुआ दिव्य काम है:

Language: Hindi verse

शुद्ध सच्चिदानन्द, परम निज महिमामें स्थित नित्य अकाम।

मेरे सुख-हित वे करते स्वीकार स-मुद अपने मन काम॥

सहज वासना-राग रहित जो, ममता-रहित नित्य अविकार।

करते मेरे लिये मुझे वे 'प्रिया' रूपमें अङ्गीकार॥

एक-एक गुणपर जिनके मोहित सब सुर-ऋषि-मुनि संसार।

प्रेम-रूपमें रहते नित्य विमोहित मुझपर बिना विकार॥

जिनके अङ्ग-अङ्गपर नित्य निछावर कोटि-कोटि शत काम।

वे मेरा सौन्दर्य निरखते नित्य, न ले पाते विश्राम॥

जिनको कभी न पलभर लगती भूख-प्यास, जो रहते तृप्त।

मेरे रस-प्रसाद-कण-हित शुचि वे रहते हैं नित्य अतृप्त॥

रति-रसमय, रस-रूप, रसिक वे दिव्य प्रेम-रस-पारावार।

प्रेम-सुधा-रस-पान-निरत, नित्य दिव्य प्रेम-विग्रह साकार॥

इसमें कहाँ मोह है, कहाँ काम, क्रोध अथवा लोभ है? प्रेमराज्यकी बड़ी विलक्षण बात है कि प्रेमी अपने लिये कभी कुछ चाहता नहीं। स्वयं मुक्ति आकर उसका पैर पूजे और ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना करे तो भी प्रेमी कहता है, "मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं, मैं केवल अपने प्रेमास्पदकी सेवा चाहता हूँ।"

स्वयं भगवान् कहते हैं कि मेरे जन मेरी सेवाके अतिरिक्त मुक्ति भी स्वीकार नहीं करते। उनके मनमें न क्षोभ है, न अशान्ति, न कुछ पानेकी इच्छा और न कुछ देनेको बचा है। उनके पास अपना कुछ बचा ही नहीं तो क्या दें? वास्तवमें जबतक हमारे पास देनेको कुछ भी बचा रहता है, कुछ अपना, कुछ अपनी चीज, कुछ अपना अभिमान,

> अपना भाव, अपनी ममताकी वस्तु या कुछ अपना 'मैं' बचा रखते हैं, तबतक हमने पूरा दिया नहीं। पूरा दिया नहीं तो पूरे सेवक बने नहीं।

ENGLISH TRANSLATION

"Seeing those autumn nights filled with blossoming jasmine, the Lord too made up His mind to sport, taking refuge in Yogamāyā."

What are rāsa and divine dalliance? They are the distribution of Śyāmasundara's own essential bliss. The great teachers of the Gauḍīya tradition have written beautiful commentaries upon the five chapters of the rāsa. Even Parīkṣit becomes doubtful and asks a question, yet nothing impure occurs there. It is the exquisitely sweet play in which the Lord distributes His own divine consciousness and bliss, while He Himself is both enjoyer and enjoyed. There is no base desire. It is divine desire voluntarily accepted by Him:

"Pure being, consciousness, and bliss, eternally desireless and established in His supreme glory, He joyfully accepts desire within His mind solely for my happiness. Free by nature from lust and attachment, without possessiveness and eternally unchanging, for my sake He accepts me in the form of His beloved Priyā. Gods, sages, and the whole world are enchanted by each of His qualities, yet as love itself He remains forever innocently enchanted by me. Countless gods of desire are eternally sacrificed before every limb of His body, yet He gazes upon my beauty and can find no rest. Never hungry or thirsty even for an instant and always fulfilled, He remains ever unsatisfied for the purest particle of the offering of my rasa. Filled with the rasa of love, the form and connoisseur of rasa, an ocean of divine love, He forever drinks the nectar of love and stands embodied as divine love itself."

Where are delusion, lust, anger, or greed in this? The wonder of love's realm is that the lover desires nothing for himself. Even if liberation came, worshiped his feet, and begged to be accepted, he would reply, "I have no need of you. I want only to serve my beloved."

The Lord Himself says that His people do not accept even liberation apart from His service. Their minds contain no agitation, unrest, or wish to obtain anything, nor have they anything left to give. When nothing of their own remains, what could they offer? So long as we retain anything to give, something called ours, our pride, feeling, cherished possession, or private self, we have not given ourselves completely. Without complete giving, we have not become complete servants.

ORIGINAL Sanskrit

राधाका अर्थ क्या है? मात्र श्रीकृष्ण-प्रेम। गोपीका अर्थ क्या है? केवल श्रीकृष्णकी सुखेच्छा। इस प्रकारका जिसका जीवन है वही गोपी है और वही राधा है। उसके लिये बहुत कुछ बदलनेकी आवश्यकता नहीं। केवल अपने अन्तरात्माके भावोंको बदल देना है; फिर उनमें जो भाव-तरङ्गें उठेंगी, वे बड़ी विलक्षण होंगी। राधा-महाभावकी समुद्र-तरङ्गें अगाध, असीम और अनन्त हैं। यदि कभी उनमें मान भी आता है तो वह अपने लिये नहीं, किसी अभिमानपर ठेस लगनेपर नहीं, अपनी पूजा या खुशामद करानेके लिये नहीं और दण्ड देनेके लिये नहीं। वह विलक्षण मान प्रेमास्पदको हँसाने और सुख देनेके लिये होता है। प्रेमास्पद भी प्रेमियोंकी चाह पूरी करनेके लिये चाहते हैं कि वे उन्हें भजें और खीजकर उन्हें रिझायें। खीजकर रिझानेमें बड़ा सुन्दर भाव होता है।

इस प्रकारका विलक्षण भाव इस प्रेम-समुद्रकी तरङ्गोंके रूपमें निरन्तर उछलता रहता है। कभी राधा मानिनी हैं, कभी आराध्या अथवा आराधिका। आराध्या राधाका स्वरूप समझना बड़ा मुश्किल है। आराधिका राधाका स्वरूप समझमें आता है, जो भगवान्की पूजा और आराधना करती हैं। उनका रूप बड़ा सुन्दर है। पर कहीं वे भगवान्के द्वारा पूजित होती हैं, भगवान् उनकी आराधना करते, उनका चरण-वन्दन करते और उनके लिये चरणोंपर पुष्प चढ़ाते हैं। “देहि मे पदपल्लवमुदारम्” कहकर भगवान् उनके चरण चाहते हैं। सदाचारियोंके लिये यह बड़ी विकट, बड़ी भाँड़ी बात लगती है। सचमुच यह उनके समझमें आनेकी बात नहीं:

या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा

भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

(श्रीमद्भागवत १०।४७।६१)

एक कथा आती है, द्वारिकाकी बात है। जब राधिका और गोपियोंकी चर्चा चलती तो श्रीकृष्णको रोमाञ्च हो आता, आँसू बहने लगते, वाणी गद्गद हो जाती और वे कुछ बोल नहीं पाते। ऐसी दशा देखकर पटरानियों, राजमहिषियोंने आश्चर्य प्रकट किया और मनमें बड़ा सन्देह करने लगीं: ऐसी क्या त्रुटि हममें और ऐसा क्या गुण उनमें? जब कभी गोपियोंकी बात या नाम आता, श्रीकृष्णकी आँखोंमें आँसू आ जाते। वे राजराजेश्वर, सब प्रकारके सुख और आरामसे सम्पन्न हैं। यहाँ क्या कमी है, जो वहाँ था?

भगवान् सार्वभौम समर्थ हैं, वे सब कुछ बन सकते हैं। मृत्यु भी वही बनकर आते हैं। भगवान्को रोग या मृत्यु नहीं होती, पर वे रोग भी बनते हैं और मृत्यु भी। वे रोग बन गये और उनका पेट दुखने लगा। बोले, “अरे, पेटमें दर्द हो रहा है, दवा लाओ।” वैद्य आये, दवा दी, पर भगवान् अच्छे नहीं हुए। वैद्यने पूछा कि पहले भी कभी पेटमें दर्द हुआ हो और कोई दवा प्रयोग की हो तो बतायें। भगवान् बोले, “दवा तो जानता हूँ, पर उसका अनुपान नहीं मिलता। यदि हमारा कोई प्रेमी अपने चरणकी धूल दे दे तो उस धूलके साथ हम दवा ले लें।”

ENGLISH TRANSLATION

What does Rādhā mean? Love for Śrī Kṛṣṇa alone. What does gopī mean? The desire solely for Kṛṣṇa's happiness. One whose life has this character is a gopī and is Rādhā. Little outward change is needed. Transform only the feelings of the innermost self, and the waves of bhāva that arise will be extraordinary. The ocean waves of Rādhā's mahābhāva are unfathomable, limitless, and infinite. Even Her loving displeasure is never for Herself, never caused by wounded pride, and never intended to demand worship, flattery, or punishment. That wonderful māna exists to make the beloved laugh and give Him happiness. To fulfill the lovers' desire, the beloved too wishes that they worship Him and charm Him through playful irritation. There is a beautiful feeling in pleasing through feigned annoyance.

Such extraordinary bhāva continually surges as waves upon this ocean of love. Rādhā is sometimes the offended beloved, sometimes the worshiped One, and sometimes the worshiper. Rādhā as worshiper is readily understood: She worships and adores the Lord. Rādhā as the One worshiped is much harder to comprehend. God worships Her, bows at Her feet, places flowers upon them, and begs, “Place Your generous lotus foot upon Me.” To conventional moralists this appears difficult and scandalous, for it truly lies beyond their understanding:

“Abandoning family and the path of the honorable, which are so difficult to relinquish, they attained Mukunda's path, sought even by the Vedas.”

A story is told of Dvārakā. Whenever Rādhikā and the gopīs were mentioned, Kṛṣṇa's body thrilled, tears flowed, His voice faltered, and He could not speak. Seeing this, the chief queens wondered what deficiency existed in them and what exceptional quality existed in those women. Kṛṣṇa was the sovereign of kings and possessed every comfort. What could have existed in Vraja that was absent here?

The all-powerful Lord can become anything. He comes even as death. He does not become sick or die, yet He can assume the forms of sickness and death. He therefore became illness and developed a pain in His stomach. Physicians brought medicines, but He did not recover. Asked whether an earlier remedy had helped, He replied, “I know the medicine, but its necessary accompaniment is unavailable. If one of My lovers gives the dust of his or her feet, I can take the medicine with that dust.”

ORIGINAL

रुक्मिणीजी पास बैठी थीं, सत्यभामा भी बैठी थीं। दोनोंने सोचा कि चरणकी धूल तो हमारे पास है और प्रेमी भी हम हैं, पर शास्त्र कहता है, हम रोज सुनते और जानते हैं, पतिको, स्वामीको चरणकी धूल कैसे दे दें? पाप लगेगा, नरकोंमें रहना पड़ेगा। नरक जानेका सामान कैसे इकट्ठा करें? सत्यभामाजी बोलीं, “आप दे दीजिये न।” रुक्मिणीजीने कहा, “दे तो देती बहन, पर डर लगता है, कहीं पाप लगा और नरक हो गया तो।” सोलह हजार रानियाँ सब नट गयीं। पापकी भागी बननेके लिये कोई तैयार नहीं। जब वे नट गयीं तो कौन दूसरा द्वारकावासी या विश्वासी देता? सब जगहसे ‘नहीं’ आ गयी।

उसी समय नारदजी वहाँ पधारे और बोले, “पेट दुखता है? महाराज, यह कैसी माया रची?” भगवान् बोले, “दुखता तो बहुत है। तुम कुछ उपाय कर दो, किसी प्रेमीकी चरणधूलि ला दो।” नारदजीने सोचा, धूल तो अपने अन्दर ही है, पर हमसे बड़ा प्रेमका दर्जा रखनेवाली रुक्मिणीजी हैं। जब इन्होंने नहीं दी तो हम कैसे दें? नारदजीने भी नहीं दी। पुनः श्यामसुन्दर बोले, “नारद, जरा व्रजमें तो हो आओ।” नारद बोले, “जब सारे विश्वमें नहीं मिली तो व्रजमें क्या मिलेगी?” भगवान् बोले, “तुम जाओ तो सही।”

वीणा बजाते और भगवान्का मङ्गलमय नाम-गान करते हुए नारद व्रज पहुँचे। मधुर नामगान सुनकर सब गोपाङ्गनाएँ, गोप और बच्चे एकत्र हुए। सबका समाधान करके नारद गोपाङ्गनाओंके बीच पहुँचे। सबने घेरकर पूछा, “महाराज, कहाँसे पधारे?” “द्वारकासे।” अब सबके मनमें समाचार जाननेकी उत्कण्ठा हुई। “क्या सरकार मजेमें हैं? हमारे प्राणनाथ प्रसन्न हैं न? कुछ हुआ तो नहीं?” नारदजी चुप हो गये, जरा मुँह बना लिया। अब उनके प्राण निकलने लगे। उन्होंने राजी-खुशीका समाचार पूछा और नारद चुप हो गये, लगा कुछ दालमें काला है। अनिष्टकी आशङ्का हुई। बोलीं, “महाराज, जल्दी बताइये, मामला क्या है?” नारदजी बोले, “श्यामसुन्दरका पेट दुखता है। बहुत दवा हुई, पर कुछ लाभ न हुआ।” गोपियोंने पूछा, “कोई उपाय?”

नारदजीने कहा, “उपाय तो भगवान्ने स्वयं बताया। किसी प्रेमीकी चरणधूलि मिल जाय तो अच्छे हो जायँ।” “श्रीश्यामसुन्दर कहा करते थे कि गोपियाँ हमारी बड़ी प्रेमिका हैं।” गोपियाँ बोलीं, “वे हमें प्रेमी मानते हैं?” नारदने कहा, “वे तो मानते हैं।” सबने अपने चरण आगे बढ़ा दिये, “ले जाइये धूल। जितनी मर्जी हो ले लें, जितनी मर्जी हो बाँध लें, महाराज!” नारदने कहा, “अरी, पागल हो गयी हो? शास्त्रकी अवज्ञा कर रही हो। किसको धूल दे रही हो? भगवान्को! नरकमें वास होगा।” गोपियाँ बोलीं, “हम भगवान् तो जानती नहीं, वे हमारे प्राणनाथ हैं। यदि उनके पेटका दर्द अच्छा होता हो तो हमें अनन्तकालतक नरकोंमें रहना पड़े, उससे बढ़कर हमारे लिये क्या लाभ होगा? हम अनन्तकालतक नरकोंमें रहेंगी, कभी शिकायत नहीं करेंगी कि आपने हमें नरकोंमें भिजवा दिया। आप धूल ले जाइये और जल्दी जाइये, जिससे उनके पेटका दर्द अच्छा हो जाय।”

ENGLISH TRANSLATION

Rukmiṇī and Satyabhāmā sat nearby. Both thought, "We have dust upon our feet and we are His lovers, but scripture teaches that one must never give the dust of one's feet to one's husband and Lord. It would bring sin and residence in hell." Satyabhāmā asked Rukmiṇī to give it. Rukmiṇī replied, "I would, sister, but I fear the sin and hell that may follow." All sixteen thousand queens refused. If none of them would become liable for the sin, what other resident or believer in Dvārakā would give it? Every person answered no.

Nārada arrived and asked what illusion the Lord had devised through this stomach pain. God replied, "It hurts greatly. Find a remedy and bring the foot dust of one of My lovers." Nārada thought that he possessed such dust, but Rukmiṇī's love was greater than his. If she had not given hers, how could he give his? He too declined. Śyāmasundara then sent him to Vraja. Nārada doubted that what could not be found in the entire universe would be found there, but the Lord told him to go.

Playing his vīṇā and singing God's auspicious names, Nārada reached Vraja. Hearing the sweet song, the women, men, and children gathered. The gopīs surrounded him and eagerly asked whether their Lord was well and happy. Nārada fell silent and made a troubled face. Alarmed, they pressed him to explain. He said that Śyāmasundara's stomach hurt and no medicine had helped. When they asked for a remedy, Nārada explained that the Lord Himself had prescribed the dust from a lover's feet.

"Śyāmasundara used to say that the gopīs were His great lovers." They asked, "Does He truly regard us as His lovers?" When Nārada said yes, every gopī extended her feet. "Take the dust. Take and bind up as much as you wish!" Nārada warned that giving foot dust to God violated scripture and would condemn them to hell. The gopīs replied, "We do not know Him as God. He is the Lord of our lives. If His pain can be healed, what greater gain could we have than to remain in hell forever? We will stay there throughout eternity without ever complaining that He sent us. Take the dust and go quickly so that His pain may cease."

ORIGINAL Hindi verse

नारदजी चकित हो गये। मन-ही-मन सोचने लगे, “हम तो अबतक झूठे ही प्रेमी बन रहे थे! बहुत बढ़िया उद्धवने माँगा था लता, गुल्म, तरु होकर चरणोंकी धूल। हमें तो प्रत्यक्ष मिल गयी। आज गोपियोंने पैर बढ़ा-बढ़ाकर दे दी। धन्य हो गये हम।” इसके बाद चरणधूलिसे उन्होंने अपना सारा मस्तक अभिषिक्त किया, फिर पोटली बाँधकर सिरपर रखी तथा नाचते-गाते वीणा लेकर द्वारिकाके राजमहलमें पहुँच गये। बोले, “महाराज, ले आया, ले आया।” भगवान् हँसे, “भला कहाँसे ले आये?” “महाराज, आपने व्रजमें भेजा था।” “अरे, व्रजमें किसीने दे दिया?” नारद बोले, “हाँ, गोपियोंने दे दिया।” “आपने समझाया नहीं कि बड़ा पाप लगेगा?” “कहा तो, महाराज, पर वे ऐसी पगली हैं कि हमारी बात न सुनी, न मानी। कहने लगीं, ‘हमारे अघासुरको तो श्यामसुन्दर पहले ही मार गये, हमारे पास अघ कहाँ है? और यदि कोई पाप होगा तो कोई बात नहीं, हम भोगेंगी, नरकोंमें जायँगी। आप ले जाइये, प्राणनाथको जल्दी अच्छा कीजिये।’”

भगवान्ने गोपाङ्गनाओंकी चरणधूलि लेकर सिरपर लगा ली। पेट तो अच्छा था ही। रुक्मिणीजी और सत्यभामाजी सब इकट्ठी थीं, सब चकित रह गयीं और उनकी वाणी मुखरित न हो सकी। श्रीकृष्णने उनका मान रखा और बोले, “रुक्मिणीजी, अब पेट अच्छा हो गया, चिन्ता मत करो। ये गोपियाँ तो पागल हैं, पर कभी-कभी ये पगली भी काम दे देती हैं। देखा न?” उन्होंने अवगत करा दिया कि गोपियोंके नामसे उनके आँसू क्यों आते हैं।

प्रेमराज्यमें सङ्कोच नहीं होता। सङ्कोच वहाँ होता है जहाँ हम कुछ चाहते हैं। प्रेमी कुछ चाहता नहीं और उसके पास चाहने योग्य मन रहता नहीं। यह राधाभाव बड़ा विलक्षण त्यागका भाव है। इस सर्वस्व-त्यागके लिये हमें तैयार हो जाना चाहिये। सबसे पहले मान जायगा, धन जायगा, स्वर्ग जायगा, लोक जायगा, परलोक जायगा, इज्जत जायगी। सबकी होली फूँक दी जायगी:

कबिरा खड़ा बजारमें, लिये लुकाठी हाथ।

जो घर फूँके आपनो आवे मेरे साथ॥

जिसको अपना घर फूँकना हो, घरके ममत्वको जला देना हो, वह हमारे पास आ जाय तो उसकी बेड़ी कट जायगी:

Language: Sanskrit

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।

तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः॥

(श्रीमद्भागवत १०।१४।३६)

ब्रह्माजीने कहा, “भगवन्! जबतक मनुष्य तुम्हारा नहीं हो जाता, तबतक राग-द्वेषरूपी चोर उसके पीछे लगे रहते हैं। तबतक पैरोंमें लोहेकी बेड़ियाँ पड़ी रहती हैं। जब आपका हो गया, जेलखानेसे छूट गया। ये बेड़ियाँ निकल गयीं और उसके जीवनको लूटनेवाले राग-द्वेषरूपी चोर उससे दूर हट गये। पर आपका होनेके लिये दूसरोंका होना छोड़ना पड़ता है।”

हम न मालूम किस-किसके हो रहे हैं: कामके, क्रोधके, लोभके, अभिमानके, कीर्तिके, यशके, भोगके, घरके और मकानके। इस प्रकार न मालूम किस-किसके गुलाम हो रहे हैं। इन सारी गुलामियोंको छोड़ना पड़ेगा। जो अपने सर्वस्वको स्वाहा करके, फूँककर, उसके भस्मावशेषपर नाच सके वह प्रेमके मार्गमें आवे:

Language: Braj Bhāṣā

प्रेम पंथ पावक की ज्वाला भारी पाछा भागे जोने।

माँही पड़्याते महारस माने देखनहारा दाझे जोने।।

प्रेमी-प्रेमास्पदके मध्य उत्पन्न होनेवाले भावकी यही पराकाष्ठा है। यह महान् रस, यह महान् दिव्य आनन्द, यह राधाभाव, यह गोपीभाव सर्वस्व-त्यागकी भूमिपर ही प्रतिष्ठित होते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

Nārada was astonished. "Until now I merely pretended to be a lover! Uddhava rightly prayed to become a vine, shrub, or tree so that he might receive this foot dust. I have obtained it directly, offered by the gopīs themselves. I am blessed." He anointed his whole head with the dust, tied the rest in a bundle, placed it upon his head, and returned dancing and singing to the palace at Dvārakā. When Kṛṣṇa asked where he had found it, Nārada answered that the gopīs had given it. The Lord asked whether he had warned them of the terrible sin. Nārada replied, "I warned them, but those madwomen would not listen. They said, 'Śyāmasundara already killed our Aghāsura, so what agha, sin, can remain with us? If there is any sin, we will suffer it and go to hell. Take the dust and quickly heal the Lord of our lives.'"

God placed the gopīs' foot dust upon His head. His stomach had never truly been ill. Rukmiṇī and Satyabhāmā stood speechless with wonder. Respecting their dignity, Kṛṣṇa said, "Rukmiṇī, My stomach is well now. Do not worry. These gopīs are mad, yet sometimes their madness proves useful. You have seen it." He had shown them why tears came to His eyes at the gopīs' names.

There is no hesitation in the realm of love. Hesitation arises where we desire something for ourselves. The lover desires nothing, and no self-seeking mind remains within him. Rādhā-bhāva is an extraordinary disposition of renunciation. We must be ready to relinquish everything. Pride, wealth, heaven, this world, the next world, and honor will all depart. Everything will be cast into the fire:

"Kabīra stands in the marketplace with a burning brand in hand. Whoever burns down his own house may come with me."

One who wishes to burn the house of possessiveness may come, and his fetters will be cut:

"So long as people are not Yours, O Kṛṣṇa, attachments and aversions remain thieves, the home remains a prison, and delusion remains an iron shackle upon the feet."

Until a person becomes God's, the thieves of attachment and aversion pursue him and iron fetters remain upon his feet. Once he belongs to God he is released from prison, the chains fall away, and the thieves that plundered his life withdraw. Yet to become His, one must cease belonging to all others.

We have become slaves of desire, anger, greed, pride, fame, reputation, enjoyment, house, and property. Every such bondage must be abandoned. One who can offer everything into the fire and dance upon its ashes may enter the path of love:

"The path of love is a mighty flame; the one who retreats turns back. The one who enters it tastes the supreme rasa, while the mere spectator is scorched."

This is the culmination of the feeling arising between lover and beloved. This great rasa, divine bliss, Rādhā-bhāva, and gopī-bhāva can be established only upon the ground of total renunciation.

CHAPTER 5

गोपी-प्रेमकी प्राप्तिका साधन है—भगवत्प्रेमीका संग

The Means to Attain Gopī Love Is the Company of a Lover of God

Source scan pages 64–68

ORIGINAL Sanskrit

गोपी-प्रेमकी प्राप्तिका साधन है—भगवत्प्रेमीका संग

सत्का जहाँ संग मिले उसे सत्संग कहते हैं। 'सत्' अर्थात् जो सदा सत्य है, जिसका कभी नाश नहीं होता। सत्य स्वयं भगवान् हैं। भगवान्का जहाँ संग मिले वह सत्संग है।

भगवान्के संगका साधन भगवत्संगीका संग है। भगवत्संगीके अनेक अर्थ हैं। जिसमें भगवान्के प्रति आसक्ति हो उसे भगवत्संगी कहते हैं। अथवा भगवान्की उपासना या आराधना करनेवाला भी भगवत्संगी कहलाता है। एक अर्थ यह भी है कि जिसे भगवान्का संग प्राप्त हो। जो नित्य भगवान्के संग है और भगवान् जिसके नित्य संग हैं, वह भगवत्संगी है।

थोड़े-थोड़े परिवर्तनसे भगवत्संगीके संगके महत्त्वका श्रीभागवतमें अनेक बार उल्लेख है:

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।

भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

भगवत्संगीके संगीकी महिमा अपार है। विषयभोगका सुख तो तुलनामें आता ही नहीं। भगवत्संगीके संगकी चाह करनेवाला स्वर्गसुख क्या, मोक्षसुखतककी उपेक्षा कर देता है। उसमें भगवत्प्रेमी संतके संगकी एकमात्र चाह बनी रहती है।

संत दुर्लभ होते हैं। नारदभक्तिसूत्रमें कहा गया है कि "महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।" संत दुर्लभ होते हैं और मिल जानेपर भी उनकी पहचान अत्यन्त कठिन है। सच्ची पहचान न होनेके कारण प्रायः लोग ऐसे संतोंको, जिन्हें भगवान्का वास्तविक संग प्राप्त नहीं होता, भगवत्प्रेमी संत मान बैठते हैं। लौकिक स्तरवाली हमारी बुद्धि, जो अधिकांशमें बाहर-ही-बाहर देखती है, उन्हें पहचान नहीं पाती। पत्थर या लकड़ीकी तौल कर सकनेवाला काँटा हीरा तौल कैसे कर सकता है? हीरेका मूल्यांकन करनेके लिये विशेष तराजूकी, विशेष कसौटीकी आवश्यकता होती है और तभी हीरेकी परख और पहचान सम्भव है। प्रथम तो संत मिलते ही नहीं; मिलते हैं तो पहचानमें नहीं आते; पहचानमें आनेके बाद भी श्रद्धा नहीं होती; श्रद्धा होती है तो पास रहनेकी चाह नहीं होती।

ENGLISH TRANSLATION

The Means to Attain Gopī Love Is the Company of a Lover of God

Where one obtains the company of sat, the eternally real, that is called satsaṅga. Sat means that which is forever true and can never perish. God Himself is Truth. Wherever one obtains the Lord's company, there is satsaṅga.

The means of attaining God's company is the company of one who lives with God, a bhagavat-saṅgī. The term has several meanings. One attached to God is a bhagavat-saṅgī; so too is one who worships or adores Him. It may also mean one who has actually attained His company, who is always with God and with whom God always remains.

With slight variations, the Śrīmad Bhāgavata repeatedly declares the greatness of such company:

“Not even heaven or freedom from rebirth can be weighed against a single moment in the company of those who keep the Lord's company. What, then, are mortal blessings beside it?”

The glory of association with a bhagavat-saṅgī is boundless. Sensual pleasure does not even enter the comparison. One who longs for that company disregards not only heavenly enjoyment but even the joy of liberation. The sole desire that remains is to associate with a saint who loves God.

Saints are rare. The Nārada Bhakti Sūtra says, “The company of the great is difficult to obtain, difficult to comprehend, and unfailing.” Even when saints are found, recognizing them is exceedingly difficult. Lacking true discernment, people often regard as God-loving saints those who have not attained actual communion with Him. Our worldly intellect, which generally sees only outward appearances, cannot recognize them. Can a scale capable of weighing stone or wood weigh a diamond? A diamond requires a special balance and touchstone before it can be tested and known. First, saints are seldom found. When found they are not recognized; when recognized they do not inspire faith; and when faith arises, the desire to remain near them is often absent.

ORIGINAL

परन्तु यदि दुर्भावना करके भी संतके पास रहे तो उसका लाभ होता है, क्योंकि वस्तुगुण कहीं नहीं जाता। बिना पहचाने भी संतका संग अमोघ है। अनजानमें अग्निका स्पर्श हाथको गर्मी देता ही है, बर्फको छूनेपर शीतलताकी अनुभूति होती है। वस्तुगुणके प्रभावसे संतके सम्पर्कमें आनेवालोंको लाभ होता ही है, भले उसे लाभकी जानकारी न हो।

संतका संग केवल चाहपर निर्भर है। जप, पाठ, एकान्तमें बैठना, ध्यान आदि सब ठीक हैं और सब सहायक हैं, किन्तु संतका संग भाव-सापेक्ष है। अनुष्ठानके सफल होनेपर सूर्य, वायु, अग्नि-देवताओंको आना पड़ता है। आजकल अनुष्ठानकी समाप्तिपर देवताओंके न आनेके कारण विधिमें पूर्णताका अभाव है। सम्पूर्ण विधानका विधिवत् पालन होनेपर पूर्व युगोंमें देवतागण आये हैं, जैसे कुन्तीके बुलानेपर सूर्य। देवताओंका आह्वान विधि-विधानकी पूर्णतापर निर्भर है। संतके संगकी प्राप्तिमें विधि-विधान सहायक बन सकते हैं, किन्तु आवश्यक नहीं। वह विधि-विधाननिरपेक्ष है। उसमें केवल भाव मुख्य है और वह भावद्वारा लभ्य है।

भगवत्प्रेमी जब मिलते हैं और उनमें जो प्रेमचर्चा चलती है, उस चर्चाके समय यदि उनके प्रियतम भगवान् भी आ उपस्थित होते हैं और उनसे यदि उनकी चर्चामें रुकावट आती है तो प्रेमी उनसे यही कहते हैं, “आप थोड़ी देरके लिये यहाँसे चले जाइये।” यही भगवत्प्रेमकी अनुपमता है। भगवत्प्रेमियोंमें गोपियोंका स्थान सबसे ऊँचा है, बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंको भी दुर्लभ है। पद्मपुराणमें ऐसा आया है कि स्वयं ब्रह्मविद्याने गोपीभावकी प्राप्तिके लिये कल्पों तपस्या की।

अष्टकालीन सेवाचर्यामें किसी मञ्जरीके अनुगत होकर सेवाभावना करें। निकुञ्जमें किसी मञ्जरीने झाड़ू दी। अनुनय-विनय करके एकत्रित कूड़ेको फेंकनेकी सेवा प्राप्त करें। अथवा किसी मञ्जरीके द्वारा पानदान दिये जानेपर प्रिया-प्रियतमके पीक ग्रहण करनेके लिये पीकदानी उठानेकी सेवा प्राप्त करें। स्वयंको मञ्जरीकी दासीके रूपमें भावित करके भावराज्यमें ले जायँ। अपनेको किसी मञ्जरीके साथ दें। यदि अपना नाम याद न भी हो तो कल्पित नाम रख लें।

ENGLISH TRANSLATION

Yet even one who remains near a saint with an unfavorable attitude receives benefit, for an object's inherent power never leaves it. Association with a saint is unfailing even when the saint is unrecognized. Touching fire unknowingly still warms the hand, and touching ice still gives an experience of cold. By the saint's inherent power, everyone who comes into contact receives benefit, even without knowing it.

The company of a saint depends solely upon longing. Repetition of the divine name, recitation, solitude, meditation, and similar practices are all sound and helpful, but the company of a saint depends upon bhāva. When a rite is successfully completed, deities such as Sūrya, Vāyu, and Agni must appear. Nowadays they do not appear at the conclusion because the rite lacks completeness. In former ages, when every prescription was followed perfectly, the deities came, as Sūrya came when Kuntī invoked him. Summoning the gods depends upon perfect observance of ritual procedure. Such procedures may assist one in obtaining a saint's company, but they are not indispensable. That company is independent of ritual. Bhāva alone is decisive, and through bhāva it is attained.

When lovers of God meet and become absorbed in speaking of love, even if their beloved Lord Himself appears and His arrival interrupts their discussion, they tell Him, “Please go away for a little while.” Such is the incomparable nature of divine love. Among lovers of God, the gopīs hold the highest place, a state difficult even for the greatest sages to attain. The Padma Purāṇa says that Brahmavidyā herself performed austerities for many aeons to attain gopī-bhāva.

In the eightfold daily service, contemplate serving under the guidance of a mañjarī. If a mañjarī has swept the grove, humbly beg for the service of carrying away the gathered refuse. Or, when she gives you the betel box, receive the service of holding the spittoon for Priyā and Her Beloved. Conceive yourself as a maidservant of a mañjarī and enter the realm of bhāva. Entrust yourself to a particular mañjarī. If you cannot remember your own name there, adopt an imagined one.

ORIGINAL

देवीभागवतके अनुसार अष्टसखियोंके कुछ नाम हैं और वैष्णव ग्रन्थोंके अनुसार कुछ अन्य नाम हैं। उस समय जैसा मनमें आये वैसी ही भावना करें, फिर अपने-आप असली वस्तु स्फुरित होने लगेगी। रुचिके अनुकूल सेवाकी भावना करें, जैसा कि सत्संग-सुधामें आया है। अपने मनसे जोड़ लें, राधाकुण्ड है, कमलके पुष्प खिले हैं, कदम्बका वृक्ष है, उसके नीचे राधाकृष्ण खड़े हैं। अथवा निकुञ्जमें झूला पड़ा है, उसमें राधाकृष्ण झूल रहे हैं। इस प्रकार पाँच सौ, एक हजार, जितनी भी हो सके, वस्तुओंकी कल्पना करें और उसके अनुसार सेवाकी भावना करें। भावराज्यके अनुसार अपने स्वरूपकी दिनमें दस बार, बीस बार, पचास बार भावना करें। हमेशा आवृत्ति करें। इससे भावकी पुष्टि होती है।

दोषदर्शन, सन्देह, भावपरिवर्तन, अहंकार आदिकी जहाँ तनिक भी सम्भावना होती है, उसे भावराज्यमें प्रवेश नहीं मिलता। भावान्तरकी सम्भावना संतके संगकी प्राप्तिमें सबसे बड़ा विघ्न है। इस लोकमें पतिव्रताके लिये प्रायः कहा जाता है कि “सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।” इसका अर्थ यह नहीं है कि इस जगत्में पुरुष ही नहीं हैं, परन्तु पत्नीके लिये भावदृष्टिसे पतिके अतिरिक्त सारा जगत् पुरुषशून्य हो जाता है।

अरविन्दाश्रममें अनेक साधक रहते हैं, परन्तु अरविन्द एवं माताजीके कमरेमें झाड़ू लगानेका अवसर उन्हें ही मिलता था, जो इसके योग्य समझे जाते थे, अर्थात् जिनमें भावान्तर होनेकी सम्भावना नहीं थी। महाभारतमें ऐसा आया है कि युद्धके पूर्व संजय धृतराष्ट्रके पास जाकर बोले, “महाराज! पाण्डवोंकी विजय निश्चित है।” धृतराष्ट्रने पूछा, “यह कैसे कह सकते हो?” संजयने उत्तर दिया, “महाराज! पाण्डवोंके अन्तःपुरमें जाकर मैंने देखा कि अर्जुन श्रीकृष्णकी गोदमें सिर रखकर सो रहे हैं और श्रीकृष्ण अपने हाथसे अर्जुनके बालोंको सहला रहे हैं। पैताने सत्यभामा और द्रौपदी बैठी हैं। अर्जुनका एक पैर उनकी गोदमें है और वे उसे दबा रही हैं। जिन अर्जुनकी भगवान् श्रीकृष्णके साथ इतनी एकात्मता हो, उनकी विजय निश्चित है।” संजयके अचानक अन्तःपुरमें चले आनेपर अर्जुन निःसंकोच पूर्ववत् लेटे रहे और सत्यभामा तथा द्रौपदी भी सम्भ्रमरहित पूर्ववत् पैर दबाती रहीं। श्रीकृष्णने संजयको देखकर बैठनेके लिये सोनेका पीढ़ा अपने पैरसे बढ़ा दिया, किन्तु संजय पीढ़ेको प्रणामकर नीचे ही बैठ गये।

ENGLISH TRANSLATION

The Devī Bhāgavata gives one set of names for the eight sakhīs, while Vaiṣṇava texts give others. At first, contemplate whatever arises in the mind. In time the real form will reveal itself of its own accord. Envision service according to your inclination, as taught in Satsaṅga-sudhā. Form the scene within your mind: Rādhākuṇḍa lies before you, lotuses bloom, and Rādhā and Kṛṣṇa stand beneath a kadamba tree. Or envision a swing in a grove upon which They are swinging. Imagine five hundred or a thousand details, as many as possible, and contemplate service accordingly. Ten, twenty, or fifty times a day, envision your own spiritual form in harmony with that realm. Repeat this constantly, for repetition strengthens bhāva.

Where there remains even the slightest possibility of fault-finding, doubt, change of devotional disposition, egoism, or the like, entry into the realm of bhāva is not granted. The possibility of shifting to another bhāva is the greatest obstacle to attaining a saint's company. In this world it is often said of a faithful wife, “Even in a dream no other man exists.” This does not mean that no other men exist in the world. It means that, from the perspective of her devoted feeling, the whole world apart from her husband has become empty of men.

Many aspirants lived at the Aurobindo Ashram, yet only those deemed qualified were permitted to sweep the rooms of Aurobindo and the Mother, meaning those in whom there was no possibility of a change in feeling. The Mahābhārata relates that before the war Sañjaya told Dhṛtarāṣṭra, “Majesty, the victory of the Pāṇḍavas is certain.” When asked how he could know, Sañjaya replied, “I entered their inner apartments and saw Arjuna sleeping with his head in Śrī Kṛṣṇa's lap while Kṛṣṇa stroked his hair. Satyabhāmā and Draupadī sat at his feet. One of Arjuna's feet rested in their laps and they were massaging it. Victory is certain for one who shares such oneness with Lord Kṛṣṇa.” When Sañjaya suddenly entered, Arjuna remained lying there without self-consciousness, while Satyabhāmā and Draupadī continued their service without embarrassment. Seeing Sañjaya, Kṛṣṇa pushed a golden stool toward him with His foot, but Sañjaya bowed to the stool and sat upon the floor.

ORIGINAL

उनमें भावान्तर होनेकी सम्भावना नहीं थी। इसलिये श्रीकृष्णके अन्तःपुरमें संजय जा सकते थे, पर उनके अपने पुत्र प्रद्युम्न और अभिमन्यु नहीं। प्रद्युम्न उनके पुत्र थे, इसलिये पुत्रके रूपमें उनका जो अधिकार था वह तो उन्हें प्राप्त था ही; परन्तु अन्तःपुरका भावराज्य दूसरा था, जिसमें प्रद्युम्नको प्रवेशाधिकार नहीं था। सुग्रीव और हनुमान दोनों ही रामको अतीव प्यारे हैं, किन्तु राजदरबारमें भगवान् रामके पास सुग्रीव ही ऊपर बैठते हैं। हनुमान तो दूर कहीं कोनेमें खड़े रहते हैं, पर राजमहलमें सुग्रीव नहीं, हनुमान ही जा सकते हैं और निर्बाध जा सकते हैं।

चैतन्य महाप्रभु दो प्रकारके संकीर्तन किया करते थे। एक कीर्तन सबके लिये किया करते थे और एक उनका अन्तरंग कीर्तन होता था, जिसमें केवल अन्तरंग भक्त ही भाग ले सकते थे। उसमें केवल वैसे ही लोग जा सकते थे, जिनमें भावान्तर होनेकी सम्भावना नहीं थी। एक बार ऐसे अन्तरंग-कीर्तनमें बहुत देरतक कीर्तन चालू रहनेपर भी रसका उदय नहीं हुआ। कारणकी खोज की गयी। तख्तके नीचे एक कीर्तन-विरोधी छिपा हुआ मिला। वह यह जाननेके लिये छिपा था कि देखें ये एकान्तमें क्या करते हैं। जो चैतन्य इतने उदार थे कि चाण्डालको भी हृदयसे लगाते थे, उन्होंने उस कीर्तन-विरोधीको बाहर निकाल देनेके लिये कहा। उसे निकाल दिये जानेके बाद कीर्तनमें रसका प्रवाह बह चला।

मथुरासे श्रीकृष्णका सन्देश लेकर उद्धव व्रज आये। व्रजाङ्गनाओंकी, मुख्यतः श्रीराधाकी, विरहसे विदग्धावस्थाको देखकर उद्धवको बड़ा दुःख हुआ। श्रीराधाको ऐसा लगा कि मथुरा लौटकर उद्धव श्यामसुन्दरको उलाहना देंगे, उन्हें फटकारेंगे। श्रीराधाकृष्णको यह सह्य नहीं था। विरहकी बातें सुनकर भी उद्धव श्रीराधाके भावस्तरको छू नहीं पाये। खटसे राधाका स्वर बदला और वे लगीं उद्धवसे कहने, “अरे उद्धव! तुम्हें क्या मालूम? श्रीकृष्ण यहाँसे कभी गये ही नहीं। मेरे हृदयनिकुञ्जमें जाकर देखो। वे वहाँ नित्य विहार कर रहे हैं।” भावान्तर होनेपर रसका प्रवाह बन्द हो जाता है, निकुञ्जलीला छिप जाती है।

ENGLISH TRANSLATION

There was no possibility of a change of feeling among them. Thus Sañjaya could enter Kṛṣṇa's inner apartments, while even Kṛṣṇa's own sons Pradyumna and Abhimanyu could not. Pradyumna naturally possessed the rights of a son, but the realm of intimate feeling within the inner chambers was different, and he had no right of entry there. Sugrīva and Hanumān are both exceedingly dear to Rāma. In the royal court Sugrīva sits in an honored place near Him while Hanumān stands in a distant corner. Yet within the royal residence it is Hanumān, not Sugrīva, who may enter freely and without obstruction.

Śrī Caitanya Mahāprabhu conducted two kinds of saṅkīrtana. One was open to everyone; the other was His intimate kīrtana, in which only inwardly intimate devotees could participate. Only those with no possibility of changing their devotional disposition could enter. Once, although such an intimate kīrtana continued for a long time, rasa did not arise. A search revealed an opponent of kīrtana hiding beneath the platform, hoping to discover what they did in private. Caitanya was so generous that He embraced even outcastes, yet He ordered that this opponent be removed. Once the man had been led outside, rasa again flowed through the kīrtana.

Uddhava came from Mathurā bearing Kṛṣṇa's message. Seeing the women of Vraja, and especially Śrī Rādhā, scorched by separation, he felt great sorrow. Rādhā thought that when he returned to Mathurā he would reproach and scold Śyāmasundara, and She could not bear this. Although Uddhava had heard Her words of separation, he had not touched the level of Her bhāva. Her voice suddenly changed and She told him, “Uddhava, what do you know? Śrī Kṛṣṇa has never left this place. Look within the grove of my heart. He is eternally sporting there.” When the devotional disposition changes, the current of rasa stops and the grove-līlā disappears from view.

ORIGINAL

जिसे सेवाका तनिक भी अवसर मिल जाय, वही परम सौभाग्यशाली है। वैष्णवोंने भृत्यके परिचारकके सेवकके सेवक बननेकी चाह की है। छोटी सेवा ही सही, पर यही एक सौभाग्यकी वस्तु है। इससे छोर तो हाथ लगा, जिससे एक ओर भावकी पुष्टि होगी और दूसरी ओर भावके अधिकाधिक पुष्ट होनेपर निकट एवं उच्चतर स्तरकी सेवाका अधिकार प्राप्त हो सकेगा। जैसे किसी बड़े आदमीके यहाँ कोई नौकर कार्य करता है और उस नौकरकी कोई सहायता करता हो, उस बड़े आदमीके आनेपर नौकर मालिकसे कहता है, “यह मेरी सहायता करता है।” मालिकने पूछा, “क्या यह कुछ लेता है?” नौकरने जवाब दिया, “नहीं, यह कुछ नहीं लेता।” नौकरकी बातपर मालिक उसपर प्रसन्न हो जाता है। इसी प्रकार मञ्जरी दासीको प्रिया-प्रियतमतक पहुँचा सकती है। उसीके अनुगत होकर अपनेको सेवाकार्य करना चाहिये।

सेवाकार्य करनेवालेके लिये बहुत कार्य हैं। सेवाकी चाह न रखनेवालेके लिये कोई कार्य नहीं। भगवान् पूर्णकाम होते हुए भी सेवा करनेकी चाह रखनेवालेके लिये भगवान् स्वतः सेवा करानेकी चाह और कमी स्वीकार कर लेते हैं। यह कमी भी भगवान्‌का स्वरूप है। ‘भग’का अर्थ है ऐश्वर्य; जो षडैश्वर्यसे युक्त हैं, ऐसे भगवान् सदा स्व-महिमामें स्थित रहते हैं। भगवान् पूर्ण हैं, किन्तु प्रेमकी चाहको पूर्ण करनेके लिये अपूर्ण बन जाते हैं और उनमें भूख उत्पन्न हो जाती है।

ENGLISH TRANSLATION

Whoever obtains even the smallest opportunity to serve is supremely fortunate. Vaiṣṇavas have longed to become the servant of the servant of the attendant of His servant. Even the humblest service is a treasure of good fortune. It gives one a thread to grasp: on one side bhāva becomes strengthened, and as it grows ever stronger, one acquires the right to more intimate and elevated service. Suppose a servant works in a great man's household and someone assists that servant. When the master arrives, the servant says, “This person helps me.” The master asks, “Does he accept anything in return?” “No, he takes nothing.” On the servant's word the master becomes pleased with the helper. In the same way, a mañjarī can bring her maidservant before Priyā and Her Beloved. One should perform service under her guidance.

There are countless tasks for one who longs to serve, and none for one who has no such longing. Although the Lord is complete in every desire, for the sake of the person who longs to serve He voluntarily accepts both a desire to receive service and an apparent lack. Even this lack is an expression of God. Bhaga means divine majesty, and the Lord endowed with the six majesties eternally abides in His own glory. He is complete, yet to fulfill the lover's longing He becomes incomplete and hunger arises within Him.

ORIGINAL

अपनेको किसी मञ्जरीकी दासीके रूपमें भावित करके भावराज्यमें ले जायँ। किसी मञ्जरीकी अनुगामिनी बनकर और इस शरीरको भूलकर अपनी भावनाके अनुसार सेवाभावना करते जायँ और सदैव उनकी कृपाकी प्रतीक्षा करते रहें। निरन्तर कृपाकी प्रतीक्षा करें, उनके अनुग्रहपर अवलम्बित हो जायँ। जिस मञ्जरीकी अनुगामिनी बने हैं उसकी कृपासे सम्पूर्ण सत्य हो जायगा। मञ्जरीकी कृपापर निर्भर रहनेसे श्रीराधारानी एवं श्रीश्यामसुन्दरका अनुग्रह स्वतः प्राप्त होता है। मञ्जरीकी सहायिका जानकर प्रिया-प्रियतम स्वयं कृपा करते हैं।

उत्तरोत्तर पुष्ट होता हुआ भाव सबल हो जाता है। भावकी सबलता होनेपर अन्य भावकी बात सुहाती नहीं। कान सुन नहीं सकते। किसी अन्य देवताके प्रकट होनेपर आँखें उसे देख नहीं पातीं। यदि देखती हैं तो अपने भावसे भावित करके देखती हैं। एक बारकी बात है कि श्यामसुन्दर सखियोंके बीचसे भाग गये और जाकर एक निकुञ्जमें छिप गये। श्यामसुन्दरको खोजते-खोजते गोपियाँ उस कुञ्जके पास आ गयीं। अपनेको छिपानेके लिये भगवान् श्यामसुन्दरने चतुर्भुज विष्णुका रूप धारण कर लिया। गोपियोंने चतुर्भुज भगवान् विष्णुको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और पूछा, “क्या इधरसे श्रीकृष्ण गये हैं?” ऐसा पूछनेपर श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये कि इन्होंने पहचाना नहीं। ये खोजमें आगे चली जायँगी तो और मजा आयेगा। यहाँ ज्ञानी भले आक्षेप लगायें कि इन्होंने श्रीकृष्णको पहचाना नहीं या दोनोंमें भेद माना।

जहाँ भावसबलता है वहाँ नित्य विहार चलता है। वहीं निकुञ्ज है। निकुञ्ज वह नहीं जहाँ कुछ वृक्ष लगा दिये और निकुञ्ज नाम लिख दिया। जिस भावान्तरशून्य हृदयमें प्रेमस्वरूप श्यामसुन्दर सदा विराजे हैं, वहीं निकुञ्ज है। उसे निभृतनिकुञ्ज, एकान्त निकुञ्ज कहते हैं। इस निकुञ्जपर जिनका आधिपत्य है वे निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा हैं और जिनके आश्रयसे रस प्रवाहित होता है वे निकुञ्जेश्वर श्यामसुन्दर हैं। यही निकुञ्ज-व्याख्या है। गोपी-प्रेमकी प्राप्तिका साधन है भगवत्प्रेमी संतोंका संग और उनके संगकी चाह।

ENGLISH TRANSLATION

Conceive yourself as a maidservant of a mañjarī and enter the realm of bhāva. Become her follower, forget this physical body, and continue contemplating service according to your inner vision. Always await her grace and depend wholly upon her favor. Through the grace of the mañjarī whom you follow, the entire vision will become real. Dependence upon her grace naturally brings the favor of Śrī Rādhārānī and Śrī Śyāmasundara, for Priyā and Her Beloved recognize you as the mañjarī's assistant and bestow Their mercy themselves.

As bhāva grows steadily nourished, it becomes strong. Once it has gained strength, talk of any other devotional disposition no longer appeals. The ears cannot hear it. If another deity appears, the eyes cannot see that deity; if they do, they see the deity colored by their own bhāva. Once Śyāmasundara slipped away from among the sakhīs and hid in a grove. Searching for Him, the gopīs reached that place. To conceal Himself, Śyāmasundara assumed the four-armed form of Viṣṇu. The gopīs prostrated before Lord Viṣṇu and asked, “Has Śrī Kṛṣṇa passed this way?” Kṛṣṇa was delighted that they had not recognized Him, thinking that the search would become still more delightful as they continued. A jñānī may object that they failed to recognize Kṛṣṇa or imagined a distinction between the two forms.

Where bhāva is strong, the eternal divine sport is always taking place. That alone is a nikunja. A place does not become a nikunja merely because someone plants a few trees and writes that name upon it. The heart free from any change of devotional disposition, where Śyāmasundara, the very form of love, eternally resides, is the secluded and solitary nikunja. Its sovereign is Nikunjeśvarī Śrī Rādhā, while Nikunjeśvara Śyāmasundara is the shelter from whom rasa flows. This is the true meaning of nikunja. The means of attaining gopī love is the company of God-loving saints and the longing for their company.

CHAPTER 6

भाव कैसे बढ़े?

How Does Bhāva Grow?

Source scan pages 69–70

ORIGINAL

भाव कैसे बढ़े?

अभी थोड़ी देर पहले मुझसे किसीने पूछा, “भाव नहीं बढ़ता, क्या करें?” प्रेमके राज्यमें भाव बढ़नेकी चिन्ता नहीं होती। भाव बढ़ता है या नहीं बढ़ता, घटता है कि मिटता है, वह यह सब नहीं देखता। वह तो देखता है केवल प्रेमास्पदकी ओर, चिन्तन करता है एक प्रेमास्पदका। वह अपनी ओर नहीं देखता। अपनी ओर देखना है और अपनी चिन्ता करनी है तो अभी समर्पणका भाव नहीं करना चाहिये। फिर साधन करो, बड़ी अच्छी चीज है, तैरकर जाओ। परन्तु अगर बोट (नाव) में जाना है तो उसके साथ तैरनेकी बात मत सोचो। बोटमें भी बैठो और हाथ-पैर चलानेकी चेष्टा भी करो तो यह ठीक नहीं। या तो समर्पण कर दो और बोटमें बैठ जाओ तो फिर कभी बोटसे उतरनेकी कल्पना मत करना। निरन्तर यही सोचते रहो कि बोटमें बैठे हैं, बस कहाँ हैं, कैसे हैं, यह सब मत सोचो। और नहीं तो फिर तैरकर जाओ, विवेक-वैराग्य पैदा करो, मुमुक्षता जागृत करो तब फिर भगवान्‌को प्राप्त करो। दो नावपर पैर रखनेसे काम नहीं चलता। तुम अपनी चिन्ता करनेवाले होते हो कौन? अगर तुम अपनेको भगवान्‌के समर्पित करके उनपर छोड़ चुके तो या तो उनको असमर्थ मानते हो या उनके सौहार्द्रपर तुम विश्वास नहीं करते या अपनी चिन्ता करना तुमने अभी छोड़ा नहीं। तो बोटमें बैठकर यह चिन्ता मत करो।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।

ENGLISH TRANSLATION

How Does Bhāva Grow?

A short while ago someone asked me, “My devotional feeling does not grow. What should I do?” In the realm of love, one does not worry about whether bhāva is growing. The lover does not inspect whether it is increasing, diminishing, or disappearing. He looks only toward the beloved and contemplates the beloved alone. He does not look at himself. If you still wish to watch yourself and remain concerned about yourself, you should not yet assume the disposition of surrender. Continue with disciplined practice, which is an excellent path, and swim across. But if you intend to cross in a boat, do not think of swimming alongside it. It is not right to sit in the boat while also trying to move your own hands and feet. Either surrender and sit in the boat, never imagining that you will get out again, or swim across through your own effort by cultivating discrimination, detachment, and longing for liberation, and then attain the Lord. Placing one foot in each of two boats will not work.

Who are you to remain responsible for your own care? If you have offered yourself to God and left yourself in His hands, then your anxiety means either that you regard Him as incapable, that you do not trust His loving concern, or that you have not yet ceased caring for yourself. Once seated in the boat, do not continue worrying.

“I shall deliver them from the ocean of the mortal world.”

ORIGINAL
Braj Bhāṣā

एक विशेष बात और है कि प्रेममें तो चिन्ताको स्थान नहीं। प्रेममें तो चिन्तन एक ही होता है प्रेमास्पदका और यह खोद-खोदकर मत देखो कि अंकुर पैदा हुआ कि नहीं। बार-बार बीजको निकालकर देखोगे तो बीज ही नष्ट हो जायगा। अंकुर पैदा कहाँसे होगा? बीजका वपन हो गया तो अब श्रद्धा रखो कि बीजका वपन हो गया। अब अनुकूल वायु और अनुकूल जल मिलेगा ही। इस बगीचेका ऐसा माली है कि उसका कोई बीज व्यर्थ नहीं जाता, उसमें फल लगेगा ही। सुन्दर सुगन्धित सुमनोंका विकास होगा ही। उस गन्धसे वह बगीचा ही नहीं, उसके पाससे निकलनेवाले प्राणी भी सुगन्धका आनन्द लाभ अनुभव करेंगे। परन्तु उससे बगीचेकी खुदाई होती है, कुटवानेको तैयार रहना चाहिये। बगीचेमें प्रवेश करते ही फल मिल जाय, अंकुर तो पैदा हुआ ही नहीं और फल मिल जाय, और फल नहीं मिला तो उत्तेजित हो गये कि कुछ मिला ही नहीं। तो फिर साधन करो, कोई बुरी बात नहीं। तुलसीदासजीने कहा:

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।

कर्म उपासन ज्ञान वेद मत सो सब भाँति खरो।

मोहि तो सावन के अंधे ज्यों दीखत रंग हरो॥

चाटत रहो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।

सो मैं सुमिरत राम सुधारस पेखन परसि धरो॥

अपना अनुभव कहते हैं कि कुत्तेकी भाँति झूठी पत्तल चाटता रहा और जब भजन करने लगा तो अमृतका परोसा हुआ थाल सामने आ गया। अन्तमें कहा, जो किसी कविकी वाणी नहीं हो सकती, “शंकरकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि यदि कुछ बचाकर कहता हूँ तो जीभ गल जाय, मुझे तो अपना भला राम-नामसे ही लगा।”

ENGLISH TRANSLATION

There is one further point. Love has no place for anxiety. In love there is only one contemplation, contemplation of the beloved. Do not keep digging to see whether the seed has sprouted. If you repeatedly pull it out to examine it, you will destroy the seed itself. How then could a shoot emerge? Once the seed has been sown, trust that it has indeed been sown. Favorable air and water will surely come. The gardener of this garden allows no seed to go to waste. It will certainly bear fruit, and beautiful fragrant blossoms will certainly unfold. Their fragrance will delight not only the garden but every creature passing nearby. Yet the garden must also be dug and tilled, and one must be ready for that. Do not demand fruit the moment you enter, before even a sprout has appeared, and then become agitated because nothing has been obtained. If you feel that way, continue formal practice. There is nothing wrong in doing so. Tulasīdāsa says:

“Let anyone who trusts in another rely upon that other. Action, worship, knowledge, and the Vedic paths are all sound in their own ways. As one born blind in the rainy season sees only green, I see only Him. I kept licking used leaf plates like a dog, yet my belly was never filled. Then, remembering Rāma, I found before me a dish filled with the nectar of immortality.”

He speaks from his own experience: he went on licking discarded leaf plates like a dog, but when he began worship, a platter of nectar appeared before him. At the end he made a declaration no mere poet could make: “I swear by Śaṅkara that if I conceal even a little, may my tongue waste away. I found my welfare through the name of Rāma alone.”

ORIGINAL

इसलिये अपने मनमें सन्देह मत करो। जिसको प्रेमके मार्गपर जाना हो वह दूसरेके मार्गपर सन्देह करे नहीं, उसे बुरा बताये नहीं, उसकी ओर ताके भी नहीं और अपने मार्गको छोड़े नहीं, अपनेमें हीनता देखे नहीं। अपने मार्गमें श्रद्धा कम न होने दे और चलता रहे। तो अन्तर्यामी भगवान् यह देखेंगे कि यह सचमुच मुझे चाहता है तो वे अपनी कृपासे जीवन-दर्शन करा देंगे। यह अपने साधनके बलपर सम्भव नहीं। हम सन्देहरहित होकर चलना शुरू कर दें।

जीवनकी सच्ची चाह हो और विश्वास हो। ये दो बातें हों तो काम बन जाता है। वृत्तियाँ बार-बार अस्त-व्यस्त होती हैं, इसका कारण यही है कि जीवनमें सच्ची चाह जागृत नहीं हुई। हम संसारमें देखते हैं कि यह काम हमें करना है, यह निश्चय होते ही सारी इन्द्रियाँ और मन उस ओर लग जाते हैं। जहाँ श्रद्धा हुई, विश्वास जागृत हुआ, चाह पैदा हुई कि तत्परता हो जायगी। बस फिर सब काम अपने-आप हो जायगा।

ENGLISH TRANSLATION

Therefore, do not entertain doubt. One who wishes to follow the path of love should neither doubt another path nor condemn it, nor even turn his attention toward it. He should not abandon his own path, regard himself as deficient, or allow his faith in that path to diminish. He should simply continue. When the indwelling Lord sees that this person truly desires Him, He will graciously grant a vision of spiritual life. This cannot be achieved by the power of one's own practice. Let us begin walking without doubt.

When there is a genuine longing for spiritual life together with faith, the matter is accomplished. Our mental tendencies repeatedly fall into disorder because genuine longing has not awakened in our lives. In ordinary life, the instant we decide that a certain task must be done, all the senses and the mind turn toward it. Once reverence arises, faith awakens, and longing is born, earnest application follows. Then everything proceeds of itself.

CHAPTER 7

अमोघ साधन

The Unfailing Means

Source scan pages 71–77

ORIGINAL

Sanskrit citation fragments

अमोघ साधन

शरणागति एक सुन्दर साधनाकी धारा है, जिसमें साधक परतन्त्र होकर साधना करता है। शरणागतिका अर्थ ही है परतन्त्र-साधना। अपने-आपको भगवान्‌के हाथोंमें सौंपकर जो शरणागत हो गया, उस शरणागत भक्तको सब प्रकारसे निर्भय कर देना भगवान्‌का व्रत है:

“व्रतं मम।” “प्रपन्नाय..........याचते।”

प्रत्येक साधनामें, साधनके मार्गमें जिस प्रकार पथिकको पाथेयकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सदाचारकी आवश्यकता होती है तथा सदाचारके लिये यम-नियम एवं दैवी सम्पत्ति आदि आवश्यक होते हैं। भागवतोक्त छियालीस धर्म भी आवश्यक हैं। जैसे किसी भी मकानको खड़ा करनेके लिये उसकी नींवकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सदाचारकी नींवके बिना साधनाका प्रासाद खड़ा नहीं हो सकता। उपनिषद्‌में आया है, “जो दुश्चरित्र हैं, असमाहितचित्त हैं, उन लोगोंको परमात्माका ज्ञान प्राप्त नहीं होता।” इसलिये सदाचारकी बड़ी आवश्यकता है।

इसके साथ-साथ एक विलक्षण वस्तु और भी है, जो नींव भी लगा देती है, महल भी उठा देती है तथा रक्षा भी करती है। वह है भगवान्‌की कृपा। भगवत्कृपाका अवलम्बन लेकर सच्चे हृदयसे कृपाका आश्रय करें तो असमर्थके सामर्थ्य हैं भगवान्, निर्बलके बल हैं भगवान्। वे सहज ही हमारी सारी निर्बलता, सारा असामर्थ्य, हमारा सारा अपौरुष और हमारी सारी कलुषित वृत्तियोंका समापन कर अपने बलसे हमारे सारे कार्योंको सुसम्पन्न और सफल कर देते हैं; परन्तु भगवान्‌की कृपाका आश्रय अधूरा न हो।

ENGLISH TRANSLATION

The Unfailing Means

Surrender is a beautiful current of spiritual practice in which the aspirant practices in complete dependence. This is the very meaning of śaraṇāgati. One who entrusts himself to the Lord's hands and takes refuge in Him is granted freedom from every fear, for the Lord has vowed:

“This is My vow,” and, “To the one who takes refuge and petitions.”

Just as a traveler needs provisions for the road, every spiritual path requires virtuous conduct. Such conduct requires restraint, discipline, and the divine qualities; the forty-six virtues taught in the Bhāgavata are also necessary. A house cannot stand without a foundation, and the palace of spiritual practice cannot rise without the foundation of right conduct. The Upaniṣad says that those of bad conduct and uncollected mind do not attain knowledge of the Supreme Self. Right conduct is therefore indispensable.

Alongside it there is another extraordinary power that lays the foundation, raises the palace, and protects it: the grace of God. If one sincerely takes refuge in that grace, the Lord becomes the capability of the incapable and the strength of the weak. He readily brings an end to our weakness, incapacity, helplessness, and impure tendencies, and through His own strength completes all our work successfully. Our reliance upon His grace, however, must not be partial.

ORIGINAL

जिस प्रकार रोगाक्रान्त व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण व्याधियोंसहित किसी निपुण वैद्यके पास जाय एवं विश्वासपूर्वक निष्कपट होकर कह दे कि मेरे पास तो न कोई बल है, न शक्ति है; मैं कुपथ्य भी करता हूँ, परन्तु अब आपके संरक्षणमें आ गया। आप अपने आश्रयमें रखकर मेरी चिकित्सा कीजिये। जैसे अस्पतालमें रोगियोंको रखनेके लिये चिकित्सा-कक्ष होते हैं, उसी प्रकार भगवान्‌के चरणारविन्दमें सारे भवरोगके रोगियोंको रखकर चिकित्सा करनेके लिये बड़ा बृहद् चिकित्सा-कक्ष है। पर इसमें यही बात है कि उन्हींको वहाँ स्थान मिलता है, जो अपने सभी दूसरे आश्रयोंको छोड़कर वहाँ रहना चाहें। अपने-आपको भगवान्‌के हाथोंमें सौंपकर परतन्त्र हो जाय, स्वतन्त्र सत्ता सर्वथा समाप्त हो जाय। शरीर रोगी है, अन्तःकरण मलिन है, दुर्बलताएँ हैं, कुपथ्य भी करता है, पर सब कुछ सौंपकर निश्चिन्त हो जाय; फिर उसे कुपथ्य करनेका अवकाश ही नहीं मिलेगा। चिकित्सा-कक्षकी नर्सें और कम्पाउण्डर स्वतः ही कुपथ्यवाली वस्तुएँ पास नहीं आने देंगे।

इस चिकित्सा-कक्षकी एक और विचित्र बात है कि जबतक कोई रोगी यहाँ भर्ती नहीं होता है तबतक तो कोई बात नहीं, पर एक बार भर्ती होनेके बाद डॉक्टर उसके कुपथ्य आदिको छुड़ाकर, बिना रोग ठीक किये छोड़ता नहीं। सम्प्रदान एवं समर्पण ये दो बार नहीं होते। यदि एक बार सम्प्रदान और ग्रहण हो जाय तो फिर भगवान् छोड़ना जानते नहीं; परन्तु अच्छे होनेकी तीव्र इच्छा होनी आवश्यक है। साधक अपनेको सर्वथा अशक्त, निर्बल, असहाय एवं अकिंचन समझकर समर्थ प्रभुके शरणापन्न हो जाय तो भगवान् उसे अभयदान दे देते हैं।

प्रेमके नामपर, ज्ञानके नामपर, भक्तिके नामपर जो लोग दम्भ करते हैं, वे तो साधक ही नहीं हैं। वे दम्भी हैं, दुराचारी हैं। वे मात्र अपने नीच स्वार्थ-सिद्धिके लिये जोश भरते हैं। उनकी चर्चा ही नहीं है। चर्चा उन साधकोंकी है जो असली हैं। वे सर्वथा अपनेको असमर्थ समझकर भगवान्‌के चरणारविन्दमें भर्ती हो जायँ, जहाँ अच्छे सदस्य और सबल उपचारक हैं, सजग प्रहरी हैं, जिनकी सुगठित देख-रेखमें कुपथ्यकी सम्भावना नहीं है, दुःसंगमें पड़कर अधोगामी होनेकी कल्पना नहीं, दुष्प्रवृत्तियोंका तो वहाँ प्रवेश ही नहीं है। कुपथ्यका बस एक ही उपाय है: सौंपना।

ENGLISH TRANSLATION

Consider a sick person who brings all his illnesses to an expert physician and says with candid faith, “I possess neither strength nor power. I even persist in harmful habits, but I have now entered your protection. Keep me under your care and treat me.” Hospitals have wards for patients. In the same way, at the lotus feet of God there is a vast ward where every sufferer from the disease of worldly existence may be treated. Only those who abandon every other refuge and truly wish to remain there receive a place. One must entrust oneself to God's hands, become dependent, and allow every claim to independent existence to end. The body is sick, the inner faculty impure, weaknesses remain, and the patient still follows an unhealthy regimen; yet when everything is surrendered, he becomes free from anxiety. He then has no opportunity to persist in harmful habits, for the nurses and attendants will not allow unhealthy things near him.

This ward has another remarkable feature. Before a patient is admitted, the doctor has no responsibility for him. Once admitted, however, the doctor removes the harmful habits and does not release him until the disease is cured. Giving oneself and being accepted do not happen twice. Once the offering has been received, God does not know how to abandon it. Yet an intense desire to become well is necessary. When the aspirant recognizes himself as powerless, weak, helpless, and possessing nothing, and seeks refuge in the almighty Lord, God grants him fearlessness.

Those who make a show in the name of love, knowledge, or devotion are not aspirants at all. They are hypocrites of bad conduct who work themselves into fervor only to fulfill low selfish ends. They are not under discussion here. We are speaking of genuine aspirants, who recognize their utter incapacity and enter the ward at the Lord's lotus feet. There are strong healers and vigilant guardians whose ordered care leaves no possibility of an unhealthy regimen, decline through bad company, or entry by corrupt tendencies. For harmful habits there is only one remedy: surrender.

ORIGINAL

अपने-आपको निर्बल मानकर जिन्होंने रामके बलका आश्रय कर लिया, उन्हींके बल राम होते हैं: “निर्बलके बल राम।” बलवान्के बल भी राम ही हैं, पर बलवान् रामके बलको मानता नहीं, वह अभिमानके बलको मानता है। पर जो निर्बल है, भगवान्का बल मानता है तो भगवान्का बल उसकी रक्षा करता है।

श्रीमद्भागवतकी प्रसिद्ध कथा है। एक गजराज अरण्यमें रहता था। बड़ा बलवान् यूथपति था। उसकी सेनामें हजारों बड़े भारी हाथी और हथिनियाँ थीं। सम्पूर्ण बृहद् वन उसके द्वारा आक्रान्त था। पूरे जंगलमें उसके पराक्रमका बोलबाला था। एक दिन गजराज सरोवरमें स्नान करने गया और स्नान करनेके बाद उसीमें खेलने लगा, क्रीड़ा करने लगा। इतनेमें ग्राहने उसका पैर पकड़ लिया। मदमत्त अभिमानी गजराजने सोचा, “क्या है यह जन्तु, अभी इसको पैरसे पीस डालता हूँ।” पाँव छुड़ानेकी बहुत चेष्टा की, पर ग्राहने छोड़ा नहीं। अन्य सभी हाथी-हथिनियाँ अपनेको बचाकर सहायताके उद्देश्यसे बाहर निकल आये। अब ज्यों-ज्यों ग्राह अन्दर खींचने लगा, गजराजका शरीर अन्दर जाने लगा, तब उसने अपने साथियोंको पुकारा। सभी साथी सहायतामें तत्पर हो गये। वे एककी पूँछको दूसरेकी सूँडमें पकड़-पकड़कर लम्बी कतार बना लिये। सभी जोर लगाकर बाहर खींचने लगे, लेकिन जलमें ग्राहका बहुत जोर था। गज और ग्राह दोनों पहलेसे शापग्रस्त थे। ग्राहका जोर इतना जबर्दस्त था कि उस मदमत्त हाथीके सभी साथी खिंचकर जलमें जाने लगे। “एकके पीछे सभी मर जायँ, यह तो कोई बुद्धिमानी नहीं है,” यह सोचकर सब अलग हो गये।

गजराजको ग्राह जलमें खींच ले गया। उसके पूर्णतया जल-निमग्न होनेमें एक झटकेकी देर थी। सूँड़ ही जलमें डूबनेसे बची हुई थी। उसीसे उसने कमलका पुष्प उठा लिया। जबतक अपना और अपने साथियोंका भौतिक बल था, तबतक भगवान्ने उसे बचाया नहीं। “नेक सर्‌यो नहिं काम,” उसका जरा-सा भी काम सरा नहीं। परन्तु जैसे ही “निर्बल है बल राम पुकार्‌यो,” गजराजने देखा कि कोई उपाय नहीं रहा, कोई सहायक नहीं, कोई आवाज सुननेवाला नहीं, कोई बचानेवाला नहीं, तब उसने नारायणको पुकारा। ‘नारा’ शब्द आधा ही उच्चरित हो पाया था कि भगवान् प्रकट हो गये: “आये आधे नाम निर्बलके बल राम।” वे आये और शरणागतको बचा लिया।

ENGLISH TRANSLATION

Those who recognize their weakness and take shelter in Rāma's strength find that Rāma becomes their strength: "Rāma is the strength of the weak." He is also the strength of the powerful, but the powerful person does not acknowledge Rāma's strength and relies upon pride instead. When a weak person recognizes God's strength, that divine strength protects him.

The Śrīmad Bhāgavata tells the famous story of Gajendra. He was the immensely powerful leader of a herd, surrounded by thousands of mighty elephants and cows. His prowess dominated the entire forest. One day he entered a lake to bathe and then began sporting in the water. A crocodile seized his foot. Intoxicated with power and pride, Gajendra thought, "What is this creature? I shall crush it beneath my foot." He struggled fiercely to free himself, but the crocodile would not let go. The other elephants escaped the water and then tried to help. As the crocodile pulled him inward, Gajendra called to his companions. They formed a long chain, each grasping another's tail with its trunk, and pulled with all their strength. But the crocodile was far stronger in the water. Both elephant and crocodile had previously been cursed, and the crocodile's power was so great that all Gajendra's companions began to be dragged into the lake. Thinking that it was senseless for everyone to die after him, they released their hold.

The crocodile dragged Gajendra beneath the water. Only one more pull was needed to submerge him completely. His trunk alone remained above the surface, and with it he lifted a lotus. So long as he relied upon his own physical power and that of his companions, the Lord did not rescue him. Not the smallest task was accomplished. When Gajendra saw that no remedy, helper, listener, or rescuer remained, he called to Nārāyaṇa. He had pronounced only the first half of the word when God appeared. "At half the Name came Rāma, the strength of the weak." The Lord came and saved the one who had taken refuge.

ORIGINAL

Braj Bhāṣā

इसी प्रकार द्रौपदीका दृष्टान्त देते हैं:

द्रुपद-सुता निर्बल भई ता दिन तजि आये निज धाम।

दुःशासन की भुजा थकित भई बसन-रूप भे श्याम॥

दुष्ट दुःशासन, जिसकी भुजाओंमें दस हजार हाथियोंका बल था, राजरानी द्रौपदीके केशोंको पकड़े हुए राजदरबारमें ले आया। अत्यन्त क्रूर-हृदय वह दुःशासन उस समय द्रौपदीकी लज्जा हरण करनेके लिये तत्पर था। कोई छुड़ानेवाला नहीं। अब वह बिचारी क्या करे? उसने पाण्डवोंकी ओर देखा। वे सिर नीचे किये हुए हथियार अलग रखे हैं। वे तो दे चुके, हार चुके, हजारों-हजारों बड़े-बड़े लोगोंके सामने। अत्यन्त बलवान् पाँच पतियोंके सामने उसका भयानक तिरस्कार होने लगा। भीष्म भी बैठे हुए थे, द्रोण भी बैठे हुए थे, लेकिन मानो सबका स्वत्व निकल गया हो। किसीने विरोध नहीं किया। इतना बड़ा जघन्य अपराध और सभी नीतिज्ञ, शास्त्रज्ञ, वीर, पराक्रमी मौन।

दुःशासन केश पकड़कर खींच लाया। द्रौपदीको नंगा करना चाह रहा है, इंगित कर रहा है, कपड़ेको अलग करके जाँघ दिखाकर कि इसपर बैठ जाओ। इस दुर्दशाके समय द्रौपदी निर्बल हो गयी। असहाय होकर पुकार उठी, "द्वारकावासिन्! गोविन्द! मैं कौरवोंके समुद्रमें डूब गयी, तुम आओ, आकर बचाओ!" तो "बसन-रूप भे श्याम," भगवान्का वस्त्रावतार हो गया, यह नवीन अवतार। भगवान्ने रजस्वला स्त्रीकी साड़ीका अवतार ले लिया, दे दिया शरणागतको अभयदान। "दुःशासनकी भुजा थकित भई," "दस हजार गज-बल घट्यो, घट्यो न दस गज चीर।" दुःशासनका बाहुबल परास्त हो गया। हारकर, लज्जित होकर, संकुचित होकर बैठ गया। "आये निर्बलके बल राम।"

"अपबल, तपबल और बाहुबल, चौथो बल है दाम। सूरकिशोर कृपा ते, सब बल हारेको हरिनाम।" ये जितने भी प्रकारके बल हैं, अपबल, तपबल, बाहुबल और धनबल, ये सब-के-सब श्यामसुन्दरकी कृपासे प्राप्त होते हैं। निःसाधनका साधन, निर्बलका बल है भगवान्का आश्रय, भगवान्का नाम। द्रौपदी पुकार उठी, भगवान् आ गये।

ENGLISH TRANSLATION

The same truth is illustrated by Draupadī:

“When Drupada's daughter became powerless that day, He left His own abode and came. Duḥśāsana's arms grew weary, for Śyāma became her garment.”

The wicked Duḥśāsana, whose arms possessed the strength of ten thousand elephants, seized Queen Draupadī by the hair and dragged her into the royal assembly. Cruel-hearted, he was intent upon stripping away her honor. No one would release her. She looked toward the Pāṇḍavas. Their heads were bowed and their weapons laid aside. They had wagered and lost before an assembly of thousands. Draupadī was horribly humiliated in the presence of her five immensely powerful husbands. Bhīṣma and Droṇa were seated there, but it was as though everyone had been stripped of selfhood and agency. Not one person protested. So monstrous a crime unfolded while all the experts in ethics and scripture, the heroes and mighty warriors, remained silent.

Duḥśāsana dragged her by the hair and sought to disrobe her. He pulled aside the cloth, exposed his thigh, and gestured for her to sit upon it. In this extremity Draupadī became utterly powerless and cried in helplessness, “Dweller in Dvārakā! Govinda! I am drowning in the ocean of the Kauravas. Come and save me!” Śyāma then became her garment. This was God's new incarnation as cloth. The Lord assumed the form of the menstruating woman's sari and granted fearlessness to the one who had taken refuge. Duḥśāsana's arms grew tired. “The strength of ten thousand elephants failed, but even ten yards of cloth did not diminish.” His physical strength was defeated, and he sat down exhausted, ashamed, and humiliated. Rāma had come as the strength of the weak.

“Personal strength, ascetic strength, and strength of arm, with wealth as the fourth, all these arise by the grace of youthful Sūra's Lord; when every strength is defeated, the divine Name remains.” Every kind of strength, personal power, austerity, physical might, and wealth, is obtained through Śyāmasundara's grace. The refuge and name of God are the practice of one who has no practice and the strength of one who has none. Draupadī called, and God came.

ORIGINAL Sanskrit

इसी प्रकार जब मनुष्य अपने पापोंसे, अपने बुरे स्वभावसे घबरा जाता है और उससे छूटनेके लिये रोता है, तब वह सबल भगवान्‌का विश्वास करके, उनकी कृपाका विश्वास करके उनके चरणोंमें गिर पड़े। जिस अवस्थामें है, उसी अवस्थामें वैसे ही पड़ा-पड़ा वहींसे विश्वासपूर्वक पुकार उठे, “हे नाथ! तुम बचाओ, दूसरा कोई नहीं है बचानेवाला।” इस प्रकार शरणापन्न होकर कृपाका आश्रय करना इतना बड़ा बल है कि इसके प्रभावसे भगवान्‌का बल, भगवान्‌की कृपाका बल, उसके रक्षणमें जुड़ जाता है, जुट जाता है। जब भगवान् किसीकी रक्षामें संलग्न हो जाते हैं तो वे अनहोनी कर देते हैं। भला किसीने आजतक सुना है कि कोई अपनी कनिष्ठिका अँगुलीपर छोटा-सा पहाड़ उठा ले, सात दिनतक उठाये रखे, उसे हिलनेतक न दे और उसके नीचे हजारों-हजारों प्राणी निर्भय होकर अपने प्राणोंकी रक्षा कर सकें? यह क्या है? “निर्बलके बल राम।”

व्रजवासियोंका बल एकमात्र श्यामसुन्दर। जब वनमें आग लगी तब गोपबालकोंने कहा, “अरे, डरे क्या? कन्हैया तो साथ है, अभी पी जायगा।” इसका नाम विश्वास है, मानो उसमें अविश्वासकी छाया ही नहीं। अविश्वासकी छाया जहाँ आती है, काम नहीं बनता और अपना बल जहाँ बीचमें आता है, वहाँ भी काम नहीं बनता।

भगवान्‌की कृपापर विश्वास हो और अपने दैन्यपर विश्वास हो तो यही परम साधन है, जो अपने-आप सारी साधनाको सम्पन्न करता है:

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।

भगवान्‌ने गीतामें उद्घोष किया, “सारी कठिनाइयोंको तुम मेरी कृपासे लाँघ जाओगे।” उनकी कृपा जब क्रियाशील होती है तब क्षणमात्रका भी विलम्ब नहीं होता। भगवान्‌का संकल्प और संकल्पकी सिद्धि, ये दोनों एककालीन होते हैं, एकके बाद एक नहीं। परन्तु सबसे बड़ी साधना है भगवान्‌का विश्वास। हम भगवान्‌पर विश्वास करके उनके ही हो जायँ। वे दीनबन्धु, अशरणशरण भगवान् अपनी कृपासे सारा काम कर देते हैं, असम्भवको सम्भव कर देते हैं। ईश्वर-शरणागति एवं भगवत्प्रपत्तिसे अधिक कोई साधन नहीं है।

ENGLISH TRANSLATION

Likewise, when a person becomes terrified by his sins and corrupt nature and weeps to be freed from them, he should trust in the almighty Lord and His grace and fall at His feet. In whatever condition he finds himself, let him remain there and call with faith, “Lord, save me. No one else can rescue me.” Taking refuge in grace is such a mighty power that the strength of God and of His mercy joins itself wholly to that person's protection. Once God engages Himself in protecting someone, He makes the impossible happen. Who has ever heard of a person lifting a mountain upon his little finger, holding it steady for seven days, and sheltering thousands of beings beneath it without fear? This is Rāma as the strength of the weak.

Śyāmasundara was the sole strength of the people of Vraja. When the forest caught fire, the cowherd boys said, “Why be afraid? Kanhaiyā is with us. He will swallow it at once.” That is faith, without even a shadow of distrust. Where a shadow of distrust enters, the work is not accomplished; nor is it accomplished where one's own strength intrudes.

Faith in God's grace, together with a true recognition of one's own lowliness, is the supreme practice that completes every other practice by itself. In the Gītā the Lord proclaims, “With your mind fixed on Me, by My grace you shall cross every difficulty.” When His grace becomes active, there is not even a moment's delay. God's resolve and the fulfillment of that resolve occur simultaneously, not one after the other. The greatest practice is trust in God. Let us trust Him and become His alone. The Lord, friend of the humble and refuge of the shelterless, accomplishes everything by His grace and makes the impossible possible. No practice surpasses surrender and complete self-offering to God.

ORIGINAL

अभिमान मीठा जहर है। यह सारी साधनाओंको खा जाता है, बड़ा घातक होता है। भागवतमें आया है, दैवी सम्पत्तिवान् पुरुष भी यदि ईश्वरका आश्रयी नहीं है तो उसके मनमें अभिमान पैदा हो जायगा कि हम सच बोलनेवाले, हम सदाचारी, हम इन्द्रियोंको रोकनेमें समर्थ, हम मनको रोकनेमें समर्थ हैं। यह साधनाका अभिमान बहुत तंग करता है। दृष्टान्त आता है कि नारदजीने अपनेको मान लिया, “हम कामविजयी हैं।” अभिमान हो गया उन्हें। भगवान् शङ्करके पास पहुँचे, बोले, “महाराज! भगवान्‌की दया हुई, एक घटना ऐसी हुई जिसमें दासकी विजय हो गयी।” शङ्करजी बड़े समझदार थे। उन्होंने नारदजीको समझाया, “यह सब बात नहीं करनी चाहिये। यह मनमें भी नहीं लानी चाहिये।” नारदजी बोले, “क्यों? इसमें बात क्या है? सच्ची घटना तो सुनाते हैं।” शिवजी बोले, “नारदजी! भगवान् विष्णुसे यह न कह दीजियेगा।” नारदजीने सोचा, “क्यों नहीं कहेंगे? अब जरूर कहेंगे,” और कहनेके लिये वैकुण्ठ जा पहुँचे।

जगज्जननी रमा अन्तःपुरमें बैठी थीं। नारदजीकी भगवान् विष्णुसे बड़ी घनिष्ठता थी, सहज प्रवेश था। वे अन्दर पहुँच गये तो रमाजी वहाँसे उठ गयीं। नारद बोले, “माताजी! क्यों उठ गयीं? हमारे मनमें स्त्री-पुरुषका कोई भेद नहीं। अभी-अभी यह घटना हुई,” और महाराजने वहाँपर कह दिया। भगवान्‌ने मनमें सोचा कि हमारे भक्तको रोग लग गया। सबसे बड़ा रोग अभिमानका होता है। भगवान्‌ने देखा कि नारदको रोगमुक्त करना पड़ेगा। उन्हें बन्दरका मुँह दे दिया। नारद कुपित हो गये और भगवान्‌तकको शाप दे बैठे। साधनाका और ज्ञानका यह अभिमान मनुष्यको बहुत तंग करता है।

विनम्रभावसे भगवान्‌की कृपापर विश्वास करके अपने दैन्यको भगवान्‌के सामने प्रकट करके रखें तो साधनासे जो काम नहीं होता, वह काम भगवान्‌की कृपासे अनायास हो जाता है। भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेना सबसे बड़ा निर्भय स्थान है, जहाँ जानेपर सब विघ्न अपने-आप दूर हट जाते हैं। इन्द्रियोंको एक बार जरा-सा रोककर भगवान्‌का आश्रय स्वीकार कर लें। कह दें, “प्रभो, हमारे वशकी बात नहीं, अब तुम सँभालो अपना।” जहाँ कहा, “तुम सँभालो,” उन्होंने आकर अपना अधिकार कर लिया। उनका अधिकार हो जानेके बाद किसकी ताकत है कि उनका अधिकार हटाकर अपना अधिकार कर ले? अपनेको उनके अधिकारमें दे दें, सौंप दें।

भगवान्‌में एक बड़ी सुन्दर बात है। वे हमारा आचरण नहीं देखते। वे देखते हैं कि यह रोगी अपनेको रोगी मानता है या नहीं, मेरी दवा लेना चाहता है या नहीं। बस, रोगीने अपनेको रोगी मान लिया और उनसे कह दिया, “प्रभो, आप ही मेरी चिकित्सा करें,” तो वे दवाकी पेटी लिये तैयार बैठे ही हैं।

ENGLISH TRANSLATION

Pride is sweet poison. It devours every spiritual practice and is exceedingly destructive. The Bhāgavata says that even a person endowed with divine qualities will become proud if he does not take refuge in God: “I speak the truth, I behave rightly, I can restrain my senses, I can control my mind.” Pride in one's discipline causes immense trouble. Nārada once concluded that he had conquered desire and became proud. He went to Lord Śiva and said, “Master, by God's grace an event occurred in which this servant was victorious.” The wise Śiva warned him, “You should not speak of this or even bring it into your mind.” Nārada objected that he was merely reporting a true event. Śiva then said, “Nārada, do not tell Lord Viṣṇu.” Nārada thought, “Why should I not? Now I shall certainly tell Him,” and went directly to Vaikuṇṭha.

The Mother of the universe, Ramā, sat in the inner apartments. Nārada was so intimate with Viṣṇu that he could enter freely. When he arrived, Ramā rose and left. Nārada said, “Mother, why did you leave? My mind makes no distinction between man and woman.” He then related his victory to the Lord. God thought, “My devotee has contracted a disease.” Pride is the greatest disease, and the Lord resolved to cure Nārada. He gave him a monkey's face. Nārada became furious and even cursed God. Such pride in practice and knowledge greatly torments a person.

If one humbly trusts God's grace and lays one's lowliness before Him, what formal practice cannot accomplish happens effortlessly through His mercy. Taking shelter at the Lord's feet is the safest refuge, where every obstacle withdraws by itself. Restrain the senses just a little and accept His protection. Say, “Lord, this is beyond me. Now take care of what is Yours.” The moment we ask Him to take care of us, He comes and assumes possession. Once He has done so, who has the power to displace His authority and claim us again? Place and surrender yourself beneath His dominion.

There is a beautiful quality in God: He does not inspect our conduct. He looks to see whether the patient recognizes his illness and wishes to take the medicine. Once the patient admits his sickness and says, “Lord, You alone must treat me,” the Lord is already waiting with His medicine chest.

ORIGINAL Sanskrit

उनकी नौका भव-समुद्रको तारनेके लिये तैयार है। वह थोड़ी देरके लिये भी कभी विराम नहीं लेती, अनवरत अनादिकालसे चलती रही है और चलती रहेगी। जो कोई उस नावपर बैठना चाहे, उसके लिये वे तैयार खड़े पुकार रहे हैं, “आ जा भाई, पार उतारते हैं। आ जाओ, आ जाओ, कोई भी, कैसा भी हो, आ जाओ।” “अहं संसारसागरात् समुद्धर्ता भवामि नचिरात्,” यह उनकी वाणी है, उनका उद्घोष है: “चलो, संसार-सागरसे बहुत जल्दी मैं पार कर दूँगा।” गीतामें भगवान्‌के शब्द हैं:

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।

भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(१२।७)

जो मुझमें ही मन लगा चुके, जो मुझपर अपनेको छोड़ चुके, जो मुझपर निर्भर हो गये, अभी तरे नहीं हैं, तरना चाहते हैं, तो मैं अवश्य तारता हूँ। बस मेरी नौकामें आकर बैठ जायँ। ‘नचिरात्,’ चुटकी बजाते ही, देर नहीं है। भला जो नावमें बैठा, पार हो गया। कहाँसे पार करोगे? कहा, इस मौतके समुद्रसे, “मृत्युसंसारसागरात्।” यह भगवान्‌की घोषणा है। बस किसी भी तरहसे एक बार नौकापर सवार हो जायँ। न तैरनेकी आवश्यकता होगी, न हाथ-पैर हिलानेकी, न पानी उलीचनेकी और न डाँड़ खेनेकी; न जीव-जन्तुओंका डर, न दम टूटनेका भय। अविलम्ब पार लग जाओगे।

इस प्रकार भगवान् निरन्तर हमें, बिना किसी शर्तके, बिना हमारा कुछ देखे-सुने, बिना हमारे पूर्व इतिहासपर विचार किये, स्वीकार करनेके लिये सतत् तैयार हैं। अहर्निश उनका दरबार शरणागतोंके लिये खुला है। कोई पुकारे, कभी भी पुकारे, कहीं भी पुकारे, वहीं, तभी, वैसे ही आनेको तैयार। यह सर्वोत्तम साधन है, सीधा सुगम मार्ग। इस मार्गपर चलनेके लिये मात्र विश्वासकी आवश्यकता है।

भगवान्‌पर विश्वास आते ही भोगका विश्वास हट जाता है और भोगका विश्वास हटते ही भोग-सुखकी सारी आस्था मिट जाती है। इसके बाद दुराचार रहता ही नहीं, बुराई रहती ही नहीं। जैसे सूर्यका प्रकाश तुरन्त अन्धकारको खा जाता है, उसी प्रकार भगवद्विश्वास भोग-विश्वासको रहने नहीं देता और भोग-विश्वास जहाँ जीवनसे हटा, वहाँ तुरन्त सभी दुर्गुण-दुराचार, जो भोग-कामनाको लेकर उत्पन्न होंगे, स्वतः समाप्त हो जायँगे।

सबसे बड़ी साधना है भगवान्‌का विश्वास एवं सबसे बड़ा गुण है साधककी निरभिमानिता, अभिमानशून्यता। दैन्यभावसे अशरणशरणकी शरणमें चले जाओ, जीवन धन्य हो जायगा।

ENGLISH TRANSLATION

His boat stands ready to carry us across the ocean of worldly existence. It never rests even briefly; it has sailed without interruption from beginningless time and will continue forever. He stands ready for anyone who wishes to board, calling, “Come, brother, I shall take you across. Come, whoever you are and whatever your condition.” His proclamation is, “I shall swiftly deliver you from the ocean of worldly existence.” In the Gītā the Lord says:

“For those whose minds have entered into Me, O Pārtha, I soon become the deliverer from the ocean of the mortal world.”

Those who have fixed their minds upon Him, entrusted themselves to Him, and become dependent upon Him may not yet have crossed, but if they wish to cross, He will certainly carry them. They need only sit in His boat. Nacirāt means without delay, in the time it takes to snap one's fingers. From what does He carry them? From this ocean of death. Board the boat once in any way at all. There will be no need to swim, move your hands and feet, bail water, or pull an oar. There will be no fear of creatures in the water or of losing your breath. You will reach the farther shore without delay.

Thus the Lord is forever ready to accept us without condition, without examining anything about us, and without considering our past history. Day and night His court remains open to those who seek refuge. Let anyone call, at any time and from any place, and He is ready to come there and then, accepting the caller just as he is. This is the highest practice and the straight, easy path. Only faith is required to walk it.

As soon as faith in God arises, faith in enjoyment departs. When reliance upon enjoyment leaves, all confidence in sensory pleasure disappears. Misconduct and evil then cease to remain. Just as sunlight immediately consumes darkness, trust in God permits no trust in enjoyment to remain. Once that trust in enjoyment is removed from life, all faults and misconduct born from the desire for pleasure end of themselves.

The greatest spiritual practice is faith in God, and the aspirant's greatest virtue is freedom from pride. With a humble heart take refuge in the refuge of the shelterless, and your life will be blessed.

CHAPTER 8

भगवान्की प्रेम-परवशता

The Lord's Subjection to Love

Source scan pages 78–86

ORIGINAL

Sanskrit

भगवान्की प्रेम-परवशता

आस्तिकताका सिद्धान्त है कि भगवान् अन्तर्यामी हैं। हमारे मनके अत्यन्त गुप्त स्थलमें, जहाँ बहुत बार हम भी नहीं पहुँच पाते, वहाँ भी भगवान् विराजित हैं और वहाँ जो कुछ हो रहा है, उसे वे निरन्तर देख रहे हैं। भगवान्से छिपकर या छिपाकर कोई काम हम कभी नहीं कर सकते। भगवान्को माननेवाला आस्तिक पुरुष कभी छिपकर पाप नहीं कर सकता। वह जानता है कि जिस गुप्त स्थानमें हम जो कुछ करते हैं, उसे देखनेवाले पहलेसे वहाँ उपस्थित हैं। हमारी तथा हमारे मनकी प्रत्येक क्रिया, हमारी चित्तवृत्तिकी प्रत्येक चेष्टा एवं प्रत्येक बात भगवान् जानते हैं। भगवान्के सामने हम कुछ भी छिपाकर नहीं रख सकते। जहाँ-जहाँ हम छिपाकर रखना चाहते हैं, वहाँ-वहाँ हमारी आस्तिकतामें कमी है अथवा ऐसा कहना चाहिये कि वहाँ-वहाँ हम भगवान्को नहीं मानते। आस्तिक पुरुष निरन्तर भगवान्के सामने रहता है तथा निरन्तर भगवान्को अपने सामने रखता है। यही सच्ची आस्तिकता है। जो ऐसा करता है, भगवान् उसकी आँखोंसे कभी ओझल नहीं होते। गीतामें भगवान् कहते हैं:

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(६।३०)

“जो मुझे सर्वत्र देखता है और सबको मुझमें देखता है, उससे मैं कभी दूर नहीं होता और वह कभी मुझसे दूर नहीं होता।”

ENGLISH TRANSLATION

The Lord's Subjection to Love

A basic principle of belief in God is that He dwells within all beings. He is present even in the most hidden chamber of our mind, a place we ourselves often cannot reach, and continuously sees everything occurring there. We can never act secretly or conceal anything from Him. A true believer cannot commit a hidden sin, for he knows that the witness of his most private acts is already present. God knows every action of ours and of our mind, every movement of our mental tendencies, and every thought. Nothing can be kept hidden before Him. Wherever we wish to conceal something, our faith is deficient; indeed, at that point we do not truly acknowledge God. A believer constantly lives before the Lord and keeps the Lord before himself. This is genuine faith. God never disappears from the sight of one who lives this way. In the Gītā He says:

“One who sees Me everywhere and sees everything in Me is never lost to Me, nor am I ever lost to him.”

ORIGINAL Sanskrit

केवल आस्तिकता मनुष्यमें आ जाय तो उसके सारे काम बन जाते हैं। आस्तिकताका बहुत बड़ा आदर्श प्रह्लाद हैं। यद्यपि अबतक कितने ही आस्तिक हुए हैं, परन्तु प्रह्लादकी आस्तिकता अत्यन्त महान् थी। किसी अवस्थामें भी प्रह्लादके मनमें यह विचार नहीं आया कि यहाँ मेरे रक्षक भगवान् नहीं हैं। एक बार हिरण्यकशिपुने उन्हें मारनेके लिये बड़े भारी जहरीले नागोंके सामने डाल दिया, परन्तु प्रह्लादके मनमें आया कि जो भगवान् मेरे अन्दर हैं, वे ही इन नागोंके अन्दर भी हैं; फिर इनका विष मुझपर कैसे असर करेगा? यद्यपि यह बात व्यवहारसे परे की है, परन्तु प्रह्लादकी आस्तिकताके कारण साँपोंके डँसनेपर भी वे नहीं मरे। जहर पीनेपर एवं अग्निमें डालनेपर भी प्रह्लाद जीवित रहे। कृत्याके द्वारा प्रहार करनेपर भी उनका विनाश नहीं हुआ। प्रह्लादने सब जगह, सब समय अपने भगवान्‌को देखा और उन्हें रक्षकरूपमें उपस्थित पाया।

अन्तमें प्रह्लादको गोदमें बैठाकर हिरण्यकशिपुने समझाते हुए पूछा, "बेटा! तुम इतना बढ़-बढ़कर बोलते हो, क्या तुम्हें डर नहीं लगता? सारे देव और जगत् हिरण्यकशिपुके नामसे त्रस्त हैं और तुम जरा भी नहीं डरते। तुम्हारे पास कितना बल है?" प्रह्लादने बड़ी शान्ति तथा सरलतासे सहज भाषामें कहा, "पिताजी! जिसके बलसे आप बलवान् हैं, जिसके बलसे सारा जगत् बलवान् है एवं जहाँसे सारा बल आता है, उसीके बलसे मैं बलवान् हूँ तथा बोलता हूँ।" यह सुनकर हिरण्यकशिपुके मनमें रोष आ गया। उसने पूछा, "जिसके बलसे तू इतना इतराता है, वह तेरा भगवान् कहाँ है?" प्रह्लादने उत्तर दिया, "वे कहाँ नहीं हैं? आपमें हैं, मुझमें हैं, बाहर हैं, भीतर हैं, रात्रिमें हैं, दिनमें हैं, संध्यामें हैं, पशुमें हैं, पक्षीमें हैं, जड़में हैं, चेतनमें हैं, वृक्षमें हैं, पहाड़में हैं। वे सब जगह हैं, सब समय हैं।"

प्रह्लादकी आस्तिकता अनुपम थी। इतनी श्रद्धा एवं विश्वासके साथ जब उन्होंने ये बातें कहीं तो हिरण्यकशिपुका क्रोध और बढ़ गया। उसने उन्हें खम्भेसे बाँध दिया और पूछा, "बता, तेरा वह भगवान् इस खम्भेमें है?" प्रह्लादने, जैसे कोई उन्हें दीख रहा हो, निर्भयता और बड़ी सरलताके साथ उत्तर दिया, "हाँ, हैं।" यह सुनते ही हिरण्यकशिपुने बड़े जोरसे खम्भेपर घूँसा मारा। खम्भा फट गया, बड़े जोरकी आवाज हुई और दिशाएँ दहल गयीं। सारा दरबार थर्रा उठा। उस खम्भेसे आधा नर एवं आधा सिंहका शरीर धारण किये बड़ा विकराल रूप निकला, जिसके चारों ओर सैकड़ों हाथ थे तथा दो क्रूर आँखोंसे अङ्गारे निकल रहे थे। उनके क्रोधभरे मुखको देखकर सारी सभा संत्रस्त हो गयी। भगवान् प्रकट हो गये तो रिपुका दैत्य-दल भागने लगा।

प्रश्न हो सकता है कि भगवान् खम्भेसे क्यों प्रकट हुए? भगवान् तो सब जगह हैं ही, वे चाहे जहाँसे प्रकट हो सकते थे। इसका उत्तर देते हुए भागवतकार कहते हैं:

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं

व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः।

अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्

स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्॥

(श्रीमद्भागवत ७।८।१८)

> क्योंकि उनके सेवक प्रह्लादके मुखसे निकल गया था कि वे खम्भेमें भी हैं, अतः उनकी बातको प्रत्यक्षरूपसे सत्य कर दिखानेके लिये ही वे खम्भेमेंसे प्रकट हुए। यह प्रह्लादकी महान् आस्तिकताका परिचायक है।

ENGLISH TRANSLATION

If genuine faith alone enters a person's life, all his affairs are accomplished. Prahlāda is its great exemplar. Many have believed in God, but his faith was extraordinary. In no circumstance did he imagine that the protecting Lord was absent. When Hiraṇyakaśipu cast him among enormous venomous serpents, Prahlāda thought, "The God within me is also within these snakes. How can their venom affect me?" This transcends ordinary experience, yet because of his faith he survived their bites. He remained alive after drinking poison, being cast into fire, and being attacked by a destructive spirit. Everywhere and always he saw his Lord present as protector.

At last Hiraṇyakaśipu seated Prahlāda upon his lap and asked, "Son, you speak so boldly. Are you not afraid? All the gods and the whole world tremble at my name, yet you show no fear. What strength do you possess?" Prahlāda quietly and simply replied, "Father, I am strong and speak through the same power that makes you strong, makes the whole world strong, and is the source of every strength." Enraged, Hiraṇyakaśipu demanded, "Where is this God whose strength makes you so proud?" Prahlāda answered, "Where is He not? He is within you and me, outside and inside, in night, day, and twilight, in animals and birds, in the inert and conscious, in trees and mountains. He is everywhere at every time."

His faith was incomparable. Hiraṇyakaśipu's rage intensified. He bound Prahlāda to a pillar and asked whether God was present there. With the simplicity of one who could see Him, Prahlāda fearlessly answered yes. Hiraṇyakaśipu struck the pillar with his fist. It split with a terrible sound that shook every direction and made the whole court tremble. From it emerged a fearsome form, half man and half lion, surrounded by hundreds of arms and with embers streaming from two fierce eyes. The assembly quailed before His wrathful face, and when the Lord appeared, the hostile demons fled.

Why did God emerge from the pillar? Since He is everywhere, He could have appeared from anywhere. The Bhāgavata explains:

"To make true the words spoken by His servant, and to demonstrate His own all-pervading presence within every being, He assumed a wondrous form never seen before and appeared in the assembly from the pillar, neither beast nor man."

Prahlāda had declared that the Lord was also in the pillar. To demonstrate his servant's words as visibly true, God emerged from that very pillar. This reveals the greatness of Prahlāda's faith.

ORIGINAL
Sanskrit

किसी भी समय प्रह्लादके मनमें यह नहीं आया कि भगवान् नहीं हैं, इसलिये उन्होंने भगवान्से कभी कुछ माँगा नहीं। हमलोग दुःखनाशके लिये या किसी वस्तुकी प्राप्तिके लिये भगवान्को भजते हैं। यद्यपि यह भजन ही है, पर यह वास्तविक भजन या वास्तविक भक्ति नहीं है। जब भगवान्ने प्रह्लादसे कहा, “बेटा प्रह्लाद! कुछ माँगो,” तब उन्होंने उत्तर दिया, “महाराज! स्वामी और सेवक, आपमें और मुझमें माँगनेकी बात कैसे हुई? आप कैसे कह रहे हैं कि तुम कुछ माँगो और कुछ ले लो? जो ले लेता है, वह क्या सेवक है?”

नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः।

यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्॥

(श्रीमद्भागवत ७।१०।४)

वह तो लेन-देन करनेवाला व्यापारी है। एक वस्तु दी और उसके बदलेमें मूल्य ले लिया। वणिक् अर्थात् व्यापार करनेवाला, लेन-देन करनेवाला; वह व्यापारी है, भक्त नहीं, “न स भृत्यः स वै वणिक्।” प्रह्लादके मनमें कभी कुछ माँगनेकी बात नहीं आयी। क्यों नहीं आयी? वे परम आस्तिक होनेके कारण जानते हैं कि सब जगह भगवान् हैं, सबमें भगवान् हैं, सारी क्रियाओंमें भगवान् हैं। भगवान्के सिवा कहीं कुछ है नहीं और होता नहीं। ऐसी अवस्थामें भगवान्से क्या माँगें?

यह परम आस्तिकताकी बात हुई, किन्तु इससे पहले भी वास्तवमें भगवान्को माननेवाला उनके सामने इसी रूपमें देखा जाता है कि, “महाराज! हम कहें क्या? आप तो हमारे अन्तरकी बात जाननेवाले हैं।” किन्तु भगवान् बड़े क्षमाशील हैं, बड़े कोमल-स्वभाव हैं। वे भक्तके मुखसे उसके हृदयकी बात सुनना चाहते हैं। हृदय दो तरहका होता है। एक हृदय पश्चात्तापसे भरा तथा दूसरा माधुर्यरससे भरा। ये भक्तिके दो स्तर हैं। जहाँ भक्ति नहीं और भक्तिके विरोधी कार्य ही जीवनमें बने, तथा उन कार्योंकी स्मृतिसे मनमें पश्चात्ताप हो रहा हो, वह भक्त अपने मनको भगवान्के सामने खोलकर रखता है तथा कहता है, “महाराज! इस मनमें काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर, दुनियाके सारे दोष, अघ और पाप भरे हैं। जीवनमें ऐसा कोई काम मुझसे हुआ ही नहीं, जिसके लिये कहा जाय कि मैं पापसे शून्य हूँ।” पापका मूल कामना है। जहाँ भी जीवनमें कामना है, वहाँ पाप है। कामनाशून्य कर्म ही निष्पाप कर्म होता है। वह कहता है, “मेरे जीवनमें मैंने अच्छा काम भी यदि कभी किया हो तो वह भी कामनायुक्त है।”

भक्तलोग कहते हैं कि भगवान्के लिये सुरक्षित हृदयके परम और दिव्य आसनपर किसी भोगको लाकर बैठा देना भगवान्का तिरस्कार करना है। जैसे हमारे घरमें कोई सम्मान्य अतिथि या पूज्य भक्त आया हो, उसके बैठनेके लिये आसन बिछा हो, उस आसनपर लाकर हम भंगीका झाड़ू रख दें तो जिस प्रकार उसका प्रत्यक्ष तिरस्कार है, उसी प्रकार भगवान्के बैठनेके स्थानपर, प्रेमके उस आसनपर, हम यदि किसी विषय या भोगको बैठा देते हैं तो उसे गन्दा कर देते हैं। यह भगवान्का तिरस्कार है।

ENGLISH TRANSLATION

Prahlāda never once thought that God was absent, and therefore he never asked Him for anything. We worship God to end suffering or obtain some object. This is worship, but it is not true worship or true devotion. When the Lord told him to ask for a boon, Prahlāda replied, "Master, how can bargaining arise between master and servant, between You and me? How can You tell me to ask and receive? Can one who accepts payment truly be a servant?"

"O compassionate teacher of all, it could not be otherwise. One who hopes to receive blessings from You is not a servant but a merchant."

Such a person conducts an exchange, giving one thing and receiving its price. A vaṇik is a trader, not a devotee. Prahlāda never thought of asking because his perfect faith knew that God is everywhere, within everyone and every action. Nothing exists or occurs apart from Him. In such a state, what could one ask from God?

That is perfect faith. Even before reaching it, a genuine believer stands before Him thinking, "Lord, what can I say? You already know my heart." Yet God is forgiving and tender. He wishes to hear the devotee speak what lies within. There are two kinds of devotional heart: one filled with repentance and another with sweet rasa. These are two levels of devotion. A person whose life has been filled with deeds opposed to devotion, and whose memory of them now produces remorse, opens his mind before God and says, "Lord, this mind is filled with lust, anger, delusion, greed, pride, envy, and every fault and sin in the world. I have performed no act by which I could claim to be free of sin." Desire is the root of sin; wherever desire remains in life, sin remains. Only action free from desire is sinless. Such a person admits, "Even if I have ever done something good, it too was driven by desire."

Devotees say that bringing an object of enjoyment onto the supreme divine seat reserved for God in the heart is an insult to Him. Suppose an honored guest or revered devotee comes to our home and we prepare a seat, then place a sweeper's broom upon it. That would be a direct insult. In the same way, if we install a sensory object or enjoyment upon the seat of love reserved for God, we defile it and dishonor Him.

ORIGINAL Sanskrit

भक्तलोग डरते हैं कि भगवान्के स्थानपर किसी भी प्रकारकी आकाङ्क्षा हमारे हृदयमें न जग जाय। उन्हें भय है कि कहीं मोक्षकी भी कामना आ गयी तो उस आसनपर कलङ्क लग गया:

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे।

शङ्कराचार्य कहते हैं, "भगवती! न तो मेरे मनमें मोक्षकी आकाङ्क्षा है, न वैभवकी। तुम्हारे स्थानमें तुम्हीं रहो।" चैतन्यमहाप्रभुने कहा है:

Language: Sanskrit

न धनं न जनं सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि।।

"हे जगदीश्वर! मेरे मनमें न धनकी कामना है, न जनकी, न सुन्दर कविताकी; अपितु जन्म-जन्ममें आपकी अहैतुकी भक्ति मुझे प्राप्त होती रहे।"

उन्होंने यह नहीं माँगा कि मेरा जन्म होना बन्द हो जाय, क्योंकि यह भी कामना है। भगवान्के स्थानपर यदि अपने किसी सुखकी इच्छा अथवा मोक्षकी भी कामना आ गयी तो भक्त समझता है कि मलिनता आ गयी। अर्थात् मोक्षमें भी 'अहं'के बन्धनकी चिन्ता है। 'अहं'में यदि बन्धन नहीं है तो मोक्ष किस बातका? मुक्ति सदा किसी बन्धनकी अपेक्षा रखती है। जहाँ मनको बन्धनसे मुक्त करनेकी वासना या कामना है, वहाँ मलिनता है। भक्त डरते हैं कि हमारे मनमें कामना न पैदा हो जाय और विषय-कामनाको तो वे बहुत बड़ा अपराध, पाप मानते हैं। जरा-सी भी कामना आ जाती है तो वे समझते हैं कि हमारे समान बुरा कौन है:

Language: Braj Bhāṣā

मो सम कौन कुटिल खल कामी।

जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नमकहरामी।।

सूरदास-सरीखे महात्मा पुरुष भी कहते हैं, "भगवान्! मेरे समान कुटिल, खल तथा कामी दूसरा कौन होगा? मैंने आपको भुला दिया।" भगवान्की जरा-सी देरकी विस्मृति भी उनके मनमें भयानक पाप-सी लगने लगती है। भगवान्की स्मृति क्षणभरके लिये भी यदि चित्तसे हट जाती है तो भक्त उसे महापाप या अपराध मानते हैं। भक्तका भाव यह है कि हमारे जीवनमें ऐसी कोई स्थिति आयी ही नहीं जब हम निष्पाप रहे हों। "परन्तु भगवन्! आप अन्तर्यामी हैं। आप हमारे मनकी प्रत्येक स्थितिको पहचानते हैं। आप हमारे बुरे कृत्यों तथा स्वभावकी ओर न देखें। आप अपने शील-स्वभाव तथा विरदकी ओर देखें और हमें उबार दें।"

इस प्रकार एक तो पश्चात्तापका हृदय होता है और दूसरा मधुरिमासे भरा भक्तका हृदय, जहाँ कभी किसी प्रकारकी कामना जागती ही नहीं। यदि कामना जागी भी तो केवल भगवान्को प्रसन्न देखनेकी। इस हृदयमें उबरनेकी प्रार्थना नहीं होती। वहाँ निरन्तर यह प्रार्थना होती है कि क्षणभरके लिये भी आपका यह मधुर स्मरण चित्तसे न हट जाय। स्मरणके कई प्रकार हैं, जैसे भयसे, किसी वस्तुको प्राप्त करनेकी कामनासे, कौतूहलसे,

आवश्यकतासे, किसी वस्तुके लोभसे, किसीसे वैर होनेसे आदि। परन्तु सर्वोत्तम स्मरण वह है, जिसके होनेसे चित्तमें मिठासका अनुभव हो तथा अत्यन्त मधुर रस चित्तमें अपने-आप बहने लगे। इस प्रकारकी मधुर स्मृति सुधाभरी स्मृति है, जिसमें मधुर अमृत भरा है। बस ऐसी स्मृति निरन्तर चित्तमें बनी रहे, यही उस मधुर हृदयकी प्रार्थना होती है। यह बड़ी ऊँची वस्तु है। यह प्रार्थना जहाँ होती है, वहाँ सारी सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

ENGLISH TRANSLATION

Devotees fear that no desire of any kind should arise in the heart upon God's seat. Even a longing for liberation would stain that throne:

“I do not long for liberation, nor do I desire worldly existence or splendor.”

Śaṅkarācārya says, “O Goddess, I desire neither liberation nor magnificence. You alone remain in the place that belongs to You.” Caitanya Mahāprabhu says:

“O Lord of the universe, I desire neither wealth, followers, beautiful women, nor exquisite poetry. May causeless devotion to You remain mine birth after birth.”

He does not ask that rebirth should cease, for that too is a desire. If a wish for personal pleasure or even liberation enters the place reserved for God, the devotee considers that impurity has arisen. Even liberation assumes that the ego is bound; if the ego were not bound, what would require release? Liberation always presupposes bondage. Wherever there remains a desire to free the mind from bondage, impurity remains. Devotees fear the arising of any desire, and regard desire for sensory objects as a grave offense and sin. If the slightest desire appears, they ask:

“Who is as crooked, wicked, and lustful as I? I forgot the very One who gave me this body. What an ungrateful traitor I am!”

Even a great soul like Sūradāsa says, “Lord, who else is as crooked, wicked, and lustful as I? I have forgotten You.” Forgetting God even briefly seems to such devotees like a dreadful sin. If remembrance of Him leaves the mind for a moment, they regard it as a great transgression. Their feeling is, “There has never been a condition in my life in which I was free of sin. Yet Lord, You dwell within and know every state of my mind. Do not look toward my evil deeds and nature. Look instead upon Your own gracious character and eternal renown, and deliver me.”

One heart is thus filled with repentance; the other is a devotee's heart filled with sweetness, where no desire of any kind awakens. If a longing does arise there, it is only to see God pleased. Such a heart does not pray for deliverance. It continually prays that sweet remembrance of Him may not leave the mind even for an instant. Remembrance may arise from fear, the wish to obtain something, curiosity, need, greed, or enmity. The highest remembrance, however, makes the mind taste sweetness and allows exceedingly sweet rasa to flow within it spontaneously. Such memory is filled with nectar. The prayer of the sweet heart is simply that this remembrance remain forever. This is a very exalted state, and where such a prayer exists, every perfection has already been attained.

ORIGINAL

अतः हमलोगोंको भगवान्के कोमल हृदय, सुहृदयता, अहैतुक दया, करुणामयता तथा दयालु स्वभावपर विश्वास करके निर्भय होकर उनके सामने अपने पापोंको प्रकट कर देना चाहिये। भगवान्से कहना चाहिये, "भगवान्! जितने पाप अबतक हुए हैं, उनसे तो आप हमारा उद्धार करें ही; भविष्यमें भी हमारे मनमें किसी प्रकारकी पाप या बुराईकी कामना न जागे, इसकी भी सँभाल आप रखें।" यदि हमारे मनमें ठीक विश्वास और अपनी बुराइयोंके लिये पश्चात्ताप है तो हमारी प्रत्येक बातको भगवान् मान लेंगे। स्वाभाविक बात है कि जिसके स्वभावमें दयालुता होती है, वह न्याय भी नहीं देखता। भगवान् न्यायकारी और दयालु हैं। दोनों ही बातें ठीक हैं। परन्तु भगवान्की दयालुता न्यायभरी है और न्याय दयासे परिपूर्ण है। इसलिये उनकी दयामें अन्याय नहीं होता।

भगवान् तो दया ही करते हैं। जैसे माँके सामने बच्चा रोने लगता है तो बच्चा क्या अपराध करके आया है, किस प्रकारका कुपथ्य करके आया है, इसे माँ भूल जाती है। उसके रोनेको देखकर वह उसे गोदमें लेकर फुसलाने, हाथ फेरने और सहलाने लगती है, जिससे उसका रोना बन्द हो जाय और वह सुखी हो जाय। इसी प्रकार हमें भगवान्की दयालुतापर विश्वास करना चाहिये। हमें मनमें निश्चय करना चाहिये कि भगवान् चाहे दण्ड भी देंगे तो उसमें उनकी दया भरी रहेगी। एक व्यक्ति किसीको दुःखी बनानेके लिये चाकूसे काटता है, पर डॉक्टर किसीको चाकूसे उसका दुःख हरनेके लिये काटता है। दोनों काटते हैं, परन्तु भगवान्का दण्ड डॉक्टरके ऑपरेशनकी भाँति नीरोग करनेके लिये है, उसे दुःखी देखकर सुखी होनेके लिये नहीं।

ENGLISH TRANSLATION

We should therefore trust in the Lord's tender heart, friendship, causeless mercy, compassion, and kindness, and fearlessly reveal our sins before Him. We should say, "Lord, deliver us from all the sins committed until now, and take care that no desire for sin or evil ever arises in our minds in the future." If our faith is genuine and we sincerely repent of our faults, God will accept every plea. It is natural for a compassionate person not to insist upon strict justice. God is both just and merciful. His mercy is filled with justice and His justice with mercy, so there is no injustice in His compassion.

God does nothing but show mercy. When a child cries before his mother, she forgets what wrong he has done or what harmful thing he has consumed. Seeing him weep, she takes him into her lap, consoles and strokes him, and tries to make him happy. We should trust God's mercy in the same way. Even if He disciplines us, His compassion fills the discipline. One person cuts another with a knife to cause pain; a doctor cuts with a knife to remove pain. Both cut, but God's punishment resembles the doctor's operation. It is given to restore health, never to enjoy another's suffering.

ORIGINAL

बच्चेको माँ यदि चपत लगाती है तो उसके हृदयमें बच्चेके प्रति कहीं द्वेष नहीं होता। बच्चेको दुःखी देखकर माँ सुखी हो जाय, यह तो माँके हृदयकी कल्पनामें भी नहीं आ सकता। उसी प्रकार भगवान् यदि हमें दण्ड देंगे तो हमारे परम कल्याणके लिये ही होगा। सच्ची बात तो यह है कि भक्त यही समझेगा कि भगवान् दण्ड देना जानते ही नहीं। वे हमारे माता-पिता, स्वजन और स्वामी हैं। जैसे माता-पिता बच्चेके दुःखको नहीं देख सकते, स्वामी अपनी पत्नीके दुःखको नहीं देख सकता, मित्र मित्रके दुःखको नहीं देख सकता, उसी प्रकार भगवान् हमारे दुःखको देख नहीं सकते। अतः वे दण्ड देंगे कैसे? हमारा दुःख उनका दुःख है। यह स्वाभाविक है कि स्नेही तथा स्नेहास्पदका सम्बन्ध होनेपर एकका दुःख दूसरेका दुःख हो जाता है। भगवान् अपने प्रेमी भक्तको दुःखी देखकर सुखी नहीं हो सकते। इसलिये प्रेमी अपने मनमें विश्वास करता है कि भगवान् दुःख कभी दे ही नहीं सकते। हमें दुःख देनेका अर्थ है उनका अपने-आप दुःख सहना।

राजाके स्वरूपमें भगवान् रामने सीताका त्याग कर वनवास तो दे दिया, पर स्वामीके रूपमें सीताके वनवासका दुःख श्रीरामका दुःख बना रहा। उत्तररामचरितमें इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। राजा राम नहीं, सीताके पति राम निरन्तर सीताके दुःखसे दुःखी हैं। सीताका दुःख उनका दुःख था। उन्होंने सीताको वनवास देकर अपनेको वनवास दिया। इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने सीताको परायी समझकर अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेके लिये निकाल दिया। सीताको निकालनेका अर्थ था अपनेको निकाल देना। सीताका दुःख उनका अपना दुःख है। इस प्रकार भगवान् अपने भक्तके दुःखको अपना दुःख, भक्तके संकटको अपना संकट तथा भक्तकी पीड़ाको अपनी पीड़ा मानते हैं।

जहाँ वैर या द्वेष हो, वहाँ विरोधीके विनाशमें सुख होता है, उसके दुःखमें सुख मिलता है; किन्तु जहाँ वैर नहीं, प्रेम, स्नेह और अनुराग है, वहाँ अपने प्रेमीका मरना सुनकर दुःख होता है। हमारे पुत्र, भाई, पति या पत्नीको चोट लगनेकी बात सुनकर मनमें बड़ा दुःख होता है, तो हम उन्हें चोट कैसे पहुँचायेंगे, मारेंगे या दुःख देंगे? अतः सिद्धान्त है कि स्नेहमें स्नेहास्पदका दुःख स्नेहीका अपना दुःख होता है तथा द्वेष या वैरमें वैरीका दुःख अपना सुख होता है। इसमें बड़ा अन्तर है। भगवान् किसीके भी वैरी नहीं हैं। जहाँ प्रेमी भक्त हो, वहाँ भगवान् उसके हृदयमें रहते हैं और अपने हृदयमें उसे रखते हैं। उसके दुःखसे स्वयं द्रवित हो जाते हैं। जब भगवान् राम सीताको वनमें खोजते फिरे, वे इसलिये रोये कि सीता रो रही थीं। सीताका रोना श्रीराममें प्रतिफलित हो गया। भगवान् किसीके वैरी नहीं और प्रेमीकी तो आत्मा ही हैं। प्रेमीको वे सदा अपने हृदयमें रखते हैं। वे सबके अन्दर हैं।

ENGLISH TRANSLATION

If a mother slaps her child, there is no hatred for him in her heart. She cannot even imagine becoming happy at his pain. In the same way, any discipline God gives is solely for our supreme welfare. In truth, the devotee believes that God does not even know how to inflict punishment. He is our parent, beloved relation, and Lord. Parents cannot bear their child's suffering, a husband cannot bear his wife's, and a friend cannot bear a friend's. How then could God punish us? Our suffering is His suffering. When lover and beloved are joined by affection, the pain of one naturally becomes the pain of the other. God cannot be pleased by seeing His loving devotee suffer. The lover therefore trusts that the Lord can never truly give pain, because doing so would mean suffering that pain Himself.

As king, Lord Rāma sent Sītā into exile; as her husband, however, the pain of her banishment remained His own. The Uttararāmacarita depicts this beautifully. Not King Rāma but Rāma, Sītā's husband, continually suffers her sorrow. By exiling her He exiled Himself. He did not cast her out as a stranger merely to demonstrate His own innocence. To send Sītā away was to send Himself away. Her pain was His. Thus God regards the devotee's sorrow, crisis, and anguish as His own.

Where there is enmity or hatred, one delights in an opponent's destruction and suffering. Where there is love, affection, and attachment, news of the beloved's death brings grief. If we suffer upon hearing that our child, sibling, spouse, or loved one has been hurt, how could we deliberately strike, kill, or pain them? The principle is that in affection the beloved's pain becomes the lover's own, while in hatred an enemy's pain becomes one's pleasure. God is no one's enemy. He dwells in the loving devotee's heart and keeps that devotee within His own. The devotee's sorrow melts Him. When Rāma wandered the forest searching for Sītā, He wept because she was weeping; her grief was reflected within Him. God is no one's enemy and is the very Self of His lover. He always keeps the lover within His heart and dwells within everyone.

ORIGINAL Sanskrit

गीतामें भगवान् कहते हैं कि सारे प्राणियोंमें समान रूपसे मैं विराजित हूँ। न तो मेरा कोई द्वेषी है और न कोई विशेष प्रिय। मैं सबमें समान हूँ, किन्तु जो भक्तिपूर्वक मुझे भजते हैं, वे मेरे हैं और उनका मैं हूँ। इसलिये जहाँ प्रेम है, भक्ति है, वहाँ भगवान् प्रेमीमें हैं और प्रेमी भगवान्में है:

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९।२९)

श्रीमद्भागवतमें भगवान्की वाणी है कि साधु भक्त मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ, क्योंकि वे मेरे सिवा और किसीको नहीं जानते तथा मैं इनके सिवा किसीको नहीं जानता। इसलिये वे मुझमें और मैं उनमें हूँ। जहाँ यह सम्बन्ध है, वहाँ भगवान् दण्ड, दुःख या पीड़ा कैसे देंगे? जैसे व्यक्ति रोग-विनाशके लिये अपने-आपको कड़वी दवा देता है तथा अङ्ग कटवा लेता है, इसी प्रकार भगवान्का भक्तके प्रति प्रेमसे भरा हुआ व्यवहार होता है। उसमें कहीं द्वेष नहीं होता। अतः भक्तको कभी यह नहीं सोचना चाहिये कि भगवान् मुझे दण्ड देंगे। मेरी आँखोंके आँसू क्या उनकी हँसीका कारण बनेंगे? मेरी आँखोंमें आँसू आयेंगे तो पहले उनके आयेंगे। मैं रोऊँ और वे हँसते रहें, यह बड़ी विचित्र बात है।

हिडिम्बा राक्षसीसे उत्पन्न भीमसेनके पुत्र घटोत्कचने रात्रिके समय इतना भयानक युद्ध किया कि सारा कौरवदल एकदम विचलित हो गया। कर्णके पास इन्द्रकी दी हुई शक्ति थी, जो अर्जुनको मारनेके लिये पर्याप्त थी और केवल एक ही बार काममें आ सकती थी। कर्णने उसे अर्जुनके लिये रख छोड़ा था, पर उस रात्रि घटोत्कचने इतना भयानक युद्ध किया कि सारे कौरव वीर बिल्कुल घबरा गये। दुर्योधनने कर्णसे कहा कि उस शक्तिको छोड़कर जल्दी घटोत्कचको मार दो। कर्णने कहा, “भैया! शक्तिसे घटोत्कचको मार दूँगा तो अर्जुनको कैसे मारूँगा?” दुर्योधन बोला, “यह घटोत्कच आज ही रात हम सबको मार डालेगा तो शक्ति फिर क्या काम आयेगी? यह इतना भयंकर युद्ध कर रहा है कि तुम और हम बचेंगे नहीं।” तब हारकर कर्णने घटोत्कचपर शक्ति छोड़ दी। उसके आघातसे वह मर गया।

ENGLISH TRANSLATION

In the Gītā the Lord says that He dwells equally in every being. No one is hateful or especially dear to Him. He is the same in all, yet those who worship Him with devotion are His and He is theirs. Where love and devotion exist, God abides in the lover and the lover in God:

“I am equal toward all beings. None is hateful or dear to Me. Yet those who worship Me with devotion dwell in Me, and I dwell in them.”

In the Śrīmad Bhāgavata the Lord says that saintly devotees are His heart and He is theirs, for they know no one apart from Him and He knows no one apart from them. They dwell in Him and He in them. Where such a relationship exists, how could God inflict punishment, sorrow, or pain? A person takes bitter medicine or allows a limb to be amputated to destroy disease. God's dealings with His devotee are similarly filled with love and contain no hatred. The devotee should never think that God seeks to punish him. Could tears in my eyes cause Him to laugh? If tears come to me, they will first come to Him. It would be extraordinary for me to weep while He continued laughing.

During the night battle, Ghaṭotkaca, Bhīmasena's son by the rākṣasī Hiḍimbā, fought so terribly that the entire Kaurava army was thrown into confusion. Karṇa possessed the divine missile given by Indra, powerful enough to kill Arjuna but usable only once. He had reserved it for Arjuna. That night, however, Ghaṭotkaca's assault terrified every Kaurava warrior. Duryodhana ordered Karṇa to release the missile and kill him immediately. Karṇa protested, “If I use it on Ghaṭotkaca, how shall I kill Arjuna?” Duryodhana replied, “If Ghaṭotkaca kills all of us tonight, what use will the missile be afterward? You and I will not survive this battle.” Forced by necessity, Karṇa released the weapon and its impact killed Ghaṭotkaca.

ORIGINAL

उसके मरते ही सारे पाण्डव-शिविरमें शोक छा गया। युद्ध बन्द हो गया। पाण्डव अपने शिविरमें गये और सब-के-सब अत्यन्त करुणार्द्रभावसे रोने लगे। वे कहने लगे, “इतना बड़ा महावीर, हमारा पुत्र जो सारे कौरवोंको त्रस्त करनेवाला था, मर गया।” भगवान् श्रीकृष्ण एक ओर बैठे हँस रहे थे। पाण्डवोंको यह बात बुरी लगी कि हम दुःखी हैं और हमारे घरके, हमारे अपने श्रीकृष्णके मुखपर मुसकराहट कैसे? अर्जुनने जाकर पूछा, “भगवान्! यह विपरीत आचरण कैसे? अपने घरमें इतनी बड़ी हानि हो गयी, घटोत्कच मर गया। ऐसे समय सहानुभूतिके लिये भी हँसी नहीं आया करती। आपके चेहरेपर हँसी?”

भगवान्ने बताया, “इस हँसीके दो कारण हैं। घटोत्कच अपना पुत्र होनेपर भी राक्षस था। उसे कर्ण नहीं मारता तो आगे चलकर मैं उसे मारता। वह राक्षसी स्वभावका प्राणी था, जो दुनियाको दुःख देनेके लिये था। एक तो इस बातका हर्ष है और दूसरा कारण यह है कि मेरा मन आज इस बातसे बड़ा प्रसन्न है कि मेरा अर्जुन बच गया। यदि वह शक्ति कर्णके पास बची रहती तो अर्जुनपर ही छूटती और मेरा प्रिय अर्जुन मर जाता।” भगवान्ने उस समय यहाँतक कहा, “मुझे रातमें नींद नहीं आती थी तथा दिनमें रोटी नहीं भाती थी, केवल इसलिये कि कर्णके पास शक्ति है। जब-जब मैं कर्णके सामने रथ ले जाता, तब-तब कर्णको सम्मोहन-विद्यासे सम्मोहित कर देता, जिससे वह उस शक्तिको भूला रहे। आज वह शक्ति घटोत्कचपर छूट गयी और मेरा अर्जुन बच गया।” भगवान्ने यह अपने प्रेमकी बात कही।

भगवान्के इस हृदयको देखकर उनकी कृपा पानेका हम लोगोंके लिये बड़ा सुन्दर ढङ्ग यह है कि अपने सारे पापोंको खोलकर अन्तर्यामीके सामने रख दें। एक बार जो भगवान्के चरणोंमें अपने-आपको समर्पण कर देता है, भगवान् उसके अपने बन जाते हैं और उसे अपना बना लेते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

At his death grief filled the Pāṇḍava camp. The fighting ceased, and the Pāṇḍavas returned to their tents and wept in deep anguish. “Such a great hero, our son who terrified all the Kauravas, has died.” Yet Śrī Kṛṣṇa sat to one side laughing. The Pāṇḍavas were hurt that while they mourned, their own Kṛṣṇa smiled. Arjuna asked, “Lord, why this contrary behavior? Our own household has suffered such a great loss and Ghaṭotkaca is dead. At such a time one cannot laugh even merely out of sympathy. Why is there laughter upon Your face?”

The Lord explained, “I laugh for two reasons. Although Ghaṭotkaca was our son, he was a rākṣasa. Had Karṇa not killed him, I would eventually have done so, for his demonic nature would have brought suffering to the world. That is one cause of gladness. The second is that my heart rejoices because My Arjuna has been saved. If Karṇa had retained the missile, he would have released it upon Arjuna and My beloved Arjuna would have died.” The Lord went so far as to say, “I could not sleep at night or relish food by day simply because Karṇa possessed that weapon. Whenever I drove the chariot before him, I bewildered him through the art of enchantment so that he would forget to use it. Today it was released upon Ghaṭotkaca, and My Arjuna has been saved.” In this way the Lord revealed His love.

Seeing this heart of God, a beautiful way for us to obtain His grace is to lay every sin openly before the indwelling Lord. Once a person surrenders himself at God's feet, God becomes his and makes that person His own.

CHAPTER 9

समर्पणका आदर्श

The Ideal of Self-Surrender

Source scan pages 87–87

ORIGINAL Hindi

Source: Scan 87 and the opening continuation on scan 88 before the next printed heading

समर्पणका आदर्श

समर्पण है तो बहुत ऊँचे दर्जेकी चीज, पर है जरा कठिन। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई है अपना अलगपन रखना। सब कुछ कहकर भी हम अपना अलग अस्तित्व रख लेते हैं। यह भगवान्‌को सुहाता नहीं। भगवान्‌की हम महिमा कहते हैं, सुनते हैं, पर सोचिये हम भगवान्‌की महिमा क्या कह सकते हैं? वे अपने-आपमें ही स्थित हैं। हमारी तो महिमा करना भी उनकी निन्दा ही होती है। पर वे उस निन्दासे भी नाराज नहीं होते, बालककी बात समझकर हँसते हैं। और हमें भी करनी ही चाहिये।

पूर्ण समर्पणसे पहले तीन चीजें और होती हैं। आज्ञापालन, संकेतके अनुसार चलना और रुचिके अनुसार करना। पहले तो आज्ञापालन भी नहीं होता। फिर आज्ञापालनमें तीन बातें हैं, संकोचसे, लाभ-दृष्टिसे, कर्तव्य समझकर। संकोचसे पालन करनेमें एक मजबूरी होती है, तबतक तो समर्पण कुछ हुआ ही नहीं। फिर लाभकी दृष्टिसे की जाती है, उसके बाद फिर कर्तव्य समझकर। इससे जब आगे बढ़ते हैं तो स्पष्ट आज्ञाकी जरूरत नहीं, संकेतके अनुसार चलने लगते हैं। इसमें संकोच-मजबूरीका प्रश्न ही नहीं है। उसके बाद उनकी रुचि मालूम होने लगती है और सब कुछ उसके अनुरूप होने लगता है। इन सबके फलस्वरूप फिर स्वभाव ही वैसा बन जाता है। फिर भगवान्‌के मनकी बात स्वतः पता लगने लगती है। इससे पहलेतक जीवन भगवान्‌के अनुकूल तो बन जाता है, पर भगवान्‌का नहीं बनता। उसके बाद तो भगवान्‌का मन ही उसका मन बन जाता है। यही है राधा-भाव, जिसे कोई भी प्राप्त कर सकता है।

यह सब आज ही जीवनमें आ जाय, यह असम्भव तो नहीं कहा जा सकता, पर आज जैसा मन है उसे देखते कठिन अवश्य है। पर इसे आदर्श रखकर एक कदम भी हम उधर बढ़ सकें, तब भी बड़ा अच्छा है। आदर्श तो हमें यही रखना चाहिये। जबतक असली नहीं हो, तबतक उसकी नकल ही करें। धीरे-धीरे नकलको भी वे असली बना देंगे।

भगवान् सब कुछ करने तैयार हैं, पर वे बहाना लेते हैं कि कम-से-कम यह चाह तो इसकी रहे। फिर चाह होनेपर तो वे सब कुछ अपने-आप ही कर देंगे।

कोई गुप्त बात सुननेको मिल जाय, यह भी एक कौतूहल ही होता है। मैं ऐसे व्यक्तियोंको जानता हूँ जिन्हें गुप्त बातें सुननेको मिलीं, पर उसका पूरा लाभ नहीं ले सके। पहलेसे भाव घटा भले ही। तो वह गुप्त बात भी उपन्यासकी तरह पढ़ने और कहनेकी हो जाती है। बहुत विशेष लाभ नहीं होता।

हम तो केवल माँग करते रहते हैं, हमने इतना दिया, हमने इतना प्रेम किया। अरे, हमारे पास देनेको है क्या? अधिक-से-अधिक हम अपना शरीर देते हैं। अरे! इस महा गन्दी वस्तु, जिसमें प्राण न रहनेपर एक दिन भी घरमें नहीं रखते, उसे दे भी दिया तो क्या हुआ? और किया तो मन दे दिया, जिस मनमें हजारों-हजारों कुप्रवृत्तियाँ भरी

> पड़ी हैं। उसे दे दिया तो कौन-सा बड़ा काम कर दिया। वे तो केवल और केवल अपनी सहज कृपासे किसीको अपना लेते हैं और फिर उसके साथ जो क्रीड़ा होती है वह तार्किकोंके समझमें नहीं आती और प्रेमियोंको रसास्वादन करानेवाली होती है।

ENGLISH TRANSLATION

Self-surrender is indeed something of a very high order, but it is somewhat difficult. Its greatest difficulty lies in our retaining a sense of separateness. Even after saying that we have given everything, we preserve an independent existence of our own. This does not please the Lord. We speak and hear praise of the Lord, but consider: what praise of him can we possibly utter? He abides wholly in himself. Even our praise of him amounts to a disparagement. Yet he does not become displeased even by that disparagement. Taking it as the speech of a child, he smiles. And we, for our part, ought certainly to praise him.

Three stages precede complete surrender: obeying a command, acting according to a sign, and acting according to his preference. At first there is not even obedience. Then obedience itself has three forms: one obeys out of hesitation, with an eye to benefit, or from a sense of duty. Obedience born of hesitation contains an element of compulsion, and so no real surrender has yet occurred. Next one obeys for the sake of benefit, and afterward because one understands it to be one's duty. When one advances beyond this, no explicit command is needed; one begins to act according to the slightest indication. There is then no question of hesitation or compulsion. After that, one begins to discern his preference, and everything starts to conform to it. As the fruit of all these stages, one's very nature becomes like that. One then knows spontaneously what is in the Lord's mind. Before this point, one's life may have become pleasing to the Lord, but it has not yet become the Lord's own. Afterward, the Lord's mind itself becomes one's mind. This is Rādhā-bhāva, which anyone may attain.

It cannot be said to be impossible for all this to enter one's life today, though, considering the mind as it presently is, it is certainly difficult. Even so, if we hold this as our ideal and can take even one step toward it, that itself is very good. This alone should remain our ideal. Until the genuine state appears, let us imitate it. Gradually, he will make even the imitation genuine.

The Lord is ready to do everything, but he takes as his pretext that the person should at least retain this much longing. Once that longing is present, he himself will do everything.

The wish to hear some secret matter is also merely a form of curiosity. I know people who were allowed to hear confidential things but could not draw their full benefit from them. Their devotional feeling may even have diminished from what it was before. The secret teaching then becomes something to read and recount like a novel, and no special benefit arises from it.

We only keep making claims: “I have given so much; I have loved so much.” But what do we possess that we can give? At most, we offer our body. What if we do give this exceedingly filthy thing, which no one keeps in the house even for a day once life has left it? If we go further, we give the mind, a mind filled with thousands upon thousands of corrupt tendencies. What great deed have we performed by giving that? It is solely through his own natural grace that the Lord makes someone his own. The play that then unfolds between them cannot be understood by logicians; it gives lovers the savoring of rasa.

CHAPTER 10

व्रज-भावकी उपासना सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

Questions and Answers concerning the Worship of Vraja-bhāva

Source scan pages 88–90

ORIGINAL

Hindi

Source: Scan 88

व्रज-भावकी उपासना सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

प्रश्न: तीव्र उत्कण्ठा कैसे हो?

उत्तर: यह किसी शुभ कर्मका फल नहीं है। यह तो केवल श्रीभगवान्‌की कृपाका फल है। और श्रीभगवान्‌की अपार कृपा हर समय निरन्तर वर्ष रही है। उस कृपाके प्रभावको जानकर यह जीवन जितना अधिक उस कृपाका अनुभव करेगा, उतनी ही उत्कण्ठा श्रीभगवान्‌से मिलनेके लिये तीव्र होगी। असली उपाय तो श्रीभगवान्‌की महिमा जानकर उनकी कृपाका यथार्थ अनुभव करना ही है, आनुषङ्गिक उपाय अनेक हैं।

प्रश्न: संसारके कार्य भी बाधा देते होंगे?

उत्तर: प्रत्येक कार्य भगवत्सेवाकी भावनासे करो। काममें ध्यान न देनेवाली बात ठीक नहीं है।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 88

Questions and Answers concerning the Worship of Vraja-bhāva

Question: How can intense longing arise?

Answer: It is not the fruit of any meritorious deed. It is solely the fruit of Śrī Bhagavān's grace, and his limitless grace is pouring down ceaselessly at every moment. The more this life recognizes the power of that grace and experiences it, the more intense its longing to meet Śrī Bhagavān will become. The true means is to know Śrī Bhagavān's greatness and genuinely experience his grace. There are many subsidiary means.

Question: Do worldly duties also create obstacles?

Answer: Perform every action in the spirit of service to the Lord. It is not right to neglect the work itself.

ORIGINAL Hindi

Source: Scan 89

भजनको सीमित मत रखो। आसक्ति हटेगी भगवत्सेवाकी भावनासे करनेसे; उपेक्षासे या काम छोड़नेसे आसक्ति नहीं हटेगी।

प्रश्न: ममता कैसे हटे?

उत्तर: ममता हटानी नहीं है। भगवान्में जोड़ देनी है। ममत्वकी वस्तुको बदल दो। भगवान् मेरे और मैं केवल तेरा। तेरी वस्तुको तू सँभाल। अपना दैन्य और भगवान्की कृपा, दोनों ही अत्यन्त आवश्यक हैं।

प्रश्न: हमें तो अपनी चाल बहुत धीमी मालूम देती है।

उत्तर: अपनी चाल तो धीमी ही मालूम देनी चाहिये। इससे सन्तोष कभी होना ही नहीं चाहिये। इसमें तो असन्तोष ही आगे बढ़ानेवाला है। चाल धीमी माननेके लिये नहीं, दिखाई ही देनी चाहिये कि चाल बहुत धीमी है।

प्रश्न: हम तो हाथ-पैर हिला सकते हैं, काम तो उनकी कृपासे ही होगा।

उत्तर: बस, जितना हाथ-पैर हिला सकते हो उतना हिलाते रहो। फिर सब कुछ जिसे करना है, वह स्वयं करेगा। अपनी चेष्टामें कमी नहीं रहनी चाहिये। अपना काम इच्छा बढ़ाना है, उसकी पूर्ति तो फिर वे अपने-आप करेंगे।

प्रश्न: कृपा इच्छा बढ़ानेमें सहायता करती होगी?

उत्तर: जरूर। कृपा तो सब कामोंमें सहायता करती है। पर उसे माननेकी जरूरत है। जितना मानोगे, उतनी ही सहायता करेगी।

प्रश्न: मानसिक सेवा चिन्तन जैसा लगता है, प्रत्यक्षकी भावना नहीं होती।

उत्तर: मानसिक चिन्तन ही ध्यान है और ध्यान ही प्रत्यक्ष है। जैसे हम गायका मानसिक चिन्तन करें तो गाय तो यहाँ है नहीं, इसलिये चिन्तन ही होगा; पर भगवान्के बारेमें यह बात नहीं है। भगवान् तो यहाँ उपस्थित हैं ही, इसलिये भगवान्का मानस-चिन्तन होनेपर, उसे प्रत्यक्ष माननेपर, वह प्रत्यक्ष ही है। मनमें निराश नहीं होना चाहिये। निराश नहीं होनेसे चाल अपने-आप तेज होगी।

प्रश्न: उत्कण्ठा कैसे बनी रहे?

उत्तर: उत्कण्ठा तो रहनी ही चाहिये। न रहे तो ठीक नहीं है।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 89

Do not confine bhajana within narrow limits. Attachment will fall away when work is done in the spirit of service to the Lord. Attachment does not disappear through neglect or by abandoning one's work.

Question: How can possessive attachment be removed?

Answer: It is not to be removed. It is to be joined to the Lord. Change the object of possessiveness: “The Lord is mine, and I am yours alone. You take care of what belongs to you.” Both one's own lowliness and the Lord's grace are absolutely necessary.

Question: Our progress seems very slow to us.

Answer: One's progress should indeed appear slow to oneself. One should never become satisfied with it. Here it is dissatisfaction that impels one forward. This is not something one should merely tell oneself; one should genuinely see that one's pace is very slow.

Question: We can only move our hands and feet; the work will be accomplished only by his grace.

Answer: Then keep moving your hands and feet as much as you can. The one who must accomplish everything will himself do the rest. There should be no deficiency in your own effort. Your work is to increase the longing; he himself will fulfill it.

Question: Grace must help to increase the longing?

Answer: Certainly. Grace helps in every undertaking, but one must acknowledge it. The more you acknowledge grace, the more it will help you.

Question: Mental service feels like mere contemplation; it does not feel directly present.

Answer: Mental contemplation itself is meditation, and meditation itself is direct presence. If we mentally contemplate a cow, the cow is not actually here, so it remains only contemplation. This is not so in relation to the Lord. The Lord is already present here. Therefore, when one contemplates him inwardly and accepts that contemplation as direct presence, it is direct presence. One should not become despondent. By remaining free from despondency, one's progress will accelerate of itself.

Question: How can longing be kept alive?

Answer: Longing must remain. If it does not, that is not right.

ORIGINAL Hindi

Source: Scans 90 to 91, with the concluding lines carried on scan 91 before the next printed section

मिलनमें भी अतृप्ति बनी रहती है। देखो, प्रेमास्पद प्रेमीके हर समय पासमें रहता है। वह प्रेमीके लिये बहुत आतुर रहता है, पर जनाता नहीं है। जैसे प्रेमी अपने प्रेमको छिपाये हुए रखता है, वैसे ही प्रेमास्पद अपने प्रेमको छिपाये हुए उसके पास रहते हैं। प्रेमीके लिये नहीं, स्वयं रस लेनेके लिये। तुम जिस जगह उन्हें नहीं रखना चाहते, वहाँ भी वे पास रहते हैं। प्रेमीसे प्रेमास्पदका मन अधिक रहता है। प्रेमी तो पास रहनेमें असमर्थ है, परन्तु प्रेमास्पद असमर्थ नहीं है। वे नित्य-निरन्तर पास रहते हैं। उसको बीच-बीचमें प्रत्यक्षकी तरह दर्शन देकर और भी अधीर बना देते हैं।

प्रश्न: प्रेममें कैसे डूबे रहें?

उत्तर: डूबनेपर फिर निकल नहीं सकोगे। फिर तो सब कुछ जला देना पड़ेगा। उसकी होलीपर नाचना पड़ेगा। भय, प्रलोभन, बहुत-सी चीजें आवेंगी। देवता आवेंगे मान-सम्मान देनेके लिये। सबका तिरस्कार करके उसे केवल प्रेमास्पदकी चाह रखनी होगी। घरवाले ठुकरा देंगे, दुनियामें अपमान हो जायेगा, सांसारिक वस्तुएँ छीन ली जायँगी। फिर जिस प्रेमास्पदके लिये यह सब सहा, वह भी छिटका देगा। इसपर भी भाव न डिगे, तब वह उसका बन्दी बन जायेगा। श्रीकृष्ण गोपियोंको छोड़कर मथुरा चले गये। गोपियोंको लोग 'कलंकिनी' कहते थे।

प्रश्न: समर्पणकी बात सुननेमें अच्छी लगती है, पर पूर्ण समर्पण हो कैसे?

उत्तर: समर्पणकी बात सर्वोत्तम है ही, पर समर्पण सरल भी है और कठिन भी। सरल तो इसलिये कि इसमें कुछ करनेकी जरूरत नहीं और कठिन इसलिये कि इसमें सब विश्वासको छोड़ना पड़ता है। असली समर्पण विश्वासका ही होता है।

प्रश्न: पूर्ण समर्पणके पहले चौथाई-तिहाई समर्पण भी होता है क्या?

उत्तर: होता है। जैसे उनकी शक्तिपर तो विश्वास कर लिया, पर मनमें आ जाती है कि ऐसा हो जाता तो अच्छा रहता। यह अधूरा समर्पण है। समर्पणमें अलग इच्छा नहीं रहती। असली समर्पण किया नहीं जाता, वह तो होता है। अपनी तरफसे पूरी तैयारी रखें, फिर वे अपने-आप उसे स्वीकार कर लेते हैं।

प्रश्न: साधनमें आगे बढ़े लोगोंको गिरते देखकर मनमें कमजोरी आती है।

उत्तर: जो वास्तवमें आगे बढ़े हैं, उनके च्युत होनेके तीन कारण हैं। एक तो उनमें कुछ साधनाका अभिमान आ जाता है। दूसरा यह कि साधनामें कुछ दिखावापन आ जाता है। भगवान्को अभिमान नहीं सुहाता। साधक सच्चाईसे लगा हुआ था तो वह गिरना भी उसके दुबारा उठनेकी भूमिका ही है। तीसरा कारण यह भी हो सकता है कि उसके विश्वासमें कमी आ जाय। इसलिये हमेशा अपनेसे ऊँचेवालेको देखें और भगवान्से सुरक्षाके लिये प्रार्थना करते रहें।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scans 90 to 91, with the concluding lines carried on scan 91 before the next printed section

Even in union, a sense of unfulfillment remains. See, the beloved abides beside the lover at every moment. The beloved is intensely eager for the lover, but does not let it be known. Just as the lover conceals love, the beloved remains near while concealing love, not for the lover's sake but to savor rasa personally. Even where you do not wish to place him, he remains near. The beloved's mind dwells upon the lover even more than the lover's mind dwells upon the beloved. The lover may be unable to remain close, but the beloved is not unable. He stays near eternally and without interruption. From time to time he grants a vision as vivid as direct sight and thereby makes the lover still more restless.

Question: How can one remain immersed in love?

Answer: Once immersed, you will not be able to come out again. Everything will have to be burned, and you will have to dance upon its funeral fire. Fear, temptation, and many other things will come. The gods will come to bestow honor and esteem. Rejecting them all, one must desire the beloved alone. One's family will cast one aside, the world will dishonor one, and worldly possessions will be taken away. Then even the beloved for whose sake all this was endured will push one away. If one's bhāva does not waver even then, the beloved will become one's captive. Śrī Kṛṣṇa left the gopīs and went to Mathurā. People called the gopīs “stained women.”

Question: Self-surrender sounds beautiful, but how can complete surrender arise?

Answer: Self-surrender is indeed the highest teaching, but it is both easy and difficult. It is easy because nothing needs to be done. It is difficult because every other reliance must be abandoned. True surrender is the surrender of one's trust.

Question: Before complete surrender, can there also be a quarter or a third of surrender?

Answer: Yes. For example, one may trust his power yet still think, “It would be good if things happened in this particular way.” That is incomplete surrender. In surrender, no separate desire remains. True surrender is not performed; it happens. Maintain complete readiness on your side, and then he accepts it of himself.

Question: Seeing people who had advanced in spiritual practice fall creates weakness in the mind.

Answer: There are three reasons why those who have truly advanced may fall away. First, some pride in their practice may arise. Second, an element of display may enter the practice. The Lord is not pleased by pride. If the practitioner had been sincerely engaged, even the fall becomes the

preparation for rising again. Third, faith may diminish. Therefore, always look toward those who stand higher than you and continue praying to the Lord for protection.

CHAPTER 11

व्रज-भावकी उपासनाके लिये मन्त्र

Mantra for the Worship of Vraja-bhāva

Source scan pages 91–91

ORIGINAL

Sanskrit and Hindi

Source: Scan 91

व्रज-भावकी उपासनाके लिये मन्त्र

1. ॐ क्लीं कृष्णाय नमः।
2. ॐ क्लीं श्रीराधाकृष्णायास्मि नमः।
3. नमो गोपीजनवल्लभाभ्याम्।
4. गोपीजनवल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये।
5. ॐ प्रेमधनरूपिण्यै प्रेमप्रदायिन्यै श्रीराधायै स्वाहा।
6. ॐ गोपीजनवल्लभाय नमः।
7. ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।
8. तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।

पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः।।

(श्रीमद्भागवत १०।३२।२)

इस मन्त्रकी एक माला जप करके 'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' इस मन्त्रकी कम-से-कम ११ मालाओंका जाप प्रतिदिन शुद्ध होकर करे। ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक है।

1. ॐ ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा।
2. ॐ ह्रीं श्रीराधाकायै नमः।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 91

Mantra for the Worship of Vraja-bhāva

1. Oṁ klīṁ. Salutations to Kṛṣṇa.
2. Oṁ klīṁ. I belong to Śrī Rādhā-Kṛṣṇa. Salutations.
3. Salutations to the two beloveds of the gopīs.
4. I take refuge at the feet of the beloved of the gopīs.
5. Oṁ. To Śrī Rādhā, who is the embodiment of the treasure of love and the giver of love, svāhā.
6. Oṁ. Salutations to the beloved of the gopīs.
7. Oṁ klīṁ. To Kṛṣṇa, Govinda, the beloved of the gopīs, svāhā.
8. Then Śauri appeared among them, his lotus face smiling, clad in yellow silk and adorned with a garland, Cupid himself who bewilders Cupid.

(Śrīmad Bhāgavatam 10.32.2)

After reciting one rosary of this mantra, one should purify oneself daily and recite at least eleven rosaries of the mantra, “Oṁ klīṁ kṛṣṇāya govindāya gopījanavallabhāya svāhā.” The observance of brahmacarya is necessary.

9. Oṁ hrīṁ. To Śrī Rādhā, svāhā.
10. Oṁ hrīṁ. Salutations to Śrī Rādhākā.

CHAPTER 12

भगवान्‌की गोद सबके लिये खाली है

The Lord's Lap Is Empty for Everyone

Source scan pages 92–103

ORIGINAL Hindi and Sanskrit

Source: Scan 92

भगवान्‌की गोद सबके लिये खाली है

एक बड़ा सुन्दर दोहा है:

मोह बड़ा दुःख-रूप है, ताको मार निकार।

प्रीति जगत्‌की छोड़ दे, तब होवे निस्तार॥

अभिप्राय यह कि मानवके जीवनमें दुःखका रूप तथा दुःखका मूल एवं दुःख पैदा करनेवाला मोह ही है, अतः इस मोहका विनाश कर देना चाहिये। इसे जीवनसे निकाल देना चाहिये। यह मोह ही आसक्तिका मूल कारण है। जो वस्तु जैसी है नहीं, उसमें वैसा देखना ही मोह है। मोहसे बुद्धि विपरीत हो जाती है और विपरीत बुद्धि विपरीत दर्शन कराती है। मोहको तम कहा गया है। भगवान् कहते हैं:

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।

सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

(गीता १८।३२)

हे अर्जुन! वह तामसी बुद्धि है जो अधर्मको धर्म बतलाती है। सारे कार्योंको, सारी चीजोंको जो उलटा दिखाती है, वह तमोगुणसे ढकी हुई बुद्धि है। इसीका नाम मोह है। सच्चिदानन्दघन परमात्माको छोड़कर जगत्‌में कहींपर सुखकी सत्ता नहीं है। परमात्माको छोड़कर जगत्‌के पदार्थोंसे सुख-सत्ताकी कल्पना करना ही मोह है। भगवान्‌में ही परम सुख तथा परम आनन्द एवं परम शान्ति है। इस बातको भूलकर, जहाँ केवल ईर्ष्या-द्वेष आदिकी आग धधक रही है, जहाँ निरन्तर अशान्ति और दुःख है, वहाँ सुखकी कल्पना करना मोह है। भगवत्-चरणारविन्दमें अनुराग तबतक नहीं होता, जबतक यह मोह रहता है। इसलिये मोहका नाश करना अत्यन्त आवश्यक है। मोहके नाशके लिये जीवनकी गतिको भगवान्‌की ओर मोड़ देनेका प्रयास करना है। ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं। भगवान्‌की ओर जीवनकी गति होनेपर ही मोहका नाश होता है। वास्तविक मोहका नाश होनेपर ही भगवान्‌की ओर गति होती है। दोनों एक-दूसरेके सहायक हैं। दोनोंमें कोई एक कम नहीं। किसी-किसीके पहले मोहका नाश आरम्भ होता है, फिर भगवान्‌की ओर गति होती है।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 92

The Lord's Lap Is Empty for Everyone

There is a beautiful couplet:

Delusion is the very form of sorrow; strike it down and drive it out.

Abandon attachment to the world, and then deliverance will come.

The meaning is that in human life delusion is the form of suffering, the root of suffering, and that which produces suffering. Therefore, this delusion must be destroyed and expelled from one's life. Delusion is the root cause of attachment. To perceive in a thing what is not actually there is delusion. Delusion turns the intellect contrary, and a contrary intellect causes contrary perception. Delusion is called darkness. The Lord says:

That intellect, enveloped in darkness, which regards adharma as dharma and sees every matter in a contrary way, O Pārtha, is tāmasic.

(Bhagavad Gītā 18.32)

O Arjuna, the intellect that declares adharma to be dharma is tāmasic. The intellect covered by tamoguṇa, which shows every action and every thing in reverse, is called delusion. Apart from the Supreme Self, the concentrated fullness of being, consciousness, and bliss, happiness has no existence anywhere in the world. To imagine happiness in worldly objects apart from the Supreme Self is delusion. Supreme happiness, supreme bliss, and supreme peace exist in the Lord alone. To forget this and imagine happiness where the fires of jealousy, hatred, and similar passions blaze, where unrest and sorrow are ceaseless, is delusion. Love for the lotus feet of the Lord cannot arise while this delusion remains. Its destruction is therefore essential. To destroy delusion, one must endeavor to turn the course of life toward the Lord. These two processes depend upon one another. Delusion is destroyed when life's movement turns toward the Lord, and movement toward the Lord becomes possible when genuine delusion is destroyed. Each supports the other; neither is secondary. In some people delusion first begins to disappear and movement toward the Lord follows.

ORIGINAL Hindi and Sanskrit

Source: Scan 93

किसी-किसीके भगवान्‌की ओर गति होनेपर मोहका नाश होता है, परन्तु इनमें सहज चीज है भगवान्‌की ओर पहले गतिका होना। गीतामें और पातञ्जलयोग-दर्शनमें भी वैराग्यका क्रम पीछे है तथा अभ्यासका पहले, जैसे 'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः', यह योगदर्शनका सूत्र है। गीताका वचन है, 'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।' मनका निग्रह अभ्यास और वैराग्यसे होता है। अभ्यास पहले और वैराग्य पीछे। इसका कारण है, भगवान् ठोस हैं। भगवान्‌में पोल नहीं है। इसलिये इनका एक नाम कूटस्थ है।

सब भगवान्‌से परिपूर्ण है। उपनिषद्‌का वचन है, 'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।' भगवान्‌की पूर्णताका वर्णन करते हुए उपनिषद्‌में कहा गया है कि पूरेमेंसे पूरा निकाल लिया जाय, तब भी पूरा ही बचता है। इस प्रकार भगवान् नित्य पूर्ण हैं, ठोस हैं। ठोसमें किसी दूसरी वस्तुका प्रवेश नहीं हो सकता। कहीं-न-कहीं पोल होनेपर दूसरी वस्तु उसमें समाती है, नहीं तो अन्य वस्तु समाती नहीं। इसलिये भगवत्-दृष्टि होनेपर इस जगत्‌में भी भगवान्‌के सिवा कुछ दिखायी नहीं देता, क्योंकि उनके अतिरिक्त कुछ है नहीं। भगवान्‌में जगत् समाया नहीं है, हमारी दृष्टिमें जगत् बना है। जैसे किसी बर्तनमें पड़े पानीको कोई निकालना चाहता हो और वह न निकले तो उसे कैसे निकाला जाय? उसके अन्दर शीशा गलाकर भरना शुरू कर दे। शीशा है घन। जितना-जितना शीशा भरता चला जायगा, उतना-उतना जल निकलता चला जायगा। उतनी-उतनी जगह शीशा रोकता चला जायगा। शीशा ऊपरतक भर गया तो जल अपने-आप निकल जाय। इसलिये यह बड़ा सुन्दर मार्ग है। भगवान्‌की ओर जीवनको लगा दें। जितना-जितना भगवान्‌की ओर जीवन लगेगा, उतना-उतना अपने-आप ही भोगोंसे हटेगा। भोगोंमें दुःख और दोष देखकर इनसे हटनेका मार्ग तो है, वह सुन्दर भी है, पर जरा रूखा है। उसमें चट्टान तोड़ते चले जाओ, रास्ता निकालते जाओ। सम्भव है ऐसी कोई चीज मिल जाय कि जिसमें चट्टान टूट जाय, फिर तो अपने-आप ही आनन्द मिलता रहे। इसके लिये भगवान्‌ने कहा है कि तुमको भवसागर पार करना नहीं पड़ेगा, यह तो हम स्वयं ही कर देंगे।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 93

In others, delusion is destroyed after they begin moving toward the Lord. Of the two, however, the easier course is first to begin moving toward him. In both the Gītā and Patañjali's Yoga philosophy, practice comes first and dispassion afterward. The Yoga Sūtra says, “Its restraint is through practice and dispassion,” and the Gītā says, “Yet by practice, O Kaunteya, and by dispassion it is mastered.” The mind is restrained through practice and dispassion: practice first, dispassion afterward. The reason is that the Lord is solid fullness; there is no hollow within him. Therefore, one of his names is Kūṭastha, the immutable one.

Everything is filled with the Lord. The Upaniṣad says, “When the whole is taken from the whole, the whole alone remains.” Describing the Lord's fullness, it declares that even when fullness is removed from fullness, fullness remains. Thus the Lord is eternally whole and solid. No other thing can enter what is wholly solid. A second thing can enter only where some hollow remains. Therefore, when divine vision arises, nothing but the Lord is seen even in this world, for nothing exists apart from him. The world has not entered the Lord; it has arisen within our perception. Suppose someone wishes to remove water from a vessel but cannot pour it out. How may it be removed? Begin filling the vessel with molten lead. Lead is dense. As more and more lead enters, more and more water comes out, while the lead occupies its former space. When the lead fills the vessel to the top, the water leaves of itself. This is therefore a beautiful path: turn life toward the Lord. The more life becomes engaged in him, the more it withdraws of itself from enjoyments. One may also withdraw by seeing the sorrow and defect in enjoyments. That is a good path, but it is somewhat dry. One must keep breaking rock and carving out a road. Perhaps one eventually finds something by which the rock breaks and joy thereafter arises of itself. Concerning this, the Lord says that you will not have to cross the ocean of becoming; he himself will carry you across.

ORIGINAL Hindi and Sanskrit

Source: Scan 94

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।

भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता १२।७)

गीतामें भगवान्ने यह कहा कि जो मुझमें चित्त आविष्ट कर चुके हैं, जो मेरी ओर आ जाते हैं, उनको मैं संसार-सागरसे पार कर देता हूँ, उनको होना नहीं पड़ता। इसका अर्थ यह है कि सुखपूर्वक अच्छी प्रकारसे उनको पार लगा देनेवाला मैं ही हूँ। पार कहाँसे लगाना है? तो खुली बात कह दी, स्पष्ट शब्दोंमें कह दी, 'संसारसागरात्।'

मान लो, एक आदमी तैरकर गंगा पार होता है। यदि उसे तैरनेकी कला ठीक-ठीक याद है, उसका दम नहीं टूटता, वह रास्तेमें विघ्नोंसे, जल-जन्तुओंसे, भँवरोंसे, जोरके प्रवाहसे बचकर निकल जाता है तो निश्चय पार हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं; पर कठिनता है। और एक आदमी ऐसी नौकामें सवार होकर पार हो जाय, जो तुरन्त ले जाय, टकराने-डूबनेका भय भी न हो और साथ-साथ उसे किसी ऐसी वस्तुका संग बना रहे जो निरन्तर मन एवं इन्द्रियोंको भी आनन्द देती रहे, तो इसके लिये भगवान्ने कहा, 'अहं समुद्धर्ता भवामि।' बड़ी सुन्दर चीज। संसारसागरके इस पार नौका लेकर भगवान् आ जाते हैं, नहीं तो पार कैसे करेंगे! शब्दोंमें एक साहित्यिक सौन्दर्य भी होता है। व्यास भगवान्के अवतार हैं। व्यास क्रान्तदर्शी हैं, व्यास मुनि हैं और व्यास महाकवि भी हैं। उनका एक काव्य-सौन्दर्य है। वे कहते हैं, 'संसारसागरात् अहं समुद्धर्ता भवामि।' संसार-सागर कौन-सा? बोले, 'मृत्युसंसारसागरात्।' जिस संसारमें मृत्युका नित्य जल उछल रहा है, जो मृत्युसे भरा है, मरण जिसका स्वरूप है, इस प्रकार मृत्युको लेकर उछलता हुआ जो संसार-सागर है, उस संसार-सागरसे पार करनेवाला मैं होता हूँ। पार किया जाता है इस पारसे उस पार। इसका अर्थ यह है कि इस पार वे तैयार हैं अपनी कृपाकी नौका लेकर। वे कहते हैं, 'आ जाओ, मेरी नौकामें बैठ जाओ और पार हो जाओ।' इस नौकामें बैठनेसे क्या होगा? तीन बातें होंगी बड़ी सुन्दर, जो और कहीं नहीं होतीं। सुखमय नौका है, इस नौकासे पार होनेमें कोई कठिनाई नहीं है। अपनेको तो मात्र बैठे रहना है, कुछ करना नहीं है। अनायास पार हो जायँ। दूसरी बात, नौकाके डूबनेका डर ही नहीं। भगवत्कृपा कभी डूबी नहीं और सब डूब जाते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 94

For those whose minds have entered me, O Pārtha, I soon become the deliverer from the ocean of the mortal world.

(Bhagavad Gītā 12.7)

In the Gītā the Lord says that those whose minds have become absorbed in him, who turn toward him, are carried by him across the ocean of the world. They do not have to cross by themselves. He is the one who carries them safely and happily to the far shore. Across what does he carry them? He states it openly and explicitly: “from the ocean of worldly existence.”

Imagine a man swimming across the Gaṅgā. If he remembers the art of swimming perfectly, does not lose his breath, and escapes the obstacles, aquatic creatures, whirlpools, and powerful currents along the way, he will certainly cross. There is no doubt, but it is difficult. Another man may board a boat that carries him across at once, without fear of collision or sinking, while he remains in the company of something that continuously delights his mind and senses. Of this the Lord says, “I become the deliverer.” It is beautiful. The Lord comes to this shore of the ocean of existence with a boat; how else could he carry us across? The words themselves possess literary beauty. Vyāsa is an incarnation of the Lord, a seer beyond time, a sage, and also a great poet. He says, “I become the deliverer from the ocean of worldly existence.” What kind of ocean? “The ocean of mortal worldly existence.” Its waters are death ceaselessly surging; it is filled with death, and dying is its very nature. From this ocean of worldly existence, he becomes the one who carries us across. Crossing is from this shore to the other, which means that he stands ready on this very shore with the boat of his grace. He says, “Come, sit in my boat, and cross.” What happens upon boarding it? Three beautiful things found nowhere else. The boat is made of happiness, so crossing in it involves no hardship. One need only remain seated and do nothing, passing over without effort. Second, there is no fear that the boat will sink. Everything else may sink, but divine grace has never sunk.

ORIGINAL Hindi, Sanskrit, and Bengali rendered in Devanagari

Source: Scan 95

सारी शक्तियाँ डूब जाती हैं, भगवत्कृपा नहीं डूबती। वह तो सारे विघ्नोंका नाश करनेवाली शक्ति भगवान्‌की है। सारी सम्पत्तियोंको देनेवाली शक्ति भगवान्‌की है। उसका नाम कृपा है, अनुग्रह है। 'मच्चितः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।' भगवान् कहते हैं कि मेरी कृपासे सब कठिनाइयोंसे प्राणी तर जाता है। 'दुर्ग' शब्दका अर्थ है किला। बड़ी-बड़ी कठिनाइयोंके जो किले हैं, उन किलोंको फतह कर लेता है जो भगवान्‌का आश्रय लेता है। पहली बात सुखपूर्वक रहनेकी है, क्योंकि इसमें हाथ-पैर मारना नहीं पड़ता। जलको उछालना नहीं पड़ता। किसी भँवरका भय नहीं, किसी ग्राहका भय नहीं। मजेमें सुखपूर्वक बैठे रहो। दूसरी बात, नौका डूबेगी नहीं और पार हो जाओगे। तीसरी बात बड़ी सुन्दर है, वह यह कि उस केवटका साथ जो है। निरन्तर उसको देखते चले जाओ। निरन्तर श्यामसुन्दरका सुन्दर मुखमण्डल देखते हुए, उसकी विलक्षण छबिको निहारते हुए, उसके रूप-रसामृतका पान करते हुए, उसके सौन्दर्य-माधुर्य-रससुधाके अमृतका निरन्तर आस्वादन करते हुए मजेमें चले जाओ। यह बड़ा सहज, सुखमय, सुन्दर, सुदृढ़, निश्चित मार्ग है कि मनुष्य भगवान्‌की ओर लगे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुरने बँगलामें एक बड़ा सुन्दर गीत लिखा, जिसका भाव इस प्रकार है। एक पापी आता है पार होनेके लिये नदीके किनारे। जहाँ-जहाँपर नदियाँ पार करनी होती हैं, वहाँ-वहाँपर पार करनेवाले कुछ लोग रहते हैं, कुछ नौकाएँ रहती हैं। एक समय होता है कि इतने बजसे इतने बजेतक नाव जायगी, उसके बाद रात हो गयी तो नाव बन्द हो गयी। बड़ी दूरसे एक यात्री आया। बिचारा रास्तेभर दौड़ता हुआ, हाँफता हुआ कि पार उतर जायगा, उसे नौका नहीं मिली। वह कहता है:

केनो वंचित होबो चरणे।

आमि कोतो आशा करि बोसे आछि, पाबो जीवने ना होय मरणे॥

भाव यह है कि मैं इन चरणोंसे वंचित क्यों रहूँगा? पूछता क्यों रहूँगा मैं वंचित इन चरणोंसे? मैं तो कितनी आशा लगाकर आया। क्या पातकियोंको तारनेवाली नौकामें इस सन्तप्त पातकीको तुम नहीं बैठा लोगे? रास्तेकी धूल फाँकता हुआ मैं आया, मेरी आँखें धूलसे भर गयीं। क्या मैं आकर यह देखूँगा कि मेरे लिये नाव बन्द हो गयी? तब इसपर बैठकर पापी लोग दीन होकर क्यों पुकारते हैं कि नाथ! हमें पार करो। तुम्हें पार करना ही होगा।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 95

Every other power may sink, but divine grace does not. It is the Lord's power that destroys every obstacle and bestows every treasure. Its name is grace, anugraha. “With your mind fixed on me, by my grace you shall cross all fortresses of difficulty.” The Lord says that through his grace a creature passes beyond every hardship. The word durga means a fortress. Whoever takes refuge in the Lord conquers the great fortresses of difficulty. The first feature of the boat is ease: there is no need to beat one's arms and legs or churn the water. There is no fear of a whirlpool or a crocodile. Sit comfortably in happiness. Second, the boat will not sink, and you will reach the other shore. The third feature is especially beautiful: the company of the boatman. Keep gazing at him throughout the crossing. Beholding Śyāmasundara's beautiful face, contemplating his extraordinary splendor, drinking the nectar of his beauty, and ceaselessly tasting the nectar of his sweetness and rasa, travel onward in delight. This is an easy, joyful, beautiful, firm, and certain path by which a person becomes engaged in the Lord.

Rabindranath Tagore wrote a beautiful Bengali song whose sense is as follows. A sinner comes to the bank of a river wishing to cross. Wherever rivers must be crossed, there are boatmen and boats. The boat runs only during fixed hours; after night falls, its service closes. A traveler comes from far away, running and panting all along the road in the hope of crossing, but finds no boat. He says:

Why should I be deprived of those feet?

I have waited in such hope that I may attain them, if not in life, then in death.

The sense is: why should I be deprived of those feet? Why should I remain deprived after asking? I have come with such hope. Will you not seat this afflicted sinner in the boat that carries sinners across? I have come swallowing the dust of the road, my eyes filled with dust. Shall I arrive only to find that the boat has closed to me? Why then do humble sinners sit here and cry, “Lord, carry us across”? You will have to carry them across.

ORIGINAL Hindi and Sanskrit

Source: Scan 96

भगवान् निरन्तर पार उतारनेके लिये तैयार हैं। नौका लिये तैयार हैं। उनकी सुखमयी नौका, ऐसी बढ़िया नौका जिसके कभी डूबनेका डर नहीं, जिसमें सुख-ही-सुख भरा है। रास्तेभर मौजसे खाते चले जाओ। और पहुँचेगी कब? उसके उत्तरमें भगवान् कहते हैं, 'नचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।' अर्जुन! देर नहीं होगी। जब मैं पार करनेको तैयार हो जाऊँगा, तैयार हूँ ही, मैं पार करूँगा, तब चिरकाल नहीं लगेगा। विघ्न तो है ही नहीं। दुःख तो है ही नहीं। सुखपूर्वक तुरन्त पार हो जाओगे। इसलिये बड़ा सुन्दर भाव यह है कि भगवत्-चरणारविन्दमें अनुराग करनेकी इच्छा करें और अनुराग करना शुरू कर दें। भगवान्में जो राग है, इसीका नाम प्रेम है। ईश्वरमें जो परम अनुराग है, उसका नाम भक्ति है। शुद्धानुरागका स्वरूप हम बहुत कम जानते हैं। राग, अनुराग, विशुद्धानुराग, इनमें अन्तर होता है। इस प्रकार वैष्णव-शास्त्रोंमें प्रेमके आठ स्तर बताये गये हैं। उनमें छठा स्तर जो है, वह अनुराग है। इसके बाद भाव है, फिर महाभाव जो श्रीराधाका रूप है। महाभावरूपा श्रीराधिका हैं। अनुरागका अर्थ यह है कि किसी अन्यका महत्त्व, किसी अन्यकी सत्तातक न रहे। सारा प्रेम सब जगहसे निकलकर प्रेमास्पदके लिये ही प्रेमास्पदके चरणोंमें समर्पित हो जाय। यही अनुरागकी ऊँची अवस्था है। प्रेमके आठ स्तर माने गये हैं, प्रीति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव। फिर महाभावके अनेक भेद हैं, जिनमें मोहन और मादन दो भेद बड़े ही सुन्दर हैं। दोष-दृष्टिवालोंके लिये तो ये बातें सुनने-कहनेकी भी नहीं हैं। जिनके हृदयमें पवित्र भाव है, वे इनको कह-सुन सकते हैं।

हाँ, मैं यह कह रहा था कि भगवान्की ओर यदि अपने चलना आरम्भ कर दें और भगवान्की ओर हमारे जीवनकी गति हो जाय तो मोहका नाश अपने-आप होगा। कोई कहे कि मोह रहते गति होगी कैसे? तो हाँ, यहाँ एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है। संसारमें दो तरहके साधक होते हैं और दो ही तरहके पातकी भी होते हैं। एक वे होते हैं, जिन्हें 'मोह तो है', इस प्रकार उनको मोहका पता होता है। बीमार हैं, पर बीमारीको वे आरोग्यता मानते हैं। दो तरहके बीमार होते हैं। मधुमेहमें भूख ज्यादा लगती है। कोई मधुमेहको समझे नहीं और समझे कि भूख ज्यादा लगती है, यह बड़ा अच्छा निरोगताका लक्षण है, और चीनी अधिक खाने लगे तो मर जायगा। रोगको रोग समझनेवाला और रोगको नीरोगता समझनेवाला, ये दो रोगी अलग-अलग होते हैं।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 96

The Lord stands forever ready to carry us across, waiting with the boat. His joyful boat is so excellent that there is no fear of its ever sinking; it is filled with happiness alone. Travel the entire way in delight, feasting as you go. When will it arrive? The Lord answers, “Soon, O Pārtha, for those whose minds are absorbed in me.” Arjuna, there will be no delay. Once I undertake to carry you across, and I am already ready, the crossing will not take long. There is no obstacle and no sorrow. You will cross immediately and happily. Therefore, the beautiful disposition is to desire love for the lotus feet of the Lord and begin loving them. Attachment directed toward the Lord is called love. Supreme attachment to God is called devotion. We know very little about the nature of pure attachment. Rāga, anurāga, and perfectly pure anurāga differ from one another. Vaiṣṇava scriptures describe eight levels of love, of which anurāga is the sixth. Beyond it comes bhāva and then mahābhāva, which is the very form of Śrī Rādhā. Śrī Rādhikā embodies mahābhāva. Anurāga means that no importance and not even independent existence remain for anything else. Love withdraws from every other place and is offered solely for the beloved at the beloved's feet. This is the elevated state of anurāga. The eight levels of love are prīti, sneha, māna, praṇaya, rāga, anurāga, bhāva, and mahābhāva. Mahābhāva itself has many divisions, among which mohana and mādana are especially beautiful. These matters should not even be spoken or heard by those who look for faults. Those whose hearts contain pure devotional feeling may speak and hear them.

I was saying that if we begin to walk toward the Lord and the course of our life turns toward him, delusion will disappear of itself. Someone may ask how movement is possible while delusion remains. This raises a real question. There are two kinds of practitioners in the world and also two kinds of sinners. Some know that delusion is present in them. Others are ill but regard illness as health. There are two kinds of patients. Diabetes can produce excessive hunger. If someone does not recognize diabetes, regards excessive hunger as a fine sign of health, and begins eating more sugar, that person will die. A patient who recognizes disease as disease differs from one who mistakes disease for health.

ORIGINAL Hindi and Sanskrit

Source: Scan 97

जैसे ये दो रोगी अलग-अलग होते हैं, वैसे ही मोहके दो रूप होते हैं। एक मोहग्रस्त, जो विवेकसे बिल्कुल शून्य हो गया, जिसके पास भगवान्की स्मृतिकी गुंजाइश नहीं है। उसका वर्णन गीता ७।१५ में है:

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।

माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

भगवान्ने ऐसे लोगोंको 'अधम'की श्रेणीमें रखा। अधम माने नीच। ऐसे अधम लोग पापी हैं, मूढ़ हैं, आसुर-भावके आश्रित हैं। पाप-कर्ममें गौरव मानते हैं। पाप करके अपनेको चतुर मानते हैं, बुद्धिमान् मानते हैं। पाप उन्हें बुरा नहीं मालूम होता। वे पापमें महत्त्व-बुद्धि करते हैं। ऐसे दुष्कृती लोगोंके लिये भगवान्ने कहा कि वे मुझको भजते ही नहीं। अतएव वे मूढ़ हैं, नराधम हैं। पर कुछ ऐसे भी पापी हैं जो अभ्यासवश, आसक्तिवश, कौतूहलवश, देखादेखी, आवश्यकतावश पाप कर बैठते हैं। ये सारी कमजोरियाँ हैं। यद्यपि उनके मनमें एक वेदना रहती है कि हाय-हाय, हमारा जीवन बुरे मार्गमें जा रहा है, हम गिर रहे हैं।

मोहकी ऐसी प्रबल धारा है कि वह अपने-आपकी रक्षा नहीं कर सकता। जब पाप सामने आता है तो गिर पड़ता है। पाप होनेपर पश्चात्ताप होता है, मनमें बार-बार आता है कि बहुत बुरा हो गया, अब ऐसा नहीं करेंगे। किन्तु फिर वैसा करता है, इसीको मोह कहते हैं। इस मोहमें पड़े हुए आदमीका अन्तःकरण किसी दिन कराह उठता है। हम सबके जीवनमें ऐसे क्षण बहुधा आया करते हैं, जब अपने पाप अपनेको दीखने लगते हैं। ऐसा क्षण बड़ा शुभ होता है। जीवनमें जब मनुष्यको अपने पाप दीखते हैं तो वह घड़ी बड़ी शुभ होती है। जब अपने पापोंपर पश्चात्ताप होता हो, हृदय जलता हो, तो ऐसी स्थिति होती है मोहग्रस्त पाप करनेवाले बिरले किसी सचेष्ट मनुष्यकी। देखा जाता है कि पापीकी कोई प्रत्यक्षमें सहायता नहीं करता। भले ही अपनेको बचाकर सहायता करे। चोरीका माल गुप-चुप रख ले, पर चोरी करनेमें शामिल नहीं होता, डरता है। कहता है, 'हे भाई, लोग हमपर वहम कर लेंगे, इसलिये पास न बैठा करो, अलग बैठा करो।' बेटा भी यदि बुरा कर्म कर बैठे और वह कुख्यात हो जाय तो बाप उससे किनारा कर लेता है।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 97

Just as these two patients differ, so delusion has two forms. One is the deluded person who has become entirely devoid of discrimination and has no room left for remembrance of the Lord. The Gītā 7.15 describes such people:

Evildoers do not take refuge in me: the deluded, the lowest among human beings, those whose knowledge has been stolen by māyā, and those who have assumed a demonic disposition.

The Lord places such people in the category of the lowest. They are sinful, deluded, and sheltered in a demonic disposition. They take pride in sinful acts. After committing sin, they consider themselves clever and intelligent. Sin does not appear bad to them; they attribute importance to it. The Lord says that such evildoers do not worship him at all. They are therefore deluded and the lowest among human beings. Yet there are other sinners who commit sin from habit, attachment, curiosity, imitation, or perceived necessity. All these are weaknesses. A pain nevertheless remains within their minds: “Alas, our life is moving along an evil path; we are falling.”

The current of delusion is so powerful that such a person cannot protect himself. When sin appears before him, he falls. After committing it, he regrets it and repeatedly thinks, “Something terrible has happened. I will never do this again.” Yet he repeats it. This is called delusion. One day the inner being of a person caught in such delusion cries out. Moments often come in all our lives when our own sins become visible to us. Such a moment is greatly auspicious. The hour when a person sees his own sins, repents of them, and feels the heart burn is highly blessed. It occurs in some rare, striving sinner caught in delusion. We see that no one openly assists a sinner. Someone may help while protecting himself, perhaps secretly hiding stolen goods, but fear keeps him from joining in the theft. He says, “Brother, people will become suspicious of me, so do not sit near me. Sit separately.” Even a father distances himself from a son who commits an evil deed and becomes notorious.

ORIGINAL

Hindi and Awadhi

Source: Scan 98

बाप कह देगा कि हम तो पहले ही जानते थे कि नालायक है। यह हमारे कुलको डुबोयेगा। हमारा इससे क्या वास्ता है? बेटा हो गया तो भाग्यसे हो गया। इससे हमारा क्या लेना-देना है? यह तो कुलाङ्गार है। कोई भी आदमी बुरेमें साथ नहीं देना चाहता। पर एक भगवान् ही ऐसे हैं जो पापीसे भी कहते हैं, 'आ जाओ। मेरी गोद तैयार है। मेरे द्वार बन्द नहीं। तुम महान्से महान् पाप करते हो, पर यदि मेरी गोदमें आना चाहते हो तो तुम आ जाओ। तुम्हारे पापोंको मैं धो दूँगा। तुम मेरी शरणमें आ जाओ। तेरे लिये मेरी गोद खाली है।' मलमें भरे हुए बच्चेको कभी माँ कहती है क्या कि नहाकर आओ, तब गोदमें लूँगी? मलमें भरे बच्चेकी आवाज सुनते ही माँ दौड़ती है, अपने हाथों मल साफ करती है। जब माँ ऐसा कहती और करती है, तब अनन्त माताओंका अनन्त स्नेह-सागर जिन भगवान्के अन्तःकरणमें लहरा रहा है, वे भगवान् क्या जीवकी दुर्गति देख सकते हैं? उनकी ओर मुँह होना चाहिये।

पापी आदमीको जब अपना पाप खलता है तो वह भगवान्की ओर जाता है और भगवान्की ओर जाते ही जानते हो क्या होता है? एक बड़ी विचित्र बात है। अँधेरे कमरेमेंसे निकलनेका उसने उपक्रम किया, किवाड़ खोला कि प्रकाश आया। प्रकाश अन्दर घुसना चाहता है, यह नियम है। अँधेरेमें घुसकर प्रकाश अन्धकारको मार देगा, अपना विस्तार कर देगा। इसी तरह भगवान्की ओर यदि हमने जरा-सी अपने जीवनकी गति की तो भगवान् अन्दर आने लगेंगे। उनका प्रकाश आने लगेगा। प्रकाश आया कि अँधेरा हटा। भगवान्की ओर लगनेपर मोहका नाश अपने-आप हो जायगा, करना नहीं पड़ेगा। भगवान् अपने-आप मोहरूपी नदीसे पार कर देंगे। इसलिये यह बड़े आश्वासनकी बात है। तो बड़ी सीधी बात है। तुम भगवान्के आगे रो पड़ो। रोना नकली नहीं होना चाहिये। अन्तरकी वेदना होनी चाहिये। जरूर भगवान् ऐसे वैद्य नहीं कि जिनकी दवा काम न करे और जो रोगका निदान न कर सकें। उनकी दवा अमोघ है। भगवान्की कृपाको अमोघ कहा गया है। भगवान्की जितनी शक्तियाँ हैं, उन सारी शक्तियोंमें कृपाशक्ति सर्वोपरि है। कृपाशक्तिने जहाँ काम शुरू किया, वहाँ सारी शक्तियाँ उसके अनुगत होकर सेवा करने लगती हैं:

जा पर कृपा राम के होई। ता पर कृपा करे सब कोई॥

भगवान्की कृपाशक्ति इतनी विलक्षण है कि भगवान् जिसको रोषमें भरकर मार देते हैं, कृपाशक्ति कहती है कि इसको मैं अभी आपके धाम पहुँचाऊँगी।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 98

The father may say, “I always knew he was worthless. He will ruin our family. What connection have we with him? It was merely fate that made him my son. What have I to do with him? He is the disgrace of the lineage.” No one wishes to stand beside another in wrongdoing. The Lord alone says even to a sinner, “Come. My lap is ready, and my doors are not closed. You may have committed the gravest possible sins, but if you wish to enter my lap, come. I shall wash away your sins. Take refuge in me. My lap is empty for you.” Does a mother ever tell a child covered in filth, “Bathe first, and only then will I take you in my lap”? The moment she hears the filthy child cry, she runs and cleans the child with her own hands. If a mother speaks and acts in this way, can the Lord, within whose heart surges the limitless ocean of affection belonging to infinitely many mothers, bear to watch a living being's misery? One need only turn one's face toward him.

When a sinner becomes pained by his own sin, he turns toward the Lord. Do you know what happens the very moment he turns? It is wondrous. A person begins to leave a dark room and opens the door; light immediately enters. It is the nature of light to enter. Entering the dark room, it destroys the darkness and spreads itself. In the same way, if our life moves even slightly toward the Lord, he begins to enter us and his light begins to shine within. When light comes, darkness departs. Once we become engaged in the Lord, delusion will disappear of itself; we will not have to remove it. The Lord himself will carry us across the river of delusion. This is a source of immense assurance. The matter is very simple. Weep before the Lord. The weeping must not be false; there must be pain within. The Lord is certainly not a physician whose medicine fails or who cannot diagnose the disease. His medicine is unfailing. Divine grace is said to be infallible. Among all the Lord's powers, the power of grace is supreme. Wherever grace begins its work, all the other powers follow it and begin to serve:

Upon one who receives Rāma's grace, everyone else also bestows grace.

The Lord's power of grace is so extraordinary that even when the Lord strikes someone down in wrath, grace declares, “I shall carry this one to your abode at once.”

ORIGINAL Hindi, Bengali rendered in Devanagari, and Awadhi

Source: Scan 99

भगवान् मारते हैं, कृपा तारती है। भगवान्‌की कृपाशक्ति यह नहीं देखती कि यह कौन है, कैसा है, इसके पहलेका इतिहास क्या है। कृपाशक्ति तो केवल देखती है कि अब क्या चाहता है। यदि इसकी पुकार, इसका रोना, इसका आर्तभाव सच्चा है तो कृपाशक्ति उमड़ पड़ती है उसको अपने-आप आत्मसात् करनेके लिये। कृपाशक्तिने जरा-सा जहाँ काम किया, बस सारे विघ्न अपने-आप हट जाते हैं। नये-नये विघ्न हम पैदा कर देते हैं विघ्न हटानेके नामपर। पर यहाँ दीन होकर भगवान्‌के चरणोंमें गिर जायँ। वे दीनबन्धु, पतित-पावन इस प्रकारके स्नेहमय, दयामय, करुणामय, प्रीतिमय, सौहार्दमय हैं कि हमें गले लगा लेंगे। जिनका कोई नहीं उनके वे होते हैं, 'जार केउ नाइ तुमि आछो तार।' रवीन्द्रने कहा, जिसके कोई नहीं, उसके तुम हो। वे कभी किसीके लिये इनकार नहीं करते कि यह कौन है, किस देशका है, किस वेषका है, मुसलमान है कि हिन्दू, ब्राह्मण है कि कसाई, बड़ा सदाचारी है कि व्यभिचारी, पुरुष है कि स्त्री, चाण्डाल है कि शूद्र, बच्चा है कि बूढ़ा। कुछ नहीं। वे तो केवल उसकी करुण पुकार देखते हैं। उसकी पुकारमें कैसी करुणा है, कितना दैन्य है और वह सत्य है या नहीं। भगवान्‌की ओर करुण होकर, दीन होकर जिसने पुकारा, भगवान्‌ने उसे अपना लिया।

भगवान् अन्याय नहीं करते। दया उनका न्याय है, उद्धार उनका न्याय है, अपनाना उनका न्याय है, स्वभाव है न, वे छोड़ें कहाँसे? सूर्यके सामने अगर कोई खून करके जाय तो सूर्य यह कह देगा कि हम तुम्हें प्रकाश नहीं देंगे, हम तुम्हें गर्मी नहीं देंगे? खून करनेवाला जाय या सदाचारी जाय, सूर्यका प्रकाश सबके लिये समान है। यह भगवान्‌का स्वभाव है। प्रभु-मूरति कृपामयी है। तुलसीदासजी कहते हैं, 'है तुलसी परतीत एक, प्रभु-मूरति कृपामयी है।' हमको तो यह एक विश्वास है कि भगवान् बने ही हुए हैं कृपासे। अपनी कृपाको छोड़ दें तो वे न रहें। कृपा ही उनके शरीरके अवयवोंकी सारी धातु है। भगवान्‌की कृपा सबके लिये खुले हाथों अपनेको बाँट रही है कि हमको ले लो। जरा भी निराशाकी बात नहीं है। हमें उस ओर लगना है। सारा काम वे कर देंगे। अपने जीवनकी गतिको उस ओर मोड़ लेना है। मोहका नाश फिर भगवान् कर देंगे। जब वे करते हैं, देर नहीं लगती। प्रकाशके लिये हमको केवल द्वार खोलना है।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 99

The Lord may strike down, but grace carries across. The power of divine grace does not examine who someone is, what that person is like, or what the past record contains. Grace looks only at what the person desires now. If the cry, the weeping, and the anguish are genuine, grace surges forth to absorb that person into itself. The moment grace begins to work, all obstacles fall away of themselves. We manufacture new obstacles in the name of removing obstacles. Instead, let us become humble and fall at the Lord's feet. He is the friend of the lowly and purifier of the fallen, so full of affection, mercy, compassion, love, and goodwill that he will embrace us. “You belong to the one who has no one else.” Rabindranath said: you are the one who belongs to those who have no one. The Lord never rejects anyone by asking who the person is, from what country, wearing what dress, Muslim or Hindu, brāhmaṇa or butcher, highly virtuous or adulterous, man or woman, outcaste or śūdra, child or elder. None of this matters. He looks only at the anguished cry, how much pain and humility it holds, and whether it is true. Whoever has called toward the Lord with anguish and lowliness has been made his own.

The Lord does no injustice. Mercy is his justice, deliverance is his justice, and making us his own is his justice. It is his nature, so how could he abandon it? If a murderer stands before the sun, does the sun say, “I will give you no light or warmth”? Whether a murderer or a virtuous person approaches, sunlight is the same for all. Such is the Lord's nature. The Lord's form is made of grace. Tulasīdāsa says, “Tulasī has this one conviction: the Lord's form is made of grace.” We have this single faith that the Lord himself is constituted of grace. If he were to abandon grace, he would cease to be. Grace is the very substance of every limb of his body. With open hands, divine grace distributes itself to everyone, saying, “Take me.” There is not the slightest reason for despair. We have only to turn toward him. He will do all the work. Turn the course of life in that direction, and the Lord will destroy delusion. When he acts, there is no delay. For the light to enter, we need only open the door.

ORIGINAL Hindi and Sanskrit

Source: Scan 100

बत्ती लायें, तेल लायें, लालटेन हो, दियासलाईसे उसको जलायें। कहीं हवा आ गयी तो बुझ गया। तेल नहीं मिला तो चिराग जल नहीं सकता। कहीं उसका गोला नहीं हुआ तो हवा बुझा देगी। कहीं बत्ती ही जल गयी तो रोशनी बन्द हो जायगी। पर यह ऐसी रोशनी है जिसमें तेल-बातीकी आवश्यकता नहीं। जो स्वमहिमामें स्थित हैं, स्वप्रकाश हैं, स्वस्वरूपमय हैं, ऐसे भगवान् जो हैं, उनकी कृपा क्या नहीं कर सकती? सारे मोह-तमका नाश यह कृपा कर देगी। अन्दरकी सारी बुराइयोंको निकाल देगी, अपने योग्य बना लेगी। भगवान्के शरण होनेपर, भगवान्की ओर जीवनको मोड़ देनेपर भगवान् क्या करते हैं? उसको अपने योग्य बना लेते हैं।

आरुणि विद्वान् नहीं था, विद्यायें उसकी रुचि नहीं थी; पर सारी विद्याओंमें निष्णात हो गया अकस्मात् गुरु-कृपासे। वह जानता था केवल गुरु-सेवा और गुरुके वचनोंका अनुगमन। गुरुजीने कहा, ‘जाओ, खेत सँभालो।’ पानी रोकनेका कोई दूसरा उपाय न देखकर वह स्वयं मेड़ बनकर गिर गया और रातभर पानीमें रहा। प्रातःकाल गुरुजीने पुकारा, ‘कहाँ हो बेटा आरुणि?’ उसने कहा, ‘यहाँ हूँ।’ ‘क्या कर रहे हो?’ ‘पानी रोक रहा हूँ।’ ‘कैसे?’ ‘मैं पड़ा हूँ।’ गुरुजी वात्सल्यसे द्रवित हो गये और गद्गद-कण्ठसे बोले, ‘बेटा, मेरा आशीर्वाद है, सारी विद्या तुझे अभी प्राप्त हो जाय।’ गुरुकी कृपासे उसी समय उसे सारा ज्ञान प्राप्त हो गया। ध्रुव छोटा-सा बच्चा था, बोलना नहीं आता था और भगवान् सामने खड़े थे। न उसके पास शब्द था, न भाषा, न विवेक। भागवतमें आता है कि भगवान्ने अपना शंख जरा-सा उसके कण्ठसे स्पर्श करा दिया और सारा ज्ञान उसकी वाणीपर आ गया। भगवान् जब करना चाहें तो मोह और पापके नाशमें क्या देर लगती है? देर इसलिये हो रही है कि यह देर हमें सहन हो रही है। हमारे विश्वास और चाहमें कमी है। हमारी चाह हो और भगवान्के सौहार्दपर विश्वास हो तो हम उनकी ओर मुड़ जायँगे।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 100

For an ordinary lamp we must bring a wick, oil, a lantern, and a match. A gust of wind may extinguish it. Without oil it cannot burn; without a glass chimney the wind may put it out; if the wick burns away, the light will cease. But this divine light needs neither oil nor wick. The Lord abides in his own majesty, shines by his own light, and consists of his own essential nature. What can his grace not accomplish? It destroys all the darkness of delusion, removes every evil within, and makes a person fit for him. When one takes refuge in the Lord and turns one's life toward him, he makes that person worthy of himself.

Āruṇi was not learned and had no interest in study, yet through his teacher's grace he suddenly became master of every branch of knowledge. He knew only service and obedience to the teacher. Told to tend the field, he saw no other way to stop the water and lay down as the embankment, remaining in the water all night. In the morning his teacher called, “Where are you, my son Āruṇi?” “Here.” “What are you doing?” “Stopping the water.” “How?” “By lying here.” Melted with paternal affection, the teacher blessed him to receive all learning at once, and the teacher's grace immediately bestowed all knowledge. Dhruva too was a small child who did not know how to speak, while the Lord stood before him. He possessed neither words, language, nor discrimination. The Bhāgavata says that the Lord lightly touched his throat with the conch and all knowledge entered his speech. When the Lord wishes to act, how long can delusion or sin survive? There is delay only because we tolerate delay. Our faith and longing are deficient. If longing arises and we trust the Lord's goodwill, we will turn toward him.

ORIGINAL
Hindi and Sanskrit

Source: Scan 101

भगवान्‌की ओर जीवनकी गति होते ही प्रकाश मिलेगा। यह बातोंसे नहीं होता। बात चाहे हम न करें, बात चाहे हम बहुत करें, भगवान् अन्दरकी वर्तमान चीज देखते हैं, पहलेकी नहीं। इस समय सच्चाईके साथ हम क्या चाहते हैं, यह भगवान् ठीक-ठीक जानते हैं, क्योंकि वे अन्तर्यामी, सूक्ष्मदर्शी हैं। हम अपने-आपसे धोखा खा सकते हैं, पर भगवान् धोखा नहीं खा सकते। वे देखते हैं कि इसकी चाहमें, प्रपत्तिमें, मेरी ओर मुड़नेकी इच्छामें क्या सच्चाई है। बस वह चाह होनी चाहिये, फिर भगवान् अपने-आप सारा काम कर लेंगे। हमें एक ही काम करना है, उनका सतत स्मरण बना रहे।

‘तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलता।’ सब समर्पण कर दिया। हमारे पास बचा एक भगवान्‌का स्मरण। स्मरण क्षणभर नहीं होता तो वह व्याकुल हो जाता है कि जीवन खो गया। और न कुछ करना है, न पाना, देना या लेना है। भगवान् कहते हैं, ‘निश्चिन्त रहो, मा शुचः।’ यह गीतामें भगवान्‌के उपदेशका बड़ा सुन्दर अन्तिम वाक्य है। मत शोक करो, मत चिन्ता करो। हम पापी हैं तो कैसे न करें? पहले कह दिया कि पापोंसे मैं बचा दूँगा। क्यों? क्योंकि पहले कह दिया, ‘मामेकं शरणं व्रज।’ एक मेरी शरणमें आ जाओ। सारा पाप, ताप, जलन और मोह सदाके लिये मिट जायगा। अर्जुनने यही कहा, ‘नष्टो मोहः।’ मेरे मोहका नाश हो गया। मोहका नाश हुआ कि सारा काम बना। उसके बाद जीवन भगवान्‌के अनुगत बन जाता है; न होनेतक भोगके अनुगत रहता है। भोगपरायण जीवनमें सारी चेष्टा भोग-प्रेरित और भोगके लिये होती है, जबकि भगवत्परायण जीवनमें सारी चेष्टा भगवान्‌की प्रेरणासे और भगवत्प्रीत्यर्थ होती है।

हमारी संस्कृतिमें कहा है, ‘यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।’ विद्यार्थी ब्रह्मचर्य-आश्रममें उस परमात्माको प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रविष्ट हुआ।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 101

Light is obtained the moment life's movement turns toward the Lord. This does not happen through talk. We may speak little or much; the Lord sees what is within now, not the past. He knows exactly what we sincerely desire at this moment, for he is the indwelling and subtle seer. We may deceive ourselves, but cannot deceive him. He sees the truth present in our longing, surrender, and desire to turn toward him. Let that longing be genuine, and he will do all the work. Our one task is to maintain constant remembrance of him.

“All conduct is offered to him, and there is supreme anguish when he is forgotten.” Everything has been surrendered; only remembrance of the Lord remains. If it ceases even for a moment, the devotee becomes distraught, feeling life has been lost. Nothing else is to be done, gained, given, or received. The Lord's beautiful final instruction in the Gītā is, “Remain free from anxiety. Do not grieve.” How can sinners refrain from worry? He has already said he will free us from every sin because he first says, “Take refuge in me alone.” Enter his sole refuge, and all sin, anguish, burning, and delusion disappear forever. Arjuna therefore says, “My delusion is destroyed.” Once delusion is destroyed, everything is accomplished. Life thereafter follows the Lord; until then it follows enjoyment. In a pleasure-oriented life, every effort is impelled by and made for enjoyment. In a God-centered life, every effort is inspired by the Lord and made for his pleasure.

Our tradition says, “Desiring that, they practice brahmacarya.” The student entered the stage of brahmacarya from the desire to attain the Supreme Self.

ORIGINAL Hindi and Awadhi

Source: Scan 102

विद्या अर्थकी प्राप्तिके लिये, क्योंकि आवश्यकता है; परन्तु वह अर्थ हो मोक्षके सम्मुख जानेवाला। यदि ऐसा है तब तो अर्थ, नहीं तो अनर्थ। आजके युगमें हम प्रत्येक चीज आर्थिक दृष्टिकोणसे देखते हैं। जैसे हमारा आश्रम है, हमारा विद्यालय है, हमारी संस्था है, हमको इससे क्या आय होगी, क्या मिलेगा इससे, यह देखते हैं। 'यदिच्छन्तः' नहीं, भगवान्‌की प्राप्तिके लिये नहीं। हमको आर्थिक लाभ क्या होगा, हम यह देखते हैं। इसलिये जहाँ आर्थिक लाभ नहीं हो, वह धर्म भी आज हमारे लिये उपेक्ष्य बन गया है। वास्तवमें लाभकी जगह थी हमारे यहाँ परमार्थ। सारे संस्कार हमारे परमार्थको लेकर होते थे। जीवनका प्रारम्भ भी परमार्थमें और जीवनका अन्त भी परमार्थमें। इससे भगवान्‌की ओर मुड़ा हुआ जीवन भगवान्‌में लग जाता है। जहाँ हमारे जीवनका ध्येय भगवान् हो जाते हैं, अर्थात् भगवान् हमारे जीवनके सामने हो जाते हैं और हमारा जीवन भगवत्परायण हो जाता है, वहाँ प्रत्येक चेष्टा भगवत्प्रेरित होती है और प्रत्येक चेष्टाका फल वह चाहता है भगवत्प्रीति। ठीक इससे उल्टा भोगमें होता है। मन्दिरमें जाकर भी वह भगवान्‌से कहेगा, महाराज धन मिल जाय, पुत्र मिल जाय, अधिकार मिल जाय, यश मिल जाय। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं:

तुलसी हरिनाम सुधा तजि, सठ हठि पियत विषय-विष माँगि॥

मूर्ख माँग-माँगकर जहर पीता है। भगवान्‌ने कहा, हम नहीं देंगे तुमको जहर, तुम हमारे प्यारे हो। वह कहता है, नहीं महाराज, मीठा है, दे दो। भोगपरायण व्यक्तिकी सारी चेष्टा भोगप्रेरित होगी। भोगपरायण जीवन और भागवत-जीवनमें यह बड़ा अन्तर है। जब भोगमें वितृष्णा होने लगे, भोग बुरे लगने लगें, भोगसे चित्त हटने लगे, इनमें ऊबने लगे, दूसरेके भोग देखकर चित्त ललचाये नहीं, तब समझना चाहिये कि जीवन भगवान्‌की ओर मुड़ रहा है।

एक बारकी बात है, मैं कुम्भमें गया था। हमारे पास एक मित्र साधु थे, बड़े अच्छे आदमी, नाम हम नहीं बतायेंगे। बड़े सात्त्विक आदमी और बड़े सरल हृदयके साधु। एक दिन हमसे बोले, भाईजी, कुछ गड़बड़ मालूम होती है। भगवान्‌की कृपा शायद कम है। हमने कहा, क्यों? वे बोले, देखिये न, उनके कैम्पमें तो बड़े-बड़े मिनिस्टर और बड़े-बड़े धनी लोग आते हैं तथा बड़ा चढ़ावा होता है, बहुत ज्यादा यज्ञ हो रहे हैं, और हमारे यहाँ लोग आते ही नहीं।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 102

Education is pursued for wealth because material means are necessary, but that wealth should lead one toward liberation. If it does, it is truly wealth; otherwise it is misfortune. In the present age we view everything economically. We ask what income our āśrama, school, or institution will produce and what we shall gain from it. We no longer act from the scriptural words “desiring that,” meaning for the attainment of the Lord, but ask only what financial advantage we shall receive. Religion that offers no economic gain has therefore become negligible to us. In our tradition, however, the true gain was the highest spiritual good. Every rite was directed toward it. Life began in the highest good and ended in it. A life turned toward the Lord thus becomes absorbed in him. When the Lord becomes life's goal and stands always before us, life becomes God-centered. Every effort is then inspired by him and seeks the fruit of his pleasure. A pleasure-centered life is precisely the opposite. Even in the temple it asks, “Lord, grant me wealth, a son, power, and fame.” Gosvāmī Tulasīdāsa says:

Abandoning the nectar of Hari's name, the fool obstinately begs to drink the poison of sense pleasure.

The fool repeatedly begs to drink poison. The Lord says, “I shall not give you poison, for you are dear to me,” but he insists, “No, Lord, it is sweet. Please give it to me.” Every action of a pleasure-centered person is prompted by enjoyment. This is the great difference between a pleasure-centered life and a life devoted to the Lord. When distaste for enjoyment arises, pleasures appear disagreeable, the mind withdraws from them and grows weary of them, and another person's pleasures no longer provoke craving, one should understand that life is turning toward God.

Once I went to the Kumbha. A friend of ours was a saintly man, sincere, sāttvika, and simple-hearted. I shall not give his name. One day he said, “Brother, something seems wrong. Perhaps the Lord's grace upon us is less.” I asked why. He replied, “Look. Great ministers and wealthy people visit their camp, large offerings are made there, and many sacrifices are being performed, while no one comes to us.”

ORIGINAL Hindi and Sanskrit

Source: Scan 103

उन्होंने यह दुर्भावसे नहीं कहा, परंतु एक मनोवृत्तिका पता लगता है कि दूसरेके भोगको देखकर जी ललचाता है। अपने पास भोग न होनेपर हम भगवान्‌की अकृपा मानते हैं और अपनेको अभागा। यह प्रत्यक्ष भोगाश्रय है। दूसरेके पासकी वस्तुको देखकर उसपर भगवान्‌की कृपा मानना तथा हमारे पास नहीं है यह देखकर अपनेपर भगवान्‌की अकृपा मानना, यह प्रत्यक्ष सिद्ध करता है कि उस वस्तुमें, जिसके मिलनेपर अपनेको भाग्यवान् मानता है तथा जिसके न मिलनेपर अभागा मानता है, उस वस्तुमें उसकी मुख्य बुद्धि है, उस वस्तुको ही वह परम श्रेय, साध्य मानता है। और उसी मुख्य बुद्धिसे भगवान्‌से प्रार्थना करता है कि भगवान् हमारा यह काम कर दें। इसी बुद्धिसे वह भगवन्नाम लेनेपर कहता है कि भगवान्, हमने आज लाख नाम लिये हैं। लाख नाम हम अर्पण करते हैं, बदलेमें भगवान् हमको ये चीज दे दें।

भोगपरायण मनुष्यकी साधना भी भोगकी सेवामें लगेगी। उसकी उपासना भोगकी सेवामें लगेगी। वह भगवान्‌से भी कहेगा कि हम आपके भक्त हैं, देखिये हम आपका नाम जपते हैं, हमें तो आपका ही आसरा है, अब आपके बिना हम किससे कहें। यह हमारा लड़का मर रहा है, इसे आप बचा लें। ऐसा करना कोई बुरी चीज नहीं है, पाप नहीं है, पर मूर्खता तो है ही। जो भगवान् अपने-आपको देते हैं, उनसे केवल लड़केको बचानेकी प्रार्थना करना अविवेक तो है ही। लड़का तो आज नहीं कल मरेगा, या पहले हम मर जायँगे। लड़केको तो छोड़ना पड़ेगा ही। भगवान्‌से हमने क्या चाहा? हमारी जो भोग-बुद्धि है, वह भगवान्‌से भी भोग-सेवाका काम करवाना चाहती है। पाप एवं बुरे कर्म करनेकी अपेक्षा भगवान्‌से माँगनेमें कोई बुराई नहीं, परंतु भगवान्‌की महत्ताका ज्ञान तो नहीं है।

भगवान्‌की ओर मुख मोड़ लेनेपर भोग बुरे मालूम होने लगते हैं। मैं एक बार कलकत्ता गया। मैंने वहाँ उन लोगोंके सामने भी ऐसी ही कुछ बातें कहीं। बहुत बड़े-बड़े धनी लोग मुझसे मिले। जिस-जिससे एकान्तमें बात हुई, सबने कहा कि हम बहुत दुःखी हैं। अब जिनके पास पैसा नहीं है वे मानते हैं कि न जाने इनको कितना सुख होगा, क्योंकि इनके पास सम्पत्ति है; पर उनके दुःखके कारण दूसरे हैं। जबतक भोगपरायणता है तबतक दुःख रहेगा ही रहेगा। इसलिये भगवान्‌की ओर मुड़ना ही चाहिये।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 103

He did not speak from ill will, but his words revealed a mental tendency: the heart begins to covet when it sees another person's enjoyments. When we lack such enjoyments, we take this as the Lord's displeasure and call ourselves unfortunate. This is plainly dependence upon enjoyment. To regard another person's possessions as proof of divine grace, and our lack of them as proof that grace has been withheld, shows that our highest valuation rests in that object. Possessing it makes us fortunate and lacking it makes us unfortunate, so we treat it as the supreme good and goal. With that same outlook we pray that the Lord will perform some task for us. After chanting the divine name, we say, “Lord, today I repeated your name a hundred thousand times. I offer those repetitions to you; in exchange, please give me this thing.”

Even a pleasure-centered person's spiritual practice becomes a servant of enjoyment. His worship too serves enjoyment. He says, “Lord, I am your devotee. See, I repeat your name and depend upon you alone. To whom else can I speak? My son is dying; please save him.” Such a prayer is neither evil nor sinful, but it is certainly foolish. The Lord offers his very self, yet one asks him merely to save a son. This shows a lack of discrimination. The son will die today or tomorrow, or perhaps we shall die first; separation from him is inevitable. What have we asked of God? Our pleasure-seeking intelligence wishes to employ even him in the service of enjoyment. Asking the Lord is better than committing sin or evil deeds, but it still shows ignorance of his greatness.

When we turn toward the Lord, enjoyments begin to appear distasteful. Once in Calcutta I spoke similarly before a gathering. Many extremely wealthy people met me privately, and every one said, “I am deeply unhappy.” Those without money imagine how happy the wealthy must be because they possess property, yet the causes of their sorrows are merely different. As long as attachment to enjoyment remains, sorrow will certainly remain. We must therefore turn toward the Lord.

ORIGINAL Hindi and Sanskrit

Source: Opening continuation on scan 104 before the next printed section

भगवान्‌की ओर लगनेपर भगवान्‌की कृपासे इस मोहका नाश प्रारम्भ हो जाता है। मैं तो यह कहूँगा कि मिट जाता है तुरंत, पर यदि वैसा न हो तो यह मानना चाहिये कि कम-से-कम इतना होने लगनेपर भोगोंसे वितृष्णा होने लगती है। भोगोंमें हीन बुद्धि होती है। भोगोंमें सुखकी कल्पना नहीं होती। भोगमें भगवान्‌की कृपाके दर्शन नहीं होते। चित्त भगवान्‌की ओर जानेके लिये उतावला हो उठता है। ऐसी स्थिति जब होने लगे तब समझना चाहिये कि हम मानव-जीवनके ठीक रास्तेपर आ गये। आगे बढ़ना है। भगवान् बढ़ायेंगे, यह सच्ची बात है।

मोह-नाशके दो उपाय हैं। एक तो भोगोंमें, विषयोंमें दुःख इत्यादि देख-देखकर चित्तको हटाना, मोह-नदीको तैरकर पार करना; और दूसरा अपने-आपको भगवान्‌के चरणोंमें डालकर नौका लिये हुए उनको बुला लेना, बड़े मजेमें उसपर सवार होकर उनको देखते हुए, उनसे बातचीत करते हुए, उनसे मिलते हुए, उनके रसका ग्रहण करते हुए सुखपूर्वक निश्चिन्तताके साथ पार हो जाना। मोह-नदी अपने-आप पीछे रह जायगी।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Opening continuation on scan 104 before the next printed section

When one becomes engaged in the Lord, his grace begins to destroy this delusion. I would say it vanishes at once; but even if that does not occur, one may know that the process has begun when distaste for enjoyments arises, they are judged inferior, happiness is no longer imagined within them, and material enjoyment is no longer regarded as evidence of grace. The mind then becomes eager to go toward the Lord. When this condition begins, one should understand that one has reached the right path of human life. One must advance, and the Lord will carry one forward. This is true.

There are two ways to destroy delusion. One is to perceive sorrow and the like in enjoyments and sense objects, withdraw the mind from them, and swim across the river of delusion. The other is to cast oneself at the Lord's feet and call him with his boat. One then boards in delight and crosses happily and without anxiety, gazing upon him, conversing with him, meeting him, and tasting his divine rasa. The river of delusion falls behind of itself.

CHAPTER 13

भगवत्कृपा

Divine Grace

Source scan pages 104–116

ORIGINAL Hindi, Sanskrit, and Awadhi

Source: Scan 104, beginning at the printed section heading, through scan 108

भगवत्कृपा

भगवान्ने गीतामें आज्ञा की है, 'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर।' सर्वकालमें मेरा स्मरण करो। यह जीवनमें उतारनेकी बात है। हमारा प्रत्येक क्षण भगवान्के स्मरणमें बीते। भगवान् कैसे हैं और क्या हैं, इसका निर्णय करनेकी आवश्यकता नहीं है। जिसके मनमें जैसे भगवान् हैं, चाहे वे निर्गुण-सगुण, साकार-निराकार, विशेष-निर्विशेष हों; उनमें भी चाहे भगवान् राम हैं, कृष्ण हैं, नारायण, दुर्गा, शिव, कोई रूप, कोई नाम हो; जिसका मन जहाँ लगे, जिसके लिये जो नाम-रूप रुचिकर हो, उसीका स्मरण करे। स्मरण नामका करे, लीलाका करे, स्वरूपका करे अथवा भगवान्के तत्त्वका करे। जिसका मन जहाँ लगता है, उसीका स्मरण करे; परंतु भगवान्के साथ चित्त जुड़ा रहे, यह मुख्य बात है। यही जीवनमें उतारनेकी बात है, जिसका निश्चित फल है भगवान्की प्राप्ति। इसमें जरा भी संदेह नहीं है।

'मामेवैष्यस्यसंशयम्', ये भगवान्के प्रतिज्ञावचन हैं कि यह मुझको ही प्राप्त होगा, निःसन्देह। जीवनमें निरन्तर याद रखनेकी बात यह है कि हमारे जीवनका कोई भी क्षण भगवान्के स्मरणसे रहित न बीते। यह बात तो मैंने कही स्मरणकी। दूसरी जो उत्तम बात है वह है नाम-जपकी। जीभके द्वारा भगवान्के नामका जप, यह बहुत सरल, बड़ा सीधा साधन है। इसमें किसी प्रकारसे कोई ऐसी बात नहीं, जो आपत्तिजनक हो। केवल जीभसे अभ्यास डाल लेना है कि भगवान्का जो भी नाम रुचे उसीकी जीभ निरन्तर रटन करती रहे; जीभके द्वारा भगवान्के नामकी आवृत्ति निरन्तर होती रहे। उससे क्या होगा कि जितने भी पूर्वके मल हैं, संचित पाप हैं, वे नष्ट हो जायँगे। यह बड़ी आवश्यक बात जीवनमें उतारनेकी, करने-करानेकी है।

तीसरी बात जो और भी आवश्यक है, वह यह है कि भगवान्के कृपा-बलपर भगवत्प्राप्तिके सम्बन्धमें असन्दिग्ध हो जाना; माने भगवान्की प्राप्ति मुझे इसी जीवनमें भगवान्की कृपाके बलपर अवश्य-अवश्य होगी, इस प्रकारका मनमें निश्चय कर ले। यह भगवत्प्राप्तिमें बड़ा सहायक है। अपनी असमर्थता, अपनी अयोग्यता, अपना अनधिकारपन, ये सबके होते हुए भी भगवान्की कृपामें जो बल है वह इतना अपरिमित है, इतना असीम है, इतना प्रभावशाली है कि उसका आश्रय लेनेपर सारे दोष, सारे विघ्न, सारी अड़चनें अपने-आप उसके कृपाके प्रभावसे टल जाती हैं। 'मच्चितः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।' यह भगवान्ने स्वयं घोषणा की है कि मेरे प्रसादसे, मेरे अनुग्रहसे तुम सारे-के-सारे विघ्नोंको लाँघकर आगे बढ़ जाओगे, विघ्नोंपर तुम विजय प्राप्त कर लोगे। बस, तुम केवल एक काम करो कि मेरी कृपापर अपने-आपको छोड़ दो; 'मच्चित' बन जाओ। भगवान्की कृपाका भरोसा जगत्में सबसे बड़ा भरोसा है। इससे बढ़कर कोई शक्ति नहीं, इससे बढ़कर कोई दूसरा उपाय नहीं, कुछ नहीं। वस्तुतः विश्वसनीय यही हैं कि:

है तुलसी परतीति एक, प्रभु-मूरति कृपामयी है।

तुलसीदासजी कहते हैं, मेरे मनमें बस एक यही विश्वास है। अपनेपर मुझे विश्वास नहीं। अपने साधनोंपर मुझे विश्वास नहीं। अपनी मन-इन्द्रियोंपर मुझे विश्वास नहीं। ये सब-के-सब प्रभुसे विमुख हैं।

मो मन कबहूँ तुमहि न लागौ।
ज्यों छलछाँड़ि स्वभाव निरंतर रहत विषय अनुरागौ।।

मन मेरा कभी आपमें लगा ही नहीं। इस तरह आपसे विमुख यह निश्चल होकर स्वाभाविक ही विषयोंका प्रेमी हो रहा है। विषयोंके प्रेममें दो बातें हैं: (१) विशेष मनको लगाना नहीं पड़ता, वह स्वाभाविक लगा हुआ है, (२) निरन्तर लगा हुआ है और निश्चल लगा हुआ है। मनका विषयोंमें लगनेमें कोई दम्भ नहीं है, कपट नहीं, वह छलरहित निरन्तर स्वभावसिद्ध विषयोंमें लगा है। फिर कहा, मेरे मनकी दशा, सारी इन्द्रियोंकी दशा, 'सकल अंग पदविमुख नाथ!' सारे अंग मेरे हैं पर आपके चरणोंसे विमुख हैं। केवल एक जीभने, एक मुखने नामकी ओट लयी है, परन्तु सबसे बड़ी चीज मेरे पास है, वह यह कि:

है तुलसी परतीति एक, प्रभु-मूरति कृपामयी है।

यह मेरा अनन्य विश्वास है, यह मेरा एकान्त विश्वास है, एकनिष्ठ विश्वास है। मेरे प्रभु साकार हैं। ये कृपासे बने हुए हैं। जो कृपासे बने हैं, जो कृपामय हैं वे कृपा करेंगे ही। मैं कैसा भी जीव हूँ, क्यों न हूँ। अब उनकी जिसपर कृपा होगी उसके लिये कौन-सी चीज बाकी है? कौन-सी बाधा, कौन-सा विघ्न उसको भटका सकता है? सारी अड़चनें चूर-चूर हो जाती हैं भगवान्की कृपाशक्तिके सामने। भगवान्की कृपाके बलपर इसी जीवनमें, इसी जन्ममें भगवत्प्राप्तिके सम्बन्धमें निश्चय कर ले कि भगवान्की प्राप्ति होगी ही, होगी ही, होगी ही। यह जीवनमें उतारनेकी बात है।

चौथी बात जो परसों रातको हुई थी, पहले भी हो चुकी है, वह यह है कि प्रत्येक प्राणीमें, संसारके प्रत्येक जीवमें भगवान् हैं अथवा भगवान् उन जीवोंके रूपमें प्रकट हैं। उनमें भगवान् अथवा वे ही भगवान्, दोनों ही बातें ठीक हैं। यह समझ करके, यों निश्चय करके, अपने मनमें और व्यवहारमें स्मृतिका निरन्तर रहना आवश्यक है। इस चीजको जीवनमें उतार ले। इसको फिरसे दोहराता हूँ, क्योंकि यह बहुत कामकी चीज है। लड़का सामने आये, अपनी पत्नी सामने आये, नौकर सामने आये, भंगीसे काम पड़े, किसीसे काम पड़े, बस तत्काल इस बातको याद कर ले कि इस रूपमें उनके सामने पड़ते ही ये मेरे इष्टदेव हैं और मन-ही-मन प्रणाम कर ले। और प्रणाम करनेके बाद जो व्यवहार करना हो उस व्यवहारके लिये उससे आज्ञा माँग ले। आपका स्वाँग नौकरका, मेरा स्वाँग मालिकका; आपका स्वाँग पत्नीका, मेरा स्वाँग पतिका; आपका स्वाँग बेटेका, मेरा स्वाँग बापका। इन स्वाँगोंके अनुसार आपकी आज्ञा माननेके लिये मैं व्यवहार करूँ। परन्तु नाथ, मुझे यह शक्ति दें, बल दें, यह स्मृति दें कि मैं इस बातको कभी भूलूँ नहीं कि इस रूपमें मेरे सामने साक्षात् आप हों।

इस बातको कहनेमें कठिनाई नहीं होती, परंतु अभ्यासमें आनी चाहिये। फिर आपको दिनभर भगवान्के दर्शन होंगे और दिनभर आपलोग जो करेंगे उसके द्वारा भगवान्का ही पूजन होगा। यही बात गीता समर्थित करती है:

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।
(गीता १८।४६)

जितना भी यह संसार है, जगत्-प्रपञ्च है, चराचर भूत है, यह सब-का-सब निकला है भगवान्से और सबमें भगवान् भरे हैं। भगवान् सब जगह हैं, सब समय हैं और सबमें हैं। ऐसी अवस्थामें भगवान्का पूजन हम चाहे जहाँ, चाहे जब, चाहे जिस रूपमें कर सकते हैं। 'स्वकर्म' पूजनकी सामग्री ही है। अपने स्वाँगके अनुसार बरतना है और यह स्मरण रखते हुए कि भगवान् हैं, स्वकर्मसे उनकी पूजा की जाती है। यह बात याद रखनेकी और जीवनमें उतारनेकी है। इससे बहुत बड़ा लाभ प्रत्यक्ष मिलेगा। आप एक दिन करके देखें, घंटेभर करके देखें, इस साधनको। जो सामने आवे तत्काल याद कर लें कि इस रूपमें नारायण आये, तो सचमुचमें वे नारायण ही होंगे। तब आपको नारायणकी अनुभूति होने लगेगी, आपको नारायणका दर्शन होने लगेगा। यह बात करके देख सकते हैं।

फिर चार बातोंको धारण करें: (१) निरन्तर भगवान्का चिन्तन, (२) जीभके द्वारा निरन्तर भगवान्का नाम-जप, (३) भगवान्की कृपाके बलपर अपनी भगवत्प्राप्तिमें संदेहका न रह जाना, (४) सब जगह भगवान्को देखकर व्यवहार करना। ये चार बातें भजन-सम्बन्धी पारमार्थिक हैं।

अब कुछ बातें व्यवहारकी हैं। व्यवहारमें एक बात जीवनमें उतारनेकी है। वह बड़ी सुन्दर बात है। यह जीवनमें अगर उतर जाय तो सब व्यवहार अपने-आप सिद्ध हो जायगा। व्यवहारमें कहीं गड़बड़ रहेगी ही नहीं। एक ही बात है, 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।' जो अपने प्रतिकूल पड़ता हो उसे दूसरोंके लिये मत करो। बस, इस कसौटीपर अपनेको कस ले और करे। जो-जो बातें हमें अपने मनसे बुरी लगती हैं, दूसरेके साथ वह-वह न करे। हमारे लिये जो प्रतिकूल है, दूसरेसे उसका व्यवहार न करे। जैसे हमें कोई गाली दे तो प्रतिकूल है, हमारा अपमान करे, अहित करे, हमारे साथ प्रेमका व्यवहार न करे, हमारी किसी प्रकारसे अनिष्ट कामना करे इत्यादि जितने भी ऐसे कार्य हैं वे सब काम हमको अपने मनमें बुरे लगते हैं, ऐसे काम दूसरेके साथ स्वयं भी न करें। जब व्यवहार करना हो तो यह सोचें कि इसकी जगह मैं होता और मेरी जगह यह होता तो मैं क्या चाहता? वही यह चाहता है मुझसे। इस बातको सोचकर, समझकर, जानकर जो बातें अपने मनके अनुकूल हों वह करें। यदि कोई हमारा आदर-सत्कार करता है, इष्ट-व्यवहार करता है, प्रेम-व्यवहार करता है, हमारी सेवा करता है, हम रोगी हैं तो हमें दवा देता है, हम असहाय हैं तो हमारी सहायता करता है इत्यादि, तो हम अच्छा समझते हैं, मानते हैं। जो-जो बातें हमें अच्छी लगती हैं, वह-वह दूसरेके साथ करें।

ऐसे व्यवहारमें चार बातें मुख्य हैं। इन चार चीजोंका ख्याल रखें व्यवहारमें। एक तो यह कि कभी किसीका अपमान न करें, सबका सम्मान करें, एक नौकरका भी जिसको हम अपनेसे छोटा मानते हैं। उसके भी दिलमें कभी यह भाव न पैदा होने दें कि हमारा अपमान कर रहे हैं, क्योंकि हम छोटे हैं, नीचे दर्जेके हैं। अपना पुत्र, अपनेसे नीचे दर्जेका कोई भी आदमी हो, उसके साथ व्यवहार करनेमें उसका सम्मान बना रहे। ऐसी बोली बोलें, ऐसा आचरण करें कि मन उसके सम्मानकी रक्षा करता हुआ काम करे। दूसरी चीज, व्यवहारमें कपट न करें। दूध-पानी साथ बिकता है, पर जरा-सी जहाँ खटाई पड़ी, दो-चार बूँद भी, कि फट जाता है, दूध अलग, पानी अलग। तो व्यवहारमें कपट न हो, सच्चा व्यवहार हो। हम सच्चाई चाहते हैं। तीसरी बात, प्रेमका व्यवहार हो। प्रेमके व्यवहारका अर्थ क्या है? दूसरेको सुख मिले, ऐसा व्यवहार हो। यह प्रेमका सूत्र है। एक ही सूत्र समझ लेना चाहिये कि हमारा जिसमें प्रेम है, हम उसको सुखी देखना चाहते हैं। अब इसके द्वारा हम सुखी हों, ऐसा जहाँ भाव है, वहाँ प्रेम नहीं,

वहाँ काम है। ‘तत्सुखे सुखित्वम्’ नारदजीका प्रेमसूत्र है यह। उसके सुखमें सुखी होना, उसके दुःखमें दुःखी होना, यही प्रेमका लक्षण है। प्रेमका सीधा अर्थ है सुख देना, सुख पहुँचाना। अतः प्रेमका व्यवहार करो। ऊपरी सुख न हो; यह समझें कि उससे सुख होगा या दुःख।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scan 104, beginning at the printed section heading, through scan 108

Divine Grace

The Lord commands in the Gītā, “Therefore remember me at all times.” This teaching must enter our lives. Let every moment pass in remembrance of God. There is no need to determine precisely what he is like. One may conceive him as without qualities or with qualities, formless or embodied, differentiated or undifferentiated; one may love him as Rāma, Kṛṣṇa, Nārāyaṇa, Durgā, Śiva, or by any other form and name. Let each person remember the name and form that attracts the heart. One may remember his name, līlā, form, or essential reality. The important thing is that the mind remain joined to him. The certain fruit is God-realization, and there is no doubt of it.

“You shall come to me alone, without doubt.” This is the Lord's pledge. No moment of life should pass without remembering him. A second excellent practice is repetition of the divine name with the tongue. It is exceedingly simple and contains nothing objectionable. Train the tongue to repeat without interruption whatever divine name it loves. All former impurities and accumulated sins will thereby be destroyed. This is an essential practice to embody and encourage.

A third and still more necessary matter is to become completely free of doubt about attaining God through the power of his grace. Resolve inwardly, “By divine grace I shall assuredly attain the Lord in this very life.” This greatly assists realization. Despite our incapacity, unworthiness, and lack of qualification, grace is so measureless, boundless, and powerful that, upon taking refuge in it, every defect, obstacle, and impediment withdraws through its influence. The Lord himself declares, “With your mind fixed on me, by my grace you shall cross all difficulties.” Entrust yourself to grace and become absorbed in him. No reliance in the world is greater, no power higher, and no method more effective. Tulasīdāsa says that he has this one conviction: the Lord's very form is made of grace.

He has no confidence in himself, his practices, his mind, or his senses, for all are turned away from the Lord. His mind has never truly rested in God; free of all pretence, it remains naturally and constantly attached to objects. Attachment to objects needs no special effort and remains continuous and unwavering. There is no hypocrisy in it. All his limbs are turned away from the Lord's feet, and only the tongue has taken shelter behind the name. Yet he possesses one supreme treasure, the single-minded conviction that the Lord's form is grace itself. The Lord made of grace must bestow grace. Whatever kind of being one may be, once grace descends, what remains unattained and what obstacle can mislead one? Every obstruction is shattered before divine grace. Relying upon it, one should resolve that God-realization will certainly occur in this very birth.

The fourth teaching is that God dwells in every creature, or that he himself appears as every creature. Both formulations are true. Keep this remembrance continuously in thought and conduct. When a son, wife, servant, sanitation worker, or anyone else appears before you, remember at once, “My chosen Lord stands before me in this form,” and bow inwardly. Then ask his permission for the conduct appropriate to the roles being played: you play servant and I master, you wife and I husband, you son and I father. Pray for the strength never to forget that it is the Lord himself standing before you in that form. Once this becomes practice, the entire day will be filled with visions of God, and all one's actions will become worship.

The Gītā supports this: “From whom all beings arise and by whom all this is pervaded, worshipping him through one's own work, a human being attains perfection” (18.46). The whole moving and unmoving universe has arisen from God and is filled with him. He is everywhere, at all times, and within everyone. We may therefore worship him anywhere, at any time, and in any form. Our own work is the material of worship. We act according to the role entrusted to us while remembering that the Lord is present, and thus worship through our work. Try this practice for a day or even an hour. Remember that Nārāyaṇa has come in the form of whoever appears, and the experience and vision of Nārāyaṇa will begin.

Four spiritual disciplines have therefore been given: constant contemplation of God, ceaseless repetition of his name with the tongue, freedom from doubt about attaining him through grace, and conduct toward all beings while seeing him everywhere. In practical conduct there is one beautiful rule which, if embodied, sets all relationships right: “Do not do to others what is adverse to yourself.” Test yourself against this measure and refrain from doing to others what your own heart finds painful. Abuse, humiliation, injury, loveless treatment, and hostile wishes hurt us, so we should never direct them toward another. Before acting, exchange places in imagination and ask what we would desire in the other person's position. Give others the respect, affection, care in sickness, and help in helplessness that we ourselves welcome.

Four qualities are central to such conduct. First, preserve everyone's dignity, including that of a servant, a child, or anyone considered lower in station. Never let another feel humiliated because of rank. Speak and act with care for that person's honor. Second, let conduct be without deceit. Milk mixed with water remains together until a few drops of acid separate them; likewise deception breaks relationship. We ourselves desire truth, so our dealings must be true. Third, act in love, meaning so as to give the other happiness. Wanting the other to make us happy is desire, not love. Nārada's aphorism is “happiness in the beloved's happiness.” To rejoice in another's joy and grieve in another's sorrow is the sign of love. Yet the happiness given must not be merely superficial; discern whether it will bring true happiness or harm.

ORIGINAL Hindi, Sanskrit, Bengali rendered in Devanagari, and Awadhi

Source: Scans 109 to 113

जैसे कोई बच्चा भूलसे कुपथ्य चाहता है तो वहाँ अगर माता केवल उसको सुख पहुँचानेके लिये, जानती हुई कि इसके लिये हानिकारक है, पर अभी यह राजी हो जायगा, कुपथ्य दे दे तो उसका हित नहीं करती। तो सुख जो हो वह हितकर ही होना चाहिये। व्यवहारमें खास तौरपर चार बातें देखें। सभी बातोंमें यह शर्त लागू है: जो-जो बात आत्माके प्रतिकूल हो, वह किसी दूसरेके साथ न करे; जो अनुकूल हो वह करे। उसमें भी चार बातें देखें: (१) सम्मान, (२) सत्य, (३) प्रेम, (४) हित। इन चार बातोंसे कर्मको पवित्र करके व्यवहार करें। जिस व्यवहारमें इन चार बातोंकी कमी हो उस व्यवहारसे डरें कि हम यह भूल कर रहे हैं; इसका परिणाम कुछ-न-कुछ खराब होगा। सम्मान, सत्य, प्रेम और हित, ये हुईं व्यवहारकी चार बातें।

एक और बात जीवनमें उतारनेकी है। भगवान्ने कहा है, ‘अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्।’ किसी भी प्राणीके साथ कभी भी किसी प्रकारसे भी द्वेष न रखे मनमें। यह बहुत बड़ा पाप है। इतना ही नहीं, पापकी जड़ है यह। जिसका जहाँ द्वेष होगा, मनमें वैर होगा, उस आदमीकी दुर्गति होगी, यह निश्चित बात है। वैरवाले, द्वेषवाले बड़े भीषण प्रेत हुआ करते हैं। वे पिशाच होते हैं और उनको नरकोंमें बड़ी बुरी यातना मिलती है। यह मनमें धार ले कि किसीसे हम द्वेष लेकर नहीं मरेंगे। मरनेसे पहले यदि कहीं किसीमें द्वेषकी भावना आ गयी, वैरकी भावना आ गयी तो उसे जीसे निकाल देंगे; रखेंगे नहीं इस चीजको। किसी प्राणीके प्रति भी हमारे मनमें द्वेष न हो। यह एक बड़ी आवश्यक बात है। और जो गरीब हो, जो दुःखी हो, उसके प्रति करुणाभाव रखें। सबके साथ मैत्रीभाव करें और जहाँ आवश्यक हुआ अत्यन्त करुणा करें, दया रखें।

चैतन्यमहाप्रभुने शिक्षा दी सनातन गोस्वामीको। बहुत बातें कही और वे सुनते गये। अन्तमें कहा, देखो, तीन बातें कहता हूँ। इन बातोंके बाद मेरे पास कोई बात नहीं है। बँगलाका पयार छन्द है, बड़ा सीधा:

जीवे दया, नामे रुचि, वैष्णव-सेवन।
इहा छाड़ा आर नाहि जानि सनातन॥

हे सनातन, हरिके नाममें रुचि हो, जीवोंपर दया हो और भक्तोंका संग; बस, यह आखिरी बात है। इन तीनोंके सिवाय और मैं कुछ नहीं जानता। यहींपर उपदेशकी समाप्ति कर दी। तो जीवोंके प्रति निर्दयता न हो, अपितु दया हो। नामकी बात तो मैंने कह ही दी है। तीसरी बात संग, निरन्तर अच्छे संगमें रहनेकी चेष्टा करें। अच्छा संग केवल आदमीका नहीं, अच्छा संग प्रत्येक अच्छी वस्तुका। बुरी वस्तुका सर्वथा परित्याग न हो सका तो जितना हो सके उतना उनका संग छोड़ दें। बुरा स्थान, बुरा खानपान, बुरा साहित्य, बुरे दृश्य, इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण होनेवाली सभी चीजें जो बुरी हों उन्हें त्याग दें। जिन चीजोंसे भगवान्की रति बढ़े वे शुभ और जिन चीजोंसे विषयोंकी रति बढ़े वे अशुभ हैं। यह शुभाशुभका सीधा-सा हिसाब है। इतनी कसौटीपर कस लें, फिर कर्म करें। देखनेकी चीज, सुननेकी चीज, स्पर्श करनेकी चीज, चखनेकी चीज, बोलनेकी चीज, जानेकी चीज, मिलनेकी चीज, व्यवहार करनेकी चीज, जो कुछ भी हो, जड़, चेतन, प्राणी, पदार्थ, अगर उसके संगसे रुचि भगवान्में होती है तो वह हमारे लिये परम शुभ है। बात इतनी ही समझ लेनी है कि:

तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जा सों होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो॥

यदि बड़ा-से-बड़ा दुःख भी भगवान् रामके चरणोंमें प्रेम पैदा करनेवाला हो तो वह दुःख भी हृदयसे स्वागत करनेकी वस्तु है। संसारका बड़ा-से-बड़ा भोग भी अगर भगवान्‌से अलग करनेवाला हो तो वह भोग भी हमारे लिये किसी कामका नहीं, अपितु उसमें आग लगाने लायक है। तुलसीदासजी महाराज कहते हैं:

जरउ सो सम्पति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करइ न सहस सहाइ॥

वह भोग आग लगने लायक है, क्योंकि वह हमें भगवान्‌से छुड़ाकर भोगोंमें लगाता है, जिसका अवश्यम्भावी परिणाम है नरक। इसलिये सब चीजोंमें यह ख्याल रखो कि कोई भी चीज थोड़ी-सी भी ऐसी न आ जाय जो भगवान्‌से हटानेवाली हो। उस थोड़ी-सीसे भी डरें। मान लीजिये आगकी चिनगारी है; यदि वह झोपड़ेमें आ गिरी तो हवाका झोंका लगते ही प्रचण्ड आग बन जायगी। इस तरह अशुभका जरा-सा भी स्पर्श न हो जाय, आदमीको डरना चाहिये। इसके विपरीत शुभका संग जितना भी हो उतना मंगल है। तो निष्कर्ष यह कि सत्संगमें रुचि रहे और असत्संगमें अरुचि। चैतन्यमहाप्रभुका कहना है, 'वैष्णव-सेवन'; वैष्णव माने भगवान्‌का भक्त और सेवन माने उसका संग। भक्तका संग बड़ा लाभदायक है, शास्त्रोंमें माना गया है। यह जीवनमें उतारनेकी बात है। इसके मूलमें केवल एक यही बात है कि भगवान्‌के साथ चित्त जोड़ दें और जो कोई जोड़नेकी बात कहे ऐसे भक्तका संग, ऐसे संतका संग, हमें अवश्य करना चाहिये।

संसारमें दो ही ऐसे हैं जिनके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि ये हमारे अहैतुक प्रेमी हैं। एक भगवान् और दूसरे संत, जो बिना कारण प्रेम करनेवाले होते हैं। इनका यदि कोई बुरा भी करे तो बदलेमें बुरा पानेकी आशंका नहीं है। न तो इनके पास बुरा करनेवाला मन है और न ही कोई बुरा करनेवाली कार्य-मशीन। इनका तो स्वभाव है कि बुरा करनेवालेका भी ये भला करते हैं, 'मंद करत जो करै भलाई।' इसे भक्तमालमें भी कहा है: जैसे चन्दनके पेड़को कुल्हाड़ी काटती है, पर चन्दन उस कुल्हाड़ीमें जो लकड़ीकी बेंट लगी होती है, उसे अपनी सुगन्धसे चन्दन बना देता है। तो काटनेवालाको भी जो अपना स्वरूप दे दे, यह संतका लक्षण है। ऐसे संत पुरुषके लिये नारदजीने कहा है, 'महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।' संतका मिलना बड़ा दुर्लभ, बड़ा कठिन और अमोघ है। तुलसीबाबा कहते हैं, 'बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।' भगवान्‌की बड़ी कृपा होती है तब किसी संतका मिलना होता है। परन्तु मिलन हो भी जाय तो उनको पहचानना मुश्किल, अगम्य होता है।

हमारे पास जो तौलनेका काँटा है, वह हमारी बुद्धि है। इससे संतका तौल नहीं हो सकता। हजारों मन पत्थर तौलनेका जो बड़ा काँटा हो, उससे यदि कोई छोटे-से हीरेको तौलना चाहे तो तौलनेवाला मूर्ख कहा जायगा। जरा-सा हीरा दस-बीस रत्तीका भी होगा तो उसका दाम लाखों रुपये हो जायगा। वह हीरा पत्थर तौलनेवाले काँटेकी किसी चीड़में फँस जायगा और उसका वजन मालूम भी नहीं होगा। काँटा नीचे आयेगा ही नहीं उस वजनको पाकर। ऐसे काँटेमें हीरेको रखकर यदि कोई यह कहे कि हीरेमें क्या रखा है, जरा-सा तो काँटा नीचा हुआ ही नहीं, इसमें वजन तो है ही नहीं; तो जैसे पत्थरके काँटेसे हीरा नहीं तुल सकता वैसे इस विषयप्रबल बुद्धिसे संतका तौल भी नहीं हो सकता। संतको पहचाननेके लिये संतकी आँख चाहिये या फिर भगवान् कभी कृपा करके कोई आँख दे दें; नहीं तो हम देखेंगे उन संतका बाहरी रूप ही। हमको एक दम्भी और संतमें भेद नहीं दिखायी पड़

सकता। हम एक संतको नहीं पहचान सकते, क्योंकि हमारे पास उनको पहचाननेकी आँख नहीं है। इसलिये शास्त्रकारोंने कहा, भाई देखो, परीक्षा करनेकी तुम्हारे पास कोई चीज है नहीं कि तुम तौलकर उसका निर्णय कर लो; तुम एक ही बात समझो कि जिसके पास रहनेसे, जिसकी बात माननेसे, जिसके संगसे भगवान्‌में अभिरुचि हो और दैवी सम्पत्ति बढ़ती हो वह चाहे कैसा भी हो तुम्हारे लिये वह संत है।

अनूपशहरके पास एक सज्जन रहते थे। उनके सत्संगके कारणसे सद्भाव आ गये। उनके मनके जो दोष थे, एक बार छिप गये। उन्होंने समझा कि मुझमें संतपना आ गया। मनुष्यमें यह एक बड़ी भारी कमी है। उस कमजोरीको कहनेका मैं तो अधिकारी हूँ नहीं, क्योंकि वह कमजोरी मुझमें बड़ी भारी है। वह यह है कि मनुष्यमें दूसरोंको उपदेश देनेकी इच्छा बहुत जल्दी हो जाती है। “मैं दुनियाँका उपदेशके द्वारा भला करूँ।” यह होता है अन्तमें मोह, एक छिपी हुई मानकी इच्छाका परिणाम। ऐसी वासना रहती है मनुष्यके मनमें। उसका परिणाम बुरा होता है। तथापि मनुष्य ऐसा करता है। तो उन सज्जनके मनमें आया कि मैं लोगोंको उपदेश दूँ। “मैं तो ठीक हो गया”, यह बात साधनामें अच्छी नहीं है।

एक दूसरी घटना बताऊँ आपको। एक व्यक्ति गंगाके किनारे-किनारे जा रहे थे। उन्होंने देखा कि एक जवान उम्रकी लड़की है और चालीस वर्षका पुरुष। आपसमें हँस रहे हैं। लड़की एक गिलास दे रही है और पुरुष पीने जा रहा है। उस देखनेवाले व्यक्तिके मनमें आया कि देखो, गंगाके तटपर भी ये पापकी भावना करते हैं। यह स्त्री है और पुरुष, ये हँस रहे हैं। इनके मनमें पाप आ गया। यह शराबका गिलास दे रही है और वह पुरुष पीने जा रहा है। यह उसने सोच लिया। थोड़ी देरमें वहाँ एक नाव निकली। नदीमें एक भँवर था। उस भँवरमें नाव फँस गयी। नाव डगमगायी और उसमें पानी आ गया। वह उलट गयी। उसमें बीसों आदमी थे। गिलासको फेंककर वह पुरुष तुरंत नदीमें कूद पड़ा। बड़ी मुश्किलसे अपनी जानको जोखिममें डालकर उसने उन आदमियोंको बचा लिया। अब देखनेवाला सोचने लगा कि भाई, क्या बात है? अगर वह व्यभिचारी था, शराबी था, कामी था, तो इतना त्यागी कैसे था कि अपनी जान जोखिममें डालकर, प्राणोंपर खेलकर उसने इतने लोगोंको बचा लिया। उसे अपने विचारपर सन्देह हो गया। वह पास आया और पूछने लगा कि आप कौन हैं? उन्होंने कहा, यह बात तो पीछे करना। अभी हमारी सहायता करो। इन लोगोंके पेटमें पानी भर गया है, पहले इसे निकालें। इस प्रकार उसे भी सेवामें संयुक्त कर लिया। वह लड़की भी सेवा करने लगी। तीनों सेवामें जुट गये।

अब कुछ देर बाद जब सब ठीक हो गया तब पूछा, आप कौन हैं? यह लड़की कौन है? सन्देह मनमें था ही। उन्होंने उत्तर दिया, यह मेरी बेटी है। ससुरालसे आज ही आयी है। हम बगलके गाँवमें रहते हैं। घूमते-घूमते, बात करते हुए गंगाजीके किनारे आ गये। यह हँस-हँसकर अपने घरकी बात सुना रही थी और मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही थी। इतनेमें मुझे प्यास लगी। मैंने कहा, जा बेटी, गंगाजल तो ले आ। यह गंगाजलका गिलास ले आयी। मैं पीने जा रहा था कि इतनेमें नाव आ गयी। अब उसने सोचा, देख, तू कितना बड़ा पापी है। शराब और व्यभिचार तो तेरे मनमें था। इस पवित्र गंगाजलमें तूने शराबकी भावना की। पवित्र बाप-बेटीके विशुद्ध व्यवहारमें व्यभिचारकी भावना की। तू पवित्र कहाँ है? तेरे मनमें तो अभीतक कलुष भरा है।

ऐसा बहुत दफा होता है। हमलोग अपने मनका पाप, अपने-आपकी बुराई दूसरेपर आरोपित कर देते हैं और उसे हम दोषी मान लेते हैं। अतएव ये जो मैंने तीन बातें कहीं वे संतमें सन्देहकी हैं। ये बड़े विकट दोष हैं; पर ये दोष किसीमें हैं या नहीं, इस सम्बन्धमें हम भूल भी कर सकते हैं। बड़ी सावधानीसे इन्हें समझना चाहिये। कामिनी, कंचन और मान, इन तीनकी जहाँ माँग है, वहाँ जरा सावधान हो जाना चाहिये। मानवाली चीज इतनी दूषित नहीं

है, क्योंकि यह सूक्ष्म दोष है और यह रहता है बड़ी दूरतक अच्छे पुरुषोंमें भी। पर ये कामिनी-कंचन तो बड़ी दूषित चीजें हैं। ये बड़े स्थूल दोष हैं, मोटे दोष हैं। पर ये दोष भी जिस संतमें हों वह हमारे लिये संत नहीं, ऐसा मानना चाहिये।

एक बात इसी प्रसंगमें यह कह देनेमें कोई अनुचित नहीं मालूम होगा कि जो आदमी भगवान्‌के स्थानपर अपनी पूजा करवाना चाहे उससे भी सावधान रहें। यह एक बड़ा दोष है और आजकल यह बहुत ज्यादा आ गया। भगवान्‌का आसन व्यक्ति ले बैठता है और वह कहता है कि देखो, रामायणमें कहा है, तुलसीदासजी महाराजने कहा है कि भक्त भगवान्‌से बढ़कर है, भक्तकी भगवान् पूजा करते हैं, संत भगवान्‌से भी बढ़कर हैं। इस प्रकारकी शास्त्रीय सूक्तियोंका अनुवाद करके वह आदमी कहता है कि क्योंकि मैं भक्त हूँ, मैं संत हूँ, महापुरुष हूँ, भगवान्‌का प्रेमी हूँ, इसलिये भगवान् जो कुछ हैं वे तो मुझमें ही हैं।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scans 109 to 113

If a sick child mistakenly asks for harmful food, a mother who gives it merely to please the child does not act for the child's welfare. The happiness we give must therefore be truly beneficial. Four qualities should govern conduct: respect, truth, love, and welfare. Purify every act by these four. If any is absent, fear that an error is being made and that some harmful result will follow.

Another essential teaching is the Lord's phrase, “Free from hatred toward every being.” Hatred is a grave sin and indeed a root of sin. Enmity leads surely to degradation. Resolve not to die carrying hatred for anyone. If enmity arises, remove it from the heart before death. Hold compassion for the poor and afflicted, friendship for all, and deep mercy wherever it is needed.

At the end of his instruction to Sanātana Gosvāmī, Śrī Caitanya Mahāprabhu reduced everything to three teachings in a simple Bengali verse: compassion for living beings, taste for the divine name, and service to Vaiṣṇavas. He said that apart from these three he knew nothing. Let there be mercy rather than cruelty, relish for the name, and continual effort to remain in good company. Good association includes not only people but every wholesome thing. Abandon as far as possible bad places, food, literature, sights, and anything harmful received by the senses. Whatever increases love for God is auspicious; whatever increases attachment to sense objects is inauspicious. Apply this simple test to everything seen, heard, touched, tasted, spoken, visited, encountered, or used in conduct. If its company deepens love for God, it is supremely beneficial.

Tulasīdāsa regards as beneficial, worshipful, and dearer than life whatever generates love for Rāma's feet. He also says:

Let that wealth, home, happiness, friend, mother, father, and brother burn
if, when present before us, they do not render a thousandfold service to Rāma's feet.

Even the greatest sorrow deserves a heartfelt welcome if it awakens love for those feet. Even the greatest worldly pleasure deserves to be burned away if it separates us from God. A tiny spark can consume a hut when the wind rises, so one should fear even slight contact with the inauspicious. Conversely, every measure of auspicious company brings blessing. Cultivate taste for holy company and disinterest in unholy company. Caitanya's phrase “service to Vaiṣṇavas” means associating with devotees of God. Its root purpose is to join the mind to God by keeping company with those devotees and saints who teach us to do so.

Only two may truly be called causeless lovers of us: God and the saints. Even if someone harms them, there is no danger that they will return harm. Their nature is to benefit even the offender. As an axe cuts sandalwood, the sandalwood perfumes the axe's wooden handle and makes its attacker like itself. Nārada says that the company of the great is rare, difficult to comprehend, and unfailing. Tulasīdāsa says saints are found only by Hari's grace. Even after meeting one, recognition is difficult. Our intellect is like a scale built to weigh immense stones. A tiny but

priceless diamond may lodge unnoticed in it and fail to move the beam. Just so, an intellect dominated by sense objects cannot weigh a saint. One needs the vision of a saint or an eye given by divine grace; otherwise one sees only the outer form and cannot distinguish a genuine saint from a hypocrite. Since we possess no reliable instrument for testing, the scriptures give a practical criterion: whoever's presence, instruction, and company increase attraction to God and divine qualities is a saint for us, whatever the outward appearance.

Near Anūpaśahara lived a man whose defects temporarily subsided through holy company. He concluded that he had become a saint and soon desired to preach for the world's good. The speaker admits this weakness strongly within himself. The eagerness to instruct others easily becomes delusion born of a concealed desire for honor. The thought “I am now perfected” is harmful in spiritual practice.

Another story shows the danger of projection. A traveller on the Ganges bank saw a young woman laughing with a man of about forty and handing him a glass. He imagined an illicit relationship and alcohol. Soon a boat was caught in a whirlpool and overturned with about twenty people aboard. The man threw aside the glass, leapt into the river at risk to his own life, and rescued them. The observer wondered how someone he had judged immoral could show such self-sacrifice. When he approached with questions, the rescuer first enlisted him in helping remove water from the victims' stomachs. The woman joined them. Only after all were safe did the man explain that she was his daughter, newly returned from her husband's home, and that the glass contained Ganges water she had brought when he became thirsty.

The observer then condemned himself. The alcohol and lust had existed in his own mind. He had projected liquor upon sacred Ganges water and immorality upon the pure affection of father and daughter. We often impose our own inner impurity upon others and declare them guilty. Thus one should be alert when sensual desire, greed for wealth, and craving for honor are present, yet also remember that we can err when judging whether these defects are actually present. The first two are gross and deeply corrupting; honor is subtler and may persist far into the life of a good person. A supposed saint attached to sensuality or wealth is not a saint for us. One should also beware of anyone who wishes to receive worship in God's place and misuses scriptural praises of the devotee in order to claim, “I am a saint and all that God is resides in me.”

ORIGINAL Hindi, Sanskrit, and Awadhi

Source: Scans 114 to 116

उक्तियाँ होती हैं और वे ठीक हैं। जैसे, 'गुरु गोविन्द दोनों मिले, काके लागूँ पाँय।' जैसे कोई कहता है कि गोविन्दसे भी बढ़कर गुरु है, क्योंकि जिन्होंने गोविन्दको मिला दिया। इस तरहकी बहुत-सी शास्त्रकी भी वाणियाँ हैं और वे यथार्थ हैं। उनका दुरुपयोग करके मनुष्य अपनी पूजा करवाता है भगवान्के स्थानपर। यहाँ सावधानीकी आवश्यकता है, जीवनमें स्वयं अपने लिये भी। तो इन तीन बातोंसे स्वयं भी बचे। कभी भी इनसे न रमे। कामिनी, कंचन और मान-बड़ाई ये गृहस्थके लिये हानिकी चीजें हैं। यदि कंचनका लोभ है तो निश्चित गिरेगा ही। आजीविकाके लिये धन चाहिये और धनको सत् कमाईसे कमाया जाय, यह दोषकी बात नहीं है। परन्तु अगर कंचनमें आसक्ति है, कामिनीमें आसक्ति है तो परधनमें और परस्त्रीमें लोभ जागृत होगा ही और वह महापाप है। इसी प्रकार अपनी पूजा करवानेमें भी आदमीको बचना चाहिये। जहाँ मान-बड़ाई मिलती है, वहाँ-वहाँसे हटे और उसमें प्रत्यक्ष उसको दीख पड़े दोष।

मैं फिर कहता हूँ कि इसके कहनेका मैं अधिकारी नहीं हूँ, बिल्कुल नहीं हूँ। मेरे मनकी बात आप जानते? मान-बड़ाई मुझको प्यारी लगती है या खारी, इसे मेरा अन्तर्यामी जानता है। रुचिकर नहीं होना चाहिये। यह मैंने इसलिये कहा कि मुझमें यह दोष है। कामिनी-कंचनका आकर्षण मुझमें बहुत कम है, यह स्वीकार करनेमें मुझे आपत्ति नहीं। मुझे स्त्रीपर मोह नहीं होता, न मुझे धनका मोह होता है; पर मानका मोह मेरे मनमें है, यह मैं अनुभव करता हूँ। यह इसलिये कह गया कि भाई, तुम कह रहे हो मान-बड़ाईकी बात और तुम तो यही हो। इसलिये पहले स्वीकार कर लेना बड़ा अच्छा। परंतु यह दोष तो है ही। यह पाप तो है ही। यह गिरानेवाला तो है ही। इसलिये मनुष्य सावधान रहे और निरन्तर सावधान रहे कि कहीं अपनी पूजामें, अपने मानमें, अपनी बड़ाईमें संलग्न न हो जाय। यह बड़ी मीठी चीज है, पर है विष।

यहाँतक मनुष्यके मनमें एक भ्रम रहता है कि मरनेके बाद मेरा नाम रहे, इतिहासमें मेरा नाम रहे। अरे, किसका नाम रहेगा? तुम जो आत्मा हो इसका तो नाम है नहीं, और शरीर एक दिन फूँक जायगा। इसके नामको अगर तुम अपना नाम मानते हो तो महा अज्ञानी हो। अज्ञान और क्या होता है? अज्ञानका रूप क्या है? इस शरीरको 'मैं' माने, इस नामको 'मैं' माने, वह अज्ञानी। यह प्रसिद्ध बात है। तो जो अपना 'स्टेचू' बनाना चाहे, अपनी ऑटोबाइग्राफी अपने-आप लिखकर अपनी तारीफ करना चाहे और इतिहासमें अपना नाम चाहे वह अज्ञानी ही माना जायगा। नाम क्या है? आत्माका तो नाम होता नहीं। आत्माका रूप भी नहीं है। इस पाञ्चभौतिक पुतलेका नाम और इसकी पूजा तो जो भूत-पूजक हैं वे करते हैं, आत्मपूजक तो करता नहीं। यह अज्ञानका स्वरूप है। इसलिये इससे बचे। मान-बड़ाईसे बचे। यही बड़ी मीठी छुरी है, सदा घात करती है। अन्दर-ही-अन्दर काटती है। सारे सत्कर्मोंको, पुण्योंको यह धो डालती है। इससे आदमी पुण्यको खो देता है। इसलिये मान-बड़ाईसे और कामिनी-कंचनसे बचो। यह बड़े कामकी बात है।

अन्तिम बात यह है कि मानव-जीवन बार-बार नहीं मिलता। यह भगवान्की बड़ी कृपासे मिल गया है। इसको हम खो न दें। इससे बड़ा घाटा दूसरा कोई है नहीं। सारे घाटे न जाने कितनी योनियोंमें कितनी बार पूर्ण हो चुके हैं, परंतु यह घाटा अगर रह गया तो महती विनष्टि, इतना बड़ा घाटा जिसकी पूर्ति बहुत सहजमें नहीं होती, घाटा अपूर्ण ही रह जायगा। इसपर भी बड़े आश्वासनकी बात तो यह है कि जितना जीवन हमारा बाकी है, उतना

भगवान्‌की प्राप्तिके लिये पर्याप्त है। हमने पहले कुछ भी किया हो, उसकी कोई बाधा नहीं आ सकती। अगर हम एक प्रण कर लें कि अपने-आपको भगवान्‌के चरणोंमें सौंप दें, बचा हुआ जो जीवन हमारा है वह चाहे एक युग हो, एक वर्ष हो, एक महीना हो, एक घड़ी हो, एक मिनट हो, अन्तिम श्वास ही क्यों न हो, अगर यह हमने भगवान्‌को सौंप दिया तो एक श्वासका जीवन भी हमें भगवत्प्राप्तिके लिये पर्याप्त है। इसलिये निराश होनेकी बात नहीं है, हताश होनेकी बात नहीं है। परंतु यह समझ लेना चाहिये कि हमारा मानव-जीवन जो है यह केवल और केवल भगवत्प्राप्तिके लिये है। यह भोगोंकी प्राप्तिके लिये है ही नहीं। यह भोग-योनि ही नहीं है। यह मनुष्य जो भोगमें प्रवृत्त होता है और भोगोंमें आसक्त होता है, यह अपनी मानवताको खो देता है। हमारे यहाँ तो जीवनके आरम्भसे ही मदालसा अपने पुत्रको लोरीमें कहती है कि तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरंजन है। संसारकी मायासे तू रहित है। तू जा, भगवान्‌को प्राप्त कर ले। यह लोरीमें माताएँ कहा करती हैं हमारे यहाँ।

‘यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।’ बालक-अवस्था, गुरुकुलमें जाना, शिक्षा-प्राप्ति किस लिये? अर्थके लिये नहीं। हमारे यहाँ बड़े-बड़े गुरुकुल थे। हजारों-हजारों विद्यार्थी उन आश्रमोंमें रहते थे। उनका जीवन महासंयममय था। जूता न पहनना, सुरमा न लगाना, गाना न सुनना, स्त्रीका मुँह न देखना, उसका चिन्तन न करना, तेल न लगाना, जमीनपर सोना, खटियापर न सोना, माँगकर खाना और वह भी अपने-आप नहीं, गुरुके सामने रख दें, वे दें सो ले लें। इस प्रकारका संयममय जीवन था पहले। अब ये हमारे बोर्डिंग हाउस हैं जहाँ जीवन सब तरहसे उच्छृंखल, अनियमित होता है। ऐसा क्यों? यह इसलिये कि पहले जीवनका उद्देश्य बचपनसे ही बनता था ब्रह्मकी प्राप्ति, और वह था सच्चा जीवन।

मनुष्य क्यों पैदा होता है जगत्‌में? यह पैदा होता है केवल और केवल भगवान्‌को पानेके लिये। मनुष्य भोगयोनि है ही नहीं। यह अगर भोगमें लग गया और इसका विवेक यदि भोगमें प्रवृत्त हो गया तो यह निश्चित राक्षस बनेगा, पिशाच बनेगा, असुर बनेगा। जितने भी हिंसक जीव हैं ये इतने जीवोंको नहीं खा सकते जितनोंको यह खाता रहेगा। हरेक प्रकारसे यह हिंसामय बनेगा। इसके कारखाने, इसकी मिलें, इसका आयोजन, इसके बड़े-बड़े युद्ध, बड़े-बड़े काण्ड, इसकी बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियाँ, इसके आविष्कार सब क्या हैं? ये सब कसाईखानेसे बढ़कर हैं। यह भोगोंमें प्रवृत्त हुआ कि इसका पतन हुआ। फिर मानवता न रह सकती उसमें। मनुष्यकी मनुष्यता तो एक बातको लेकर ही है कि उसके जीवनकी गति भगवान्‌की ओर हो।

बस, इसलिये यह अन्तिम बात है जो आपसे मुझे प्रार्थनाके रूपमें कहनी है कि मानव-जीवनकी जो वास्तविक सुन्दर स्थिति है उसको भूलें नहीं। जो कुछ भी मानवको प्राप्त है वह भगवान्‌की कृपासे प्राप्त है। मनुष्य अपने जीवनको इसीमें लगावे, दूसरे किसी काममें न लगावे। जो काम इसमें बाधक हो उसको अपना शत्रु समझे। कोई प्राणी, कोई पदार्थ जो भी है वह भगवान्‌के लिये है। जो जितना बचा हुआ जीवन है और जितना जीवन बाकी है अथवा जितने श्वास बाकी हैं उतना ही भगवान्‌को सौंप दे। “भाई, अबतक तो हम बड़े कृतघ्न रहे। हमने खोया ही खोया। आपकी थैलीका हमने नाश कर दिया, आपकी सारी पूँजी गँवा दी। अब तो सात श्वास बचे हैं, सात नहीं, दो श्वास बचे हैं, ये आपको अर्पण।” इतनेमें ही वे कह देंगे, “भाई आ गया। आखिर खो-खाकरके शरण आ गया।” कहेंगे, “मत चिन्ता करो; तुम आये और मैं आया।” यह है बड़ी सीधी बात भगवत्प्राप्तिकी। इसलिये इस जीवनके प्रधान कार्यको कभी न भूलें और इसीमें लगे रहें।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scans 114 to 116

Scriptural sayings that exalt the guru or devotee are true. One well-known verse asks whose feet should be touched when guru and Govinda both stand before us, and some explain that the guru is greater because he revealed Govinda. Yet a person may misuse such statements to have himself worshipped in God's place. We must remain cautious, including in our own lives. Sensual attraction, greed for wealth, and desire for honor harm householders as well as renunciants. Money honestly earned for livelihood is not a fault, but attachment to gold leads to coveting another's property, and sensual attachment leads to coveting another's spouse. These are grave sins. One should also avoid seeking personal worship and withdraw from places where praise and honor are bestowed, seeing their danger clearly.

The speaker candidly says that he is not qualified to preach this. The indwelling Lord alone knows whether praise tastes sweet or bitter to him. He can admit that attraction to women and money is slight, yet he feels attachment to honor in his own mind. It is best to confess this before warning others. The fault remains sinful and degrading. Constant vigilance is needed lest one become engrossed in personal worship, reputation, and praise. Honor tastes very sweet, but it is poison.

The desire to leave one's name in history after death is another delusion. The self has no name, while the body will one day be burned. To identify the body's name as one's own is profound ignorance. One who longs for a statue, writes an autobiography to praise himself, or seeks historical fame remains ignorant. The formless self has neither name nor form. Worship of this five-element puppet belongs to those who worship matter, not the Self. Praise and reputation are a sweet knife cutting inwardly. They wash away virtuous deeds and accumulated merit. Therefore guard against them, sensual attraction, and greed.

Human birth does not come repeatedly. It has been received by great grace and must not be wasted. No loss is greater. Yet however much life remains is sufficient for God-realization. Nothing previously done can obstruct it. If the remaining span, whether an age, a year, a month, an hour, a minute, or only the final breath, is surrendered to the Lord, even one breath is enough. There is no reason for despair. Understand that human life exists solely for attaining God, not for enjoyment. A human being absorbed in pleasure loses humanity. From life's beginning Madālasā sang to her son that he was pure, awakened, stainless, and free from worldly māyā, and should go attain the Lord. Such was the lullaby of our tradition.

The scriptural phrase “desiring that, they practice brahmacarya” expresses the former aim of education. Children entered the gurukula not for wealth but for realization of Brahman. Thousands lived in those āśramas under great restraint: without shoes or cosmetics, avoiding

songs and thoughts of women, sleeping on the ground, begging food and first placing it before the teacher, taking only what was given. Modern boarding houses are unrestrained because the aim is no longer established in childhood as realization of Brahman.

A human being is born only to attain God. Humanity is not a species meant for enjoyment. If human discrimination becomes devoted to pleasure, the person turns demonic and violent. Factories, industries, wars, violent enterprises, and inventions then surpass slaughterhouses. The movement toward enjoyment is a fall, and humanity cannot survive it. Human dignity consists in directing life toward God.

The final plea is therefore not to forget the true beauty and purpose of human life. Everything received has come by divine grace. Devote life to God alone and regard whatever obstructs this as an enemy. Every being and object is for him. Offer whatever life and however many breaths remain: “Until now I have been ungrateful and squandered your capital. Only seven breaths remain, perhaps only two; I offer them to you.” The Lord will say, “At last, after losing everything, he has come for refuge. Do not worry. You have come, and I have come.” The way to God is this direct. Never forget life's principal work, and remain devoted to it.

CHAPTER 14

शरणागति

Surrender

Source scan pages 117–130

ORIGINAL Hindi, Sanskrit, and Awadhi

Source: Scans 117 to 121, with the sentence concluding at the opening of scan 122

शरणागति

‘सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज’, गीतामें कहे हुए भगवान् श्रीकृष्णके ये वचन उनके परिपूर्णतम, सबके आदि और स्वयं भगवान् होनेकी घोषणा करते हैं। सम्पूर्ण जगत् उनके एक अंशमात्रमें स्थित है। उनके सिवा किञ्चिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है, सारा चराचर जगत् सूत्रमें मणियोंकी भाँति उनमें ही गुँथा है। अतः उनमें आत्मगोपन नहीं है। पर भगवान् राम मर्यादापुरुषोत्तम बनकर आये तब छिपकर मर्यादामें रहे, फिर भी कहीं-कहीं उनका वास्तविक स्वरूप प्रकट हो ही गया। परंतु श्यामसुन्दरमें यह संकोच नहीं।

तत्त्वतः राम और श्याममें कोई अन्तर नहीं है। जो राम हैं, वही श्याम हैं और जो श्याम हैं, वही राम हैं। वैसे ही उनके और रूपोंमें कोई भी अन्तर नहीं है। भेद है केवल लीलाविलासका; परंतु जैसा अपने सम्बन्धमें खुलकर भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट कहा है, वैसा कहनेमें दूसरे सकुचाते हैं। भगवान् अन्तर्यामी हैं, सर्वज्ञ हैं, त्रिकालज्ञ हैं, उनसे कोई बात छिपी तो है नहीं। उन्होंने अर्जुनके सामने बहुत गोपनीय रहस्योंका उद्घाटन किया और अपने स्वरूपको प्रकट किया तथा कहा, ‘सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।’ इस भगवद्वाणीमें धर्मोंके त्यागकी बात नहीं, अपितु धर्मोंके आश्रयके त्यागकी बात है और मात्र एक आश्रय ग्रहण करनेकी, प्रेम करनेकी बात है:

एक धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

भगवान् श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं कि सब धर्मोंको छोड़ दो और सब धर्मोंका आश्रय छोड़कर, सबका परित्याग कर ‘मामेकं शरणं व्रज’, एकमात्र मेरी शरण हो जाओ। तथा ‘मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु’, मन दे दो। मन दे दिया तो सब दे दिया। फिर यदि कहो कि मन तो दे दिया, लेकिन नाथ, तनसे मेरी सेवा करो। यहाँ सेवाका अर्थ है भजन और भक्तिका अर्थ है सेवा। सर्वात्म-समर्पणपूर्वक अपने इष्टदेवके मनोऽनुकूल आचरणवाला जीवन बन जाय तो इसीका नाम भक्ति है। मेरे भक्त बनो। ‘मद्याजी’ का मतलब है कि केवल मेरी पूजा करनेवाले बनो।

तात्पर्य यह कि जिससे सब निकले तथा जो सबमें व्याप्त है, ‘येन सर्वमिदं ततम्’, उस व्यापक भगवान्‌की पूजा करो। भाव यह कि वह व्यापक भगवान् मैं ही हूँ और कोई नहीं है। इसलिये बिना संकोच स्पष्ट कह दिया कि मेरी पूजा करो। मेरी पूजा करनेवाले बनो। हाथ जोड़ना हो, नमस्कार करना हो, दण्डवत् करना हो तो मुझे ही करो।

देखो, भगवान् श्रीकृष्णने ऋषियोंके द्वारा पूजा भी स्वीकार की, स्वयं पूजा करते भी रहे। अर्थात् सारे ‘इदम्’ को अपनेमें समेट लिया: यह भी मैं, वह भी मैं। जिसको, जिस आत्माको ‘अहम्’ कहते हैं, उसे ‘सः’ भी कहते हैं, अर्थात् वह भी मैं। जो ‘इदम्’, यह, दीखता है वह प्रपञ्च भी मैं। मेरे सिवा कुछ है ही नहीं। मैं ही खेलता हूँ और अपनेमें ही खेलता हूँ। मैं श्रीकृष्ण श्यामसुन्दर नटवर-वपु-रूपमें नये-नये स्वाँगोंमें खेलता हूँ। यह है भगवान्‌की लीला, परमगोपन और सर्वविदित। यह सर्वगुह्यतम है, ‘सर्वगुह्यतमम्।’

भगवान्‌का रहस्य तो केवल भगवान् ही जानते हैं। अन्य जो भी जाननेका अभिमान करते हैं, वे सब अज्ञानी हैं। इस 'सर्वगुह्यतमम्' का तात्पर्य यह है कि भगवान् चाहते हैं, कहते हैं कि मेरे साथ यदि किसीको प्रीति करनी हो, मुझसे यदि किसीको प्रेम करना हो तो जगत्‌के सारे कर्तव्य-अकर्तव्योंसे ऊपर उठना पड़ेगा। जगत्‌के सारे भयोंसे और सारी आशाओंसे मुक्त होना पड़ेगा। जगत्‌की सारी क्रियाओंसे, अक्रियाओंसे अलग होना होगा। अर्थात् क्रिया और अक्रिया दोनोंमें उनका पूजन, त्याग और भोग दोनोंसे उनका पूजन, छोड़ने और करने दोनोंसे उनका पूजन। तात्पर्य, उसके सिवा जीवनमें अन्य कुछ भी न हो तो अपना है तथा न कोई प्राप्तव्य है और न ही कुछ करने योग्य कार्य है। प्राप्त करने योग्य वस्तु, सेवन करने योग्य वस्तु है तो बस एकमात्र परम प्रेमास्पद भगवान्, अर्थात् मैं।

भगवान्‌के प्रति ऐसा समर्पण जब हो जाता है, तब उस प्रेम-राज्यमें तरंगित रहता है केवल प्रेम-समुद्र। जहाँ उसका तल है वहाँ तो वह सर्वथा प्रशान्त है। वहाँपर न विक्षोभ है, न तरंग है, न लहरियाँ हैं। परंतु वह समुद्र अत्यन्त प्रशान्त है और महासागर है, इतना विलक्षण है कि उसी सागरमें अनवरत नित्य नव-नव तरंग-मालाएँ नाचती रहती हैं। वह जैसे शान्त है ठीक उसी प्रकार वह नाचनेवाला भी है। जैसे अनन्त है उसी प्रकार अन्तकी लीला करनेवाला भी है। जिस प्रकार अगाध है, उसी प्रकार छलकनेवाला भी है। जिस प्रकार निःस्तब्ध है, उसी प्रकार महान् शब्द करनेवाला भी है। युगपत्-विरुद्ध-धर्माश्रयत्व जिसमें रहे उसका नाम है भगवान्। इसका संकेत उपनिषदोंमें, वेदोंमें सर्वत्र है, 'अणोरणीयान् महतो महीयान्।'

यह विषय बुद्धिग्राह्य नहीं है। बुद्धिमें ब्रह्म आता नहीं, आ सकता नहीं। यह 'बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्' है, अर्थात् बुद्धिग्राह्य नहीं, अतीन्द्रिय है। बुद्धि-ग्राह्यका अर्थ केवल इतना है कि बुद्धि समझती है कि यह अतीन्द्रिय है। बुद्धि केवल उसकी अतीन्द्रियताका परिचय प्राप्त कर पाती है, उसके स्वरूपका नहीं। यदि प्रकृतिसे उत्पन्न बुद्धि उस ब्रह्मके स्वरूपका आकलन कर ले, उस बुद्धिमें वह रूप समा जाय, यद्यपि यह सर्वत्र सब जगह समाया हुआ है, पर बुद्धिमें ठीक-ठीक समा जाय, तब बुद्धिजन्य हो सकता है। परंतु श्रुतियाँ कहती हैं, 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह', जहाँसे यह वाणी, मन, बुद्धि तथा चित्त सब लौट आते हैं। उसके वास्तविक स्वरूपको समझकर वर्णन करते हैं, यह भी वह नहीं, यह भी वह नहीं, यह भी वह नहीं, तब फिर उसका आकलन कौन करे? उसे कौन बताये? वह किसकी वाणीमें आये?

वहाँ तो ऐसा निर्देश प्राप्त होता है कि इस प्रकार जो तत्त्व है वह तत्त्व ही जहाँपर अपना बनकर अपने गुणोंको प्रकट करता है, अपने गुणोंका अवतरण कर लीलाविलासमें प्रवृत्त होता है, उस परमतत्त्वका नाम श्रीकृष्ण। वैष्णवोंके दर्शनको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने बड़ा विचार किया है। विचारकी धारा अलग और विचारकी दृष्टि अलग रखकर उन्होंने आह्लादिनी, सन्धिनी और संवित्, इन तीन शक्तियोंका विवेचन किया है। विष्णुपुराणमें यह सन्दर्भ प्राप्त है। आह्लादिनी शक्ति भगवान्‌का नित्य आनन्दमय स्वरूप है। वह आनन्द ही, वह आह्लाद ही नित्य-निरन्तर श्रीविग्रहके रूपमें प्रकट है, हुआ नहीं, अपितु नित्य-प्रकट है, नित्य उद्वेलित है, नित्य उच्छलित है, नित्य लीलापरायण है। वह आनन्द शान्तानन्द ही नहीं, उच्छलितानन्द भी है। नर्तनानन्द भी है, संगीतानन्द भी है, विरहानन्द भी, मिलनानन्द भी है। इस प्रकार वह आनन्द-आह्लाद जहाँ प्रत्यक्ष प्रकट है, उस प्रकट आह्लादके श्रीविग्रहका नाम है राधा।

ये जो लीला-धाम हैं, ये जो लीला-परिकर हैं, ये सब-के-सब संवित्-शक्ति हैं। भगवान्‌की स्वयंकी चिति-शक्तिद्वारा इन सबका प्रादुर्भाव होता है। जो सत्-शक्ति है, वही शक्ति लीलाके रूपमें प्रकट होती है। लीला-परिकर, लीला-स्थान, लीला और लीलाका प्रधान पात्र भी वही है। अब प्रश्न आता है, श्रीगोपांगनाएँ क्या हैं? ये

श्रीराधाकी कायव्यूह-रूपा हैं। राधा हैं श्रीकृष्णका अभिन्न स्वरूप आनन्दांश और राधाके शरीरसे, राधाके श्रीविग्रहसे जिनका प्राकट्य हुआ, वे सब-की-सब हैं गोपांगनाएँ, राधाकी कायव्यूहस्वरूपा। नित्य-निरन्तर लीलाधाममें प्रकट जो महारास है, महालीलाविलास है, उसमें इन कायव्यूहरूपा श्रीगोपांगनाओंका नित्य स्थान है। उनके साथ ही नये-नये साधनसिद्ध महात्मा लोग श्रीगोपांगनाओंका स्वरूप प्राप्त करके उस लीलामें सम्मिलित होते रहते हैं। जो इस मार्गके अन्वेषक हैं, अनुसन्धानकर्ता हैं, साधक हैं, अनुशीलन करनेवाले हैं, वे साधनसिद्धा गोपियोंके रूपमें नित्य-सिद्ध हो जाते हैं, नित्य-पार्षदत्वको प्राप्त हो जाते हैं। तथापि इन सबके मूलमें हैं राधा।

यह लीलाविलास है सच्चिदानन्दका लीलाविलास। इस लीलाविलासकी प्रधान नायिका हैं श्रीराधाजी। उन राधाजीमें जहाँ-जहाँपर जिस-जिस रसका जब-जब उन्मेष होना आवश्यक है, वह अविराम होता रहता है। प्रकटतः उसके आठ रूप माने गये हैं। पहला रूप है व्यापक, उसका नाम है प्रेम। इस प्रेम का स्तर है श्रीकृष्ण-रूप-वृत्ति। ‘प्रेम’ केवल पारिभाषिक नाम है। इस वास्तविक प्रेमका स्वरूप है स्नेह। यह वह स्नेह नहीं जैसा अपनी प्रचलित भाषामें अपनेसे छोटोंके प्रति होता है, अपितु यह स्नेह उसी पवित्र प्रेमका एक परिष्कृत रूप है। स्नेहके बाद तीसरा रूप होता है मान। मानका नाम सुनकर डर जाते हैं लोग, परंतु यह वह मान नहीं। श्रीकृष्णके सुरत-संवर्धन-हेतु प्रकट वक्रता ही यह मान है। चौथा रूप होता है प्रणय। प्रणयके बाद पाँचवाँ रूप होता है राग। छठा अनुराग, सातवाँ स्तर रूप ग्रहण करता है भावका और आठवाँ स्वरूप होता है महाभाव। ये भाव और महाभाव दोनों प्रायः एक ही हैं, परंतु भावका जहाँ पूर्ण विकास है, गोपीभावकी जहाँ राधाभावमें परिणति है, वह है महाभाव। उस महाभावमें फिर दो विलक्षण स्थितियाँ और प्रकट होती हैं, जिनके प्रेमशास्त्रके अनुसार नाम हैं मादन और मोदन, राधाका मादनाख्य भाव और राधाका मोदनाख्य भाव।

इसकी भी बड़ी उज्ज्वल पवित्रतम व्याख्या है। मादनाख्य भावमें अपनेमें महान् दैन्यका अनुभव होता है। इसका यत्किञ्चित् निर्देश प्राप्त होता है। एक लीलामें श्रीकृष्ण चले गये मथुरा। जानेके बाद श्रीराधा समझती हैं कि अब कुछ भी शेष रहा नहीं। श्रीकृष्ण तो अब मिलनेके नहीं। फिर भाव आता है कि अब तो केवल अँधेरा ही रह गया। मुझे जीना नहीं है, जी सकती ही नहीं। पर एक अवलम्बन अवश्य मिल गया है, श्रीकृष्णका कृष्णापन। काला रूप जो है वह उन्हींकी तो छाया है। अन्धकार-ही-अन्धकार चारों तरफ दीखता है, उस अँधियारेमें भी प्रतिभासित है श्रीकृष्णकी ही छाया।

पूर्वरागके समयकी एक बात है। एक बार श्रीराधा श्रीकृष्णतक नहीं पहुँच सकीं, कई तरहके विघ्न थे, बाधा थी। परंतु कालिमाकी छायामें जाकर श्रीराधाने श्रीकृष्णका अनुभव कर लिया। परंतु फिर दूसरी वृत्ति मनमें आयी। विचार करने लगीं कि छाया होती तो पड़ती। वे तो हैं नहीं और मेरे इस वियोगकी ज्वालासे सूर्य-चन्द्रमा भी जल गये, वे दोनों नहीं रहे। फिर छाया जिन सूर्य-चन्द्रमाके आधारसे पड़ती है वह स्थिति भी नहीं है। अब तो बच गया है अन्धकार, रह गयी है अँधियारी, निशा याद दिलानेवाली है। अतः यह कालापन ही मेरे जीवनका आधार रह गया है। अब तो इसीको लेकर मैं जीऊँगी।

उसके बाद दैन्य जब और फूटता है, तब भगवान्से प्रार्थना करती हैं। ध्यान देनेकी बात है, श्रीराधा एवं गोपांगनाओंके लिये श्रीकृष्ण तो भगवान् हैं नहीं। वे परम प्रेष्ठ हैं, प्रियतम हैं, प्राणाधार हैं। प्रार्थना होती है प्रभुकी, श्रीमन्नारायणकी। वे जगदाधारसे प्रार्थना करती हैं, हे भगवान्, मेरी मनःकामना पूर्ण करें, प्रभो। जिस ओर मैं जाना चाहती हूँ, उससे विरुद्ध मेरा एक पैर भी न टिके। किस ओर जाना चाहती हैं, यह भी स्वयं ही बताती हैं। वे कहती हैं, मेरे कलेवरका तापमान बढ़ता चला जा रहा है। शरीरका, मनका तापमान इतना बढ़ता जा रहा है कि वह पास

> आनेवालेको भी जला देगा। अतः श्रीकृष्ण जिस दूर देशमें हैं, हे भगवन्, मुझे उससे विरुद्ध देशमें ले चलो। श्रीकृष्णके समीपमें मैं न पहुँचूँ कभी। मुझे दूर ले चलो और दूर-से-दूर ले चलो। यदि कहीं मैं मार्ग भूल गयी, श्रीकृष्णकी ओर चल पड़ी और उनके समीप पहुँच गयी तो मेरे तापमानसे, मेरे शरीरकी गर्मीसे वायु उत्तप्त हो जायगी। पवन उत्तप्त हो जायगा और वह उत्तप्त पवन उस नील कलेवरको झुलसा देगा। अतएव हे नारायण, यह कदापि न घटे। मैं विपरीत चलूँ, दूर चलूँ। यही रुचिकर है।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scans 117 to 121, with the sentence concluding at the opening of scan 122

Surrender

Kṛṣṇa's words in the Gītā, “Abandoning all dharmas, take refuge in me alone,” proclaim him to be the fullest manifestation, the origin of all, and God himself. The whole universe abides in only a fraction of him. Nothing exists apart from him; all moving and unmoving beings are strung upon him like jewels on a thread. Rāma, appearing as the supreme exemplar of righteous limits, concealed his divinity within those limits, though his true nature sometimes shone forth. Śyāmasundara shows no such reserve.

In truth there is no difference between Rāma and Śyāma, nor among the Lord's other forms; only their līlās differ. Kṛṣṇa spoke more openly about himself. As indwelling Lord, omniscient and knower of all three times, he disclosed the most secret mysteries to Arjuna. His command does not mean abandoning dharma itself, but relinquishing reliance upon all dharmas and accepting one sole refuge in love. “One dharma, one vow and rule: with body, speech, and mind, love the husband's feet.” Kṛṣṇa says to relinquish every other support and take refuge in him alone. “Fix your mind on me, become my devotee, worship me, bow to me.” Give the mind, and everything has been given. Bhakti is a life wholly surrendered and governed by conduct pleasing to the chosen Lord. To become his devotee is to serve; to become his worshipper is to worship him alone.

Worship the all-pervading Lord from whom everything arises and by whom all is pervaded. Kṛṣṇa declares that he himself is that Lord. He accepts worship from sages and also performs worship, encompassing every “this” and “that” within himself. The inward “I,” the transcendent “he,” and the visible world of “this” are all he. He alone plays, within himself, through Śyāmasundara's ever-new dramatic forms. This līlā is at once supremely concealed and universally known, the most secret of all secrets.

Only God knows God's mystery. To love him, one must rise above the world's notions of duty and non-duty, fears and hopes, action and inaction. Action and inaction, renunciation and enjoyment, doing and leaving aside must all become his worship. Nothing remains in life except the supremely beloved Lord, the only reality to attain and cherish.

With such surrender, only the ocean of love moves through the kingdom of love. In its depth it is utterly tranquil, without agitation or wave, yet upon that very ocean ever-new garlands of waves dance eternally. It is tranquil and dancing, infinite and sporting with finitude, unfathomable and overflowing, silent and resounding. God is the ground in which contrary qualities coexist. The Vedas and Upaniṣads point toward this in the phrase “smaller than the smallest, greater than the greatest.”

This reality cannot be grasped by intellect. The intellect can know only that Brahman transcends the senses, not Brahman's essential nature. The revealed texts say that speech and mind return from it without reaching it. If every description ends in “not this, not this,” who can measure or express it? When that supreme reality manifests its own qualities and enters the play of līlā, it is called Śrī Kṛṣṇa.

Vaiṣṇava thought describes three powers: āhlādinī, sandhinī, and saṁvit. Āhlādinī is God's eternal blissful nature. Bliss is eternally manifest, surging, overflowing, and devoted to līlā. It is tranquil bliss and exuberant bliss, the bliss of dance and music, separation and union. The embodied form in whom that bliss is directly manifest is Rādhā. The līlā realm and its companions arise through divine consciousness. The eternal power of being manifests as the līlā, its place, companions, and central participant. The gopīs are bodily expansions of Rādhā, who is Kṛṣṇa's inseparable bliss aspect. In the eternally manifest great rāsa, perfected aspirants also receive the form of gopīs and enter the līlā as eternal companions, yet Rādhā remains the source of all.

Rādhā is the principal heroine of this play of being, consciousness, and bliss. Love's rasa continually unfolds in her through eight forms: prema, sneha, māna, praṇaya, rāga, anurāga, bhāva, and mahābhāva. Prema is the all-pervading disposition that takes the form of Śrī Kṛṣṇa. Sneha is its refined tenderness. Māna is not ordinary offended pride but a subtle crookedness that increases Kṛṣṇa's delight in love. Praṇaya, rāga, anurāga, and bhāva follow. When gopī-bhāva reaches its complete culmination in Rādhā-bhāva, it is mahābhāva. Within it manifest the extraordinary states called mādana and modana.

Mādana includes profound self-abasement. When Kṛṣṇa leaves for Mathurā, Rādhā feels nothing remains and life is impossible. Yet darkness becomes a support, for its blackness appears as Kṛṣṇa's shadow. In an earlier līlā, prevented from reaching him, she had experienced him within a dark shadow. Now she reflects that a shadow requires the sun or moon, but the fire of separation has consumed them both. Only darkness remains to recall him, and she will live by it.

As humility deepens, she prays not to Kṛṣṇa as God, for to Rādhā and the gopīs he is the supreme beloved and life itself, but to Lord Nārāyaṇa, support of the universe. Her fever of separation burns so intensely that she fears the nearby air will become hot and scorch Kṛṣṇa's blue body. She therefore begs Nārāyaṇa to carry her ever farther from the country where he lives, lest she mistakenly approach him and cause him pain. Her sole desire is his happiness, even through limitless distance from him.

ORIGINAL Hindi, Sanskrit, and Awadhi

Source: Scans 122 to 125

यहाँ मादनाख्य दैन्यका भाव है, इसीलिये वे कहती हैं कि मैं दूर जाना चाहती हूँ, जिससे मेरे उत्तप्त अंगोंका स्पर्श पाकर अति उत्तप्त वायु मेरे प्राणनाथके नील कलेवरका स्पर्श न कर सके और वह सुखसे रहें। दूसरी भावना जब मनमें आती है, तब वे विचार करने लगती हैं: मैं जब चलती थी तो मेरे पीछे-पीछे भ्रमरोंका दल चलता था, गुनगुनाता हुआ, गुंजार करता हुआ। तब मुझे लगता था कि ये भौरे क्यों उड़ रहे हैं, ये भौरे मेरे पीछे क्यों चल रहे हैं। उत्सुकतावश पीछे एक दिन मुड़कर देखा, श्यामसुन्दर मेरे पीछे-पीछे चल रहे थे। श्यामसुन्दरका वह कलेवर दिव्यगन्धयुक्त है, नित्य सौरभित है। दिव्य-कमलगन्ध-पूरित उस गन्धको पानेके लिये ही ये भौरे उड़ते चले जा रहे थे। इसीसे मैं यह समझती थी कि श्यामसुन्दर मेरे साथ हैं और मुझसे उनको सुख मिल रहा है। उसी सुखानुभूतिसे भौरे गुनगुना रहे हैं, पर अब तो श्यामसुन्दर चले गये। वे ही तो मेरे जीवनके जीवन थे।

जीवन्तता हो तो शरीरको सुवासित करती है, दुर्गन्धसे बचाये रखती है। जीवन गया, कुछ ही क्षणोंमें शरीर सड़ने लगता है, दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। श्रीराधाके मनमें भावना आती है: मेरे शरीरके जो प्राण थे, वे तो छोड़कर चले गये, अब तो केवल ढाँचा रह गया है, वही चलता है। पर जब प्राण निकल गये तो शरीर अब दुर्गन्धयुक्त हो गया, सड़-गल गया। हे भगवान्, हे नारायण, मुझपर कृपा करो कि मैं अपने श्यामसुन्दर जहाँ हैं, उससे इतनी दूर रहूँ, इतनी दूर रहूँ कि मेरे दुर्गन्धयुक्त शरीरकी वायु भी उनका स्पर्श न कर सके, उन्हें दुःखी न बना सके। मुझे दूर रहना है, अतः मुझे दूर ले चलो।

फिर एक नवीन उद्भावना आयी। मेरे श्यामसुन्दर मुझको छोड़कर चले गये। यह बड़ा ही सुन्दर हो गया। वही हो गया जो मैं चाहती थी। भगवान्ने मेरी इच्छा पूर्ण कर दी। मैं नितान्त अयोग्य, नितान्त अनधिकारिणी, सर्वथा दुर्गुणवती, सर्वथा कुरूपा, सर्वथा कुलक्षणवाली हूँ। श्यामसुन्दर मुझपर, सिर्फ मुझसे प्रेम करें और इसको अपना सुख मान लें, यह तो उनका सर्वथा भ्रम था। मैं भगवान्से प्रार्थना किया करती थी: भगवान्, मेरे प्रियतम श्यामसुन्दरका भ्रम आप मिटा दें और किसी प्रकार ये मेरा परित्याग कर दें। मैं उनसे प्रार्थना करती, समय-समयपर अपने प्राणनाथसे निवेदन भी करती, नाथ, यह दुःख वरण करना आप छोड़ दीजिये। उन्हें समझाती कि मेरा यह साहचर्य तो आपके लिये दुःखरूप ही है, पर इसे मान रहे हैं आप अपना सुख, क्योंकि मुझमें आपकी आसक्ति-अनुरक्ति है। अतएव आप कृपा करके अपने इस भ्रमका निवारण करें। बहुत अधिक अधिकारिणी देवियाँ हैं, गुणवती, शीलवती, सब तरहसे मुझसे सुयोग्य। आप उन्हें स्वीकार कर लें।

जब-जब मैं यों कहती, तब-तब श्यामसुन्दरका मेरे प्रति अनुराग और बढ़ता चला जाता। तो मैं विचारमें पड़ गयी कि अब मैं क्या करूँ? कहती हूँ तो इनका अनुराग और बढ़ता है, आसक्ति और बढ़ती है और इस कारण इनका दुःख ही बढ़ता है, प्रकारान्तरसे। और नहीं कहती हूँ तो इनके दुःखको मैं देख नहीं सकती। इनका दुःख कैसे मिटे? मेरे परित्यागसे मिट सकता है। मुझे ये त्याग दें तो इनका दुःख मिट जायगा। मैं तो इस त्यागके लिये तैयार हूँ ही। नारायणने मेरी प्रार्थना सुन ली, देवने मेरी प्रार्थना सुन ली, इसलिये अक्रूर इन्हें मथुरा ले गये। जब ले गये तो वहाँ जाकर इनको योग्य अधिकारिणी कोई प्राप्त भी हो गयी होगी। मेरी इन्हें विस्मृति भी हो गयी होगी और मेरी विस्मृति उनके लिये सुखदायिनी होगी ही। आज मेरी साध पूरी होगी। यह प्रिय-सुख-सम्पादनके भावकी पराकाष्ठा।

जीवमात्रकी यह दशा है कि अगर जरा-सा मनके अनुकूल भगवान् न करें तो भगवान्पर नाराज हो जाते हैं। हम अधिकांश भजनवाले लोग भगवान्को भजते ही इसलिये हैं कि भगवान् हमारे लिये अनुकूलता उत्पन्न करते रहें, स्वयं भी, पदार्थोंके द्वारा भी। हमारी इच्छाओंको भगवान् पूर्ण करते रहें, इसलिये भी हम भगवान्को भजते हैं। उस भजनके बदले हमें भगवान् अधिक सुख दे दें, दुःख तो बिलकुल दें ही नहीं। यदि दुःख प्राप्त हो, तब तो फिर भगवान्की आवश्यकता रहती ही नहीं। पग-पगपर नित्य-निरन्तर स्वयंको उपासक माननेवाले लोग, भगवान्की भक्ति करनेवाले जो अपनेको 'हम' मानते हैं ऐसे लोग, अपनेको विरक्त माननेवाले लोग, जहाँ-कहीं भी प्रतिकूलता देखते हैं, जहाँ-कहीं भी जरा-सी मान-भंगकी स्थिति आती है, केवल विचारमात्र आता है कि किसीने हमारा आदर नहीं किया, हम भगवान्को कोसने लगते हैं। यह बड़ा विचारणीय प्रश्न है। इस विष्ठा-मूत्रादिसे भरे शरीरमें कौन-सी बढ़िया चीज भरी है, जिसको लेकर हम अभिमान करें? इस शरीरको लेकर हम यह कहें कि हम कुछ बड़े हैं, हमारे अन्दर कोई महत्त्वका पदार्थ है, यह बड़े ही सोचका विषय है। इस शरीरका जहाँ-कहीं सम्मान नहीं हुआ, आराम नहीं मिला और इस शरीरके कल्पित नामकी जहाँ पूजा नहीं हुई, हम भगवान्को कोसने लगते हैं। उन लोगोंको असभ्य मानते हैं, असंस्कारी मानते हैं, प्रेमी नहीं मानते, सत्संगी नहीं मानते।

तात्पर्य इतना ही है, जब कभी अपनी वासनाकी पूर्तिका प्रश्न आये, वहाँ वासना-पूर्तिका आयोजन हो नहीं तो हम वैपरीत्यका अनुभव करने लगते हैं। प्रवचन करना चाहें और सफलता न मिले तो मनमें आता है कि यहाँ तो कोई सत्संगकी बात जाननेवाला है ही नहीं, कोई प्रेमी है ही नहीं। यहाँपर तो सब-के-सब रूखे लोग हैं, सब भोगोंमें लगे हैं, कोई भी सत्संगकी बात नहीं करता। इन्होंने समय देकर सत्संग नहीं किया, ये सब असत्संगी क्यों हैं, अप्रेमी क्यों हैं, रूखे क्यों हैं, इनमें सभ्यता क्यों नहीं, इन सबका एक ही उत्तर है: इन्होंने हमारा मान नहीं किया और हमें मानकी भूख थी। यही हमारे दुःखका कारण बन गया। यदि हम अपनी बात भगवान्को सुनाते होते तो दूसरी चीज होती।

एक बारकी बात है, तानसेन बड़े संगीतज्ञ थे। अकबरके सामने एक बार उन्होंने मल्हार राग गाया। अकबर उसे सुनकर विह्वल हो गया और बोला, तुमने कहाँ सीखा? इतना बढ़िया कोई गा नहीं सकता। तानसेनने उत्तर दिया, महाराज, मैं तो कुछ नहीं गा सकता। मेरे गुरुजी हरिदासजी महाराज जैसा गाते हैं वैसा तो आपने कभी सुना ही नहीं होगा। मैं तो उनके सामने सूर्यके सामने जुगनू-जैसा हूँ। अकबरने कहा, उनका गायन सुनाओ। तानसेनने उत्तर दिया, उनका गायन सुनाना हमारे हाथमें थोड़े ही है, आपके हाथमें थोड़े ही है कि आप चाहें उनको बुलावा भेजें और वे आपके दरबारमें आ जायँ। ऐसे तो वे हैं नहीं। अकबरके मनमें उत्सुकता जग गयी थी। उसने कहा, क्या उपाय करें? सुनना तो है। तानसेनने सुझाव दिया, थोड़ी देरके लिये बादशाहियत भूल जाइये। सादे कपड़े पहनकर वास्तवमें साधारण आदमी बनकर हमारे साथ चलिये, तब कोई व्यवस्था करेंगे। सुननेकी इच्छा थी अकबरकी, अतः जैसा तानसेनने कहा वैसे ही वेश बदलकर कुटियाके पास पहुँचे। तानसेनने कहा कि पेड़के नीचे बैठ जाइये अलग। अकबरको समीप ही पेड़के नीचे कुटियाके बाहर बैठा दिया और स्वयं अन्दर गये।

हरिदासजी अपने भगवान्की प्रेम-समाधिमें मस्त थे। कुछ देरके बाद उनकी प्रेम-समाधि टूटी। बोले, "तानसेन, अच्छे हो? कैसे आ गये?" तानसेनने उत्तर दिया, "महाराज, ऐसे ही आ गया। उस दिन जो राग आपने सुनाया था, वह मुझे ठीक याद नहीं रहा, मैं फिर सुनना चाहता हूँ।" बोले, "सुनो, लाओ एकतारा।" लिया एकतारा और लगे सुनाने। उसके प्रभावसे अकबर भावविभोर होकर मूर्छित हो गये। उनको जो चीज आज श्रवण करनेको मिली, वैसी जीवनमें बड़े-बड़े गवैये, बड़े-बड़े संगीतज्ञ, कलाविद्, अच्छे कण्ठवाले आये, पर ऐसा सुख नहीं मिला जैसा आज

प्राप्त हुआ। अकबरको चेत हुआ। अकबरने कहा, “तानसेन, तुम बड़े गवैये हो, तुम ऐसा क्यों नहीं गाते, क्या बात है?” तानसेनने उत्तर दिया, “महाराज, बात यह है कि वे सुनाते हैं भगवान्‌को और मैं सुनाता हूँ आपको। यही अड़चन है।” बुलासा, बोली निकालना, अलग चीज है और भगवान्‌का गुणगान करना और चीज है।

तुलसीदासजीने इतना बड़ा ग्रन्थ रचा, पर भूमिकामें कहते हैं, ‘स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा।’ स्वान्तः सुखाय। इसके द्वारा इस बहते हुए अमृतसे कोई लाभ उठा ले, कोई नहा ले, यह अलग बात है, पर मेरा ग्रन्थ ऐसा हो, इससे जगत्‌का उपकार हो, भला हो, इस प्रकारकी किसी वासनाको प्रेमी संत नहीं रखते। उनका सम्बन्ध तो रहता है अपने भगवान्‌से। वे अपने भगवान्‌के सामने कभी रोते हैं, कभी गाते हैं, कभी उनका गुणानुवाद करते हैं, कभी चरित्र गाते हैं। ठीक यही स्थिति यहाँ भी है। इस पिंजरेमें बैठे पक्षीके गानको कोई उड़ता हुआ पक्षी सुन ले और याद कर ले वह अलग चीज है, पर यह तो अपने पिंजरेमें आबद्ध है, अपने भगवान्‌को अपने अन्दर लिये हुए, उसीको सुनाता है। जहाँपर वासना मनमें है, वहाँपर जरा-सी भी अनुकूलता नहीं दिखती, मान नहीं दीखता तो हम भले लोगोंको भी कह देते हैं कि बुरे लोग हैं, असंस्कारी हैं, असभ्य हैं, हमारा इन्होंने मान नहीं किया, हमारी बात सुनी नहीं। यह ठीक है, यदि कोई सुनाने जाय और उसकी बात न सुनें तो दुःख होगा। होना स्वाभाविक है। इसमें उनका कोई अपराध नहीं है। पर ये प्रेमी भक्त दुनियाँको सुनाने नहीं जाते।

‘सर्वधर्मान् परित्यज’ भी यही है। अर्जुन दूसरे क्षेत्रमें था। इसलिये भगवान्‌को उसके द्वारा जो काम करवाना था वही करवाया, यन्त्रवत्।

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scans 122 to 125

Rādhā's wish for distance expresses the humility of mādana. She fears that air heated by her burning limbs might touch and hurt her beloved's blue body. She then remembers swarms of humming bees that once followed her. Turning back one day, she saw Śyāmasundara walking behind her. The bees sought the eternal fragrance of divine lotuses emanating from his body. Their humming assured her that he was with her and receiving happiness through her. Now he has departed, though he was the life of her life.

Life keeps a body fragrant, but when life departs the body soon decays and smells. Rādhā imagines that the life of her body has gone away, leaving only a moving frame. She prays to Nārāyaṇa to keep her so far from Śyāmasundara that not even air carrying the odor of her lifeless body can touch and distress him.

Then comes a new conception. Śyāmasundara's departure is wonderful because it fulfils what she had desired. Considering herself wholly unqualified, devoid of virtue and beauty, she thinks his belief that loving her could be his happiness was a delusion. She had prayed that Nārāyaṇa remove it and induce him to abandon her. She repeatedly urged her beloved to leave her painful company and accept women far more worthy, virtuous, and refined. Yet each request only increased his love. She could not bear his supposed suffering, and only abandonment seemed able to end it. Now Akrūra has taken him to Mathurā, where he must have found a worthy beloved and forgotten her. His forgetfulness will give him happiness and fulfil her deepest aspiration. This is the summit of seeking the beloved's joy.

Ordinary beings become angry with God whenever he fails to conform even slightly to their wishes. Much worship is performed so that God will make circumstances favorable, fulfil desires, grant pleasure, and withhold all pain. When hardship or the slightest loss of honor comes, even self-proclaimed devotees and renunciants begin blaming him. Yet what in this body filled with waste merits pride? If the body receives no respect or comfort and its imagined name is not worshipped, we call others uncultured, loveless, and devoid of holy company.

Whenever desire is not fulfilled, we experience opposition. A preacher who is unsuccessful concludes that no one there understands satsanga, that everyone is dry and attached to pleasure. The real grievance is simply that they did not honor him and his own hunger for recognition caused the pain. The situation would be entirely different if he were speaking only to God.

Tānasena once sang rāga Malhāra before Akbar, who was overwhelmed and asked where he had learned. Tānasena replied that his own singing was like a firefly before the sun compared with his guru Haridāsa. Akbar wished to hear the master, but Haridāsa could not be summoned to court. Tānasena told the emperor to put aside kingship, wear simple clothes, and accompany him as an ordinary man. They reached the teacher's hut, where Akbar sat unseen beneath a tree.

Haridāsa was absorbed in loving samādhi upon his Lord. When he emerged, Tānasena pretended not to remember a melody and asked to hear it again. Haridāsa took an ektārā and sang. Akbar was so overwhelmed that he fainted. Upon recovering, he asked why Tānasena, though a great musician, could not sing like that. Tānasena answered, “He sings to God, while I sing to you. That is the difference.” Producing a trained voice is one thing; singing God's glory is another.

Tulasīdāsa composed a vast work yet introduced it as Raghunātha's story written for the joy of his own heart. Others may bathe in and benefit from the flowing nectar, but loving saints do not harbor an ambition that their composition should improve the world. Their relationship is with God alone. Before him they weep, sing, praise his qualities, and recount his deeds. If another bird hears and remembers the song of the bird singing within its cage, that is incidental. Desire for an audience makes lack of attention painful and leads one to condemn good people. Loving devotees do not sing to the world. “Abandoning all dharmas” has this same meaning. Arjuna stood in another field of action, so the Lord made him perform the required work as an instrument.

ORIGINAL Hindi, Sanskrit, and Awadhi

Source: Scans 126 to 129

यही मोह-नाश है। भगवान्ने कहा कि मोह-नाश हो गया? अर्जुन मान रहा था कि मैं यह करूँ कि नहीं करूँ? यही तो मोह था। और मोह था क्या? उसको स्मृति आ गयी कि अरे, मैं तो इनके हाथका यन्त्र हूँ। ये यन्त्री और मैं यन्त्र, ये करनेवाले हैं। करनेवाला मैं? मैं कहनेवाला-करनेवाला कौन? 'न योत्स्ये', मैं तो यन्त्र हूँ। "नहीं लड़ूँगा" यह कहनेवाला कौन? कभी कठपुतली कहती है क्या कि मुझे सीधा नचाओ, टेढ़ा नचाओ, मुझे सुलाओ मत, खड़ी रखो? वह तो अपने-आप सूत्रधारके सूत्रके इशारेपर नाचती है, बिना किंतु-परंतु किये। यही स्मृति अर्जुनको हो गयी कि मैं तो आया था इस कामके लिये यन्त्र बनकर और बनने लगा यन्त्री आपके समकक्ष। अर्जुनकी जो स्वीकृति है, इस स्वीकृतिमें शरणागति का मर्म है।

संक्षेपमें मोह-नाश हो गया, इस वृत्तिका नाश हो गया कि मैं कुछ कर्ता-कराता हूँ, करने-करानेवाला हूँ, करूँगा-कराऊँगा। शरणागति परतन्त्रताका साधन है। भगवान्के परतन्त्र हो जाना, स्वतन्त्रता रहे नहीं। भगवान्की परतन्त्रताको स्वीकार कर लेना ही शरणागति है। और शरणागत कभी स्वतन्त्र नहीं होता। उसकी इच्छा भी स्वतन्त्र नहीं रहती। कोई अलगाव, कुछ भी अलग लिये हुए यदि कोई है तो उसके समर्पणमें कुछ कमी है। समर्पणमें जब समर्पक अपने-आप उसमें आकर बैठ जाता है, तभी वह कह सकता है:

मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।

भक्त कहता है कि हमने आपमें मन लगा दिया, आपको मन अर्पण कर दिया। पर भगवान् कहते हैं, मन उसका है नहीं, मेरा मन ही उसका मन बनकर बैठ गया है। जहाँ भगवान् यह कहते हैं, वही पूर्ण समर्पण है। वहाँ अपनी अलग स्वतन्त्र इच्छा, स्वतन्त्र सत्ता, स्वतन्त्र मान्यता है ही नहीं। केवल उनकी इच्छाकी सत्ता है। श्लोकमें 'मत्प्राणाः' पद है, 'मद्गतप्राणाः' नहीं है, 'मन्मनस्का मत्प्राणाः' हैं। ऐसी स्थितिमें वे भक्त भगवान्के प्राणोंसे अनुप्राणित रहते हैं। भगवान्के जीवनसे वे जीवित हैं। भगवान्के रखनेसे उनका अस्तित्व है। भगवान् क्यों रखते हैं? अपने खेलके लिये, अपना काम करनेके लिये। यही गोपी-भाव है। शरणागतिमें मोहका नाश हो गया, कर्तृत्वका अभिमान नष्ट हो गया। "मैं आपके हाथका यन्त्र हूँ, मैं कुछ करने-करानेवाला नहीं, जो आप कहना चाहें वही मैं करनेवाला हूँ, इसलिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ", ये बातें मुख्य रहती हैं।

मैंने मोहवश ही जो कुछ अन्यथा सोचा, कहा। तब भगवान् श्रीकृष्ण बोले, तुमने बड़ा अच्छा किया, इतनी साधना की, जिससे तुम्हारे मोहका नाश हो गया। अर्जुनने कहा, "ना-ना, त्वत्प्रसादात्। प्रभो, यह सब आपकी कृपाका ही फल है।" शरणागत कभी भी साधनका अभिमान नहीं करता। वह तो कहता है कि आपकी कृपासे यह मोह-नाश हुआ, आपके प्रसादसे मुझे स्मृति आयी। भगवान् बोले, हमारे प्रसादको समझा, यह एक काम तो तुमने किया है, हमारी कृपाको माना। अर्जुनने उत्तर दिया, "नहीं-नहीं महाराज, मैंने नहीं माना, आपने मनवा दिया।" कैसे? यहाँपर सम्बोधन है 'अच्युत'। आप अपने स्वभावसे कभी च्युत नहीं होते, आप सुहृद हैं। हम चाहें न चाहें आप गले पड़कर भला करते हैं। हम पीना न चाहें, आप गला पकड़कर अमृत पिलाते हैं। अच्युत है आपका स्वभाव। इसलिये यहाँ शरणागतमें यह अनुभूतिका अभिमान नहीं कि आपकी कृपाको अपनी बुद्धिसे, अपनी साधनासे प्राप्त कर सका।

जो कृपामय हैं, उनकी कृपा तो सर्वत्र विकीर्ण हो रही, विस्तीर्ण हो रही है। वह कृपा स्वाभाविक है। उस स्वाभाविक कृपाने ही अपनी कृपासे, 'जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती', अपनी अपार कृपासे, अकारण कृपासे मेरे मोहका नाश कर दिया।

उसका प्रभाव क्या हुआ? वही जो चीज होनी चाहिये: भटकना बन्द हो जाय; जहाँ पहुँचना चाहिये, वहाँ पहुँचकर स्थिर हो जाय। 'स्थितोऽस्मि गतसन्देहः।' जहाँतक सन्देह रहता है, वहाँतक भटकना बन्द नहीं होता। सारे सन्देह मिट गये, स्थिरता आ गयी। अब पूछा, क्या करोगे? बस, एक ही शेष रह गयी है, अब तो 'करिष्ये वचनं तव।'

पूरी अधीनता, भगवान्‌की पूर्ण शरणागति जब होती है, तब शरणागतको भगवान् अपना अन्तरतम खोलकर दिखाते हैं। अन्तरंग-प्रदेशको खोलकर दिखा देनेका नाम ही प्रेम है। अन्तरंगताके बिना प्रेम नहीं होता और प्रेमके बिना असली ज्ञान नहीं होता। जबतक बाहरी ज्ञान है, ऊपरका ज्ञान है, तबतक अन्तरंगता नहीं है। किसीसे भी कोई प्रेम करे, उसकी भक्ति करे, उसको जाने। उतनी बात ही जान सकेंगे, जितनी बाहरसे प्रकट है। उसके मनमें क्या है, जीवनकी गुप्त-से-गुप्त बात क्या है, सर्वगुह्यतम क्या है, यह बात तबतक हम नहीं जान सकते, जबतक हम उनकी अन्तरंगतामें प्रवेश न पा लें। उसके मनमें यह विश्वास न हो जाय कि यह मेरा है, 'इष्टोऽसि' में जबतक स्थित न हो जाय, तबतक अन्तरंग-रहस्य नहीं खुलता। रहस्य खोलते हैं रहस्यवाले ही। हम तो रहस्यकी कल्पना मात्र करते हैं, ऊँची-से-ऊँची कल्पना कर लेते हैं। भगवान्‌के रहस्यका उद्घाटन हम नहीं कर सकते। यह तो उन्हींके द्वारा सम्भव है जो स्वयं रहस्यमय हैं, लीलामय हैं। 'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।' जिसपर कृपा हो जाती है, वही जानता है, दूसरा नहीं जान सकता।

यहाँ भगवान्‌ने स्वयं जनाया। 'हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति', उसीकी शरणमें जाओ, 'तमेव शरणं गच्छ।' फिर ऐसी बात कह दी जो परायेसे कही जाती है:

ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया।

मैंने तुम्हें गुह्यसे गुह्यतर जो बात थी वह कह दी, मेरे द्वारा कही गयी। अब तुम सोच लो, जो मनमें आये करो। अर्जुन रो उठा। ये शब्द नहीं हैं, पर ध्वनि है। अर्जुन व्याकुल हो गया, रो उठा। परंतु यह भी किया उसकी परिपक्वताके लिये। यदि व्याकुलता नहीं होती तो भगवान्‌के दूसरे शब्द इस प्रकारके नहीं निकलते जो अन्तरंगताको लिये हुए हैं। अर्जुन व्याकुल हो गया कि यह क्या कह दिया? 'त्वां प्रपन्नम्' कहकर मैंने पूछा और प्रभुने कहना शुरू किया तथा सब कहनेके बाद अब कहते हैं कि जँचे सो करो। बड़ी विकट बात हुई। पर जब रोने लगा, तब अविलम्ब भगवान्‌ने आँसू पोंछ दिये, गलेमें हाथ डाल दिया। गलबाँही डालकर बोले, भैया, अरे तू मेरा बड़ा प्यारा है, 'इष्टोऽसि मे।' तू मेरा बड़ा प्रिय है, भैया, तू रोता क्यों है? 'सर्वगुह्यतमं भूयः', अब तुमको फिरसे सारी जो गुह्यतम बात है खोलकर कहता हूँ।

भगवान्‌का अन्तरंग खुल गया, अपनी तारीफ अपने मुँहसे की। 'परमं वचः।' कोई भी आदमी कहता है क्या कि मैं जो कहता हूँ वही सबसे ऊँची बात है? पर भगवान्‌ने कहा, सुनो, 'परमं वचः', मेरे श्रेष्ठ वचनोंको जो परम वचन हैं उन्हें सुनो, तुम्हींको सुनाता हूँ। क्योंकि 'इष्टोऽसि मे दृढमिति', तुम मेरे प्यारे हो, सुहृद् हो। तुम्हारा प्यार किसी हालतमें कम नहीं होता, किसी हालतमें घटता नहीं। जो प्रेम घटता, रुकता है वह प्रेम नहीं, काम है। प्रेम घटता

नहीं, रुकता नहीं, मिटता नहीं। वह तो अनवरत लगातार प्रतिक्षण वर्धमान रहता है, यही प्रेमका स्वरूप है। इस प्रकार अर्जुनको ढाढ़स देकर बड़े गद्गद स्वरसे निश्चयात्मक वाणीसे कहा, “मत चिन्ता करो। तेरी चिन्ता मेरी चिन्ता है, तेरे पाप मेरे पाप। बस, तू सब कुछ छोड़ दे।”

माँका स्नेह ऐसा होता है कि माँ स्वयं बच्चेकी चीजको सँभाले। वह तो सँभालता नहीं, वह तो केवल माँको जानता है। ‘सर्वधर्मान् परित्यज्य’ का अर्थ है केवल माँको जाने। वह कहे हिलो तो हिले, बैठो तो बैठे। भगवान्ने कहा, हम स्वयं ऐसा कर चुके हैं। जब गोपमाताएँ, बड़ी-बूढ़ी देवियाँ कहतीं, “लाला, उठाओ जूती”, तब जूती उठा लाते। भागवतमें शब्द आता है भगवान्के लिये ‘दारुयन्त्रवत्।’ कठपुतलीकी तरह ये श्यामसुन्दर नाचते थे जगत्को आह्लादमयी गोपियोंके इशारेपर। भगवान् स्वयं स्वीकार करते हैं, हम भी कठपुतली बन जाते हैं। फिर यदि अर्जुन, तुम भी कठपुतली बन जाओ तो समझो कि तुम्हारा काम बन गया।

यह कठपुतलीपन जहाँ पूरा-पूरा इस प्रकारका बन जाता है, जहाँ प्रत्येक विचार, प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक लीला उस प्राणाराम, परमधन, परमप्रेष्ठ प्रियतमके अनुसार उसको सुखदायिनी होने लगती है, वहाँ होता है गोपीभाव। और यह गोपीभाव जहाँ पराकाष्ठाको पहुँचा वहाँ प्रकट होता है राधाभाव। राधाभावमें जहाँ समर्पणका पूर्ण क्रियात्मक अवतरण हो जाता है वह महाभाव है और महाभावके अन्तर्निहित रहता है मादन और मोहन-भाव। आवश्यकता है केवल यन्त्र बननेकी:

तुम हो यन्त्री मैं यन्त्र, काठकी पुतली मैं तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ कहलाओ मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥

ENGLISH TRANSLATION

Source: Scans 126 to 129

This is the destruction of delusion. Arjuna's delusion was the belief that he independently decided whether to act. Remembrance returned: he was an instrument in the Lord's hands, while the Lord was the operator. Who was the “I” declaring, “I will not fight”? A puppet does not instruct the puppeteer to make it dance straight or crooked, lie down or stand. It moves by the strings without objection. Arjuna remembered that he had come as an instrument but had begun to set himself beside the operator. His acceptance contains the essence of surrender.

In brief, the notion “I act, make others act, shall do and cause to be done” was destroyed. Surrender is the discipline of dependence upon God, leaving no separate freedom, not even an independent will. If anything remains held apart, surrender is incomplete. In perfect offering, the offerer himself comes to abide within the one to whom he is offered. Thus scripture speaks of devotees whose minds and very life are the Lord's. They do not merely direct their life toward him; they live by his own life. They exist because he sustains them for his play and work. This is gopī-bhāva: delusion and pride of agency are gone, and one says, “I am the instrument in your hand. I do nothing independently. I shall do whatever you tell me, and therefore I have taken refuge in you.”

When Kṛṣṇa appears to praise Arjuna for a practice that destroyed delusion, Arjuna replies, “No, Lord, it was through your grace.” One surrendered never takes pride in practice but attributes the destruction of delusion and recovery of memory to divine grace. Even recognizing grace is not Arjuna's achievement; the Lord made him recognize it. He addresses Kṛṣṇa as Acyuta, one who never falls from his nature of benevolence. Whether we desire it or not, he embraces us for our good and forces nectar upon us when we refuse to drink. His causeless, boundless grace, spread everywhere by its own nature, destroys delusion.

Its effect is that wandering ends. One reaches the proper place and becomes steady: “I stand firm, my doubts gone.” As long as doubt remains, wandering continues. When every doubt vanishes, only one response remains: “I shall do your word.”

With complete dependence and surrender, God opens his innermost being to the surrendered soul. Love means revealing the interior realm. Without intimacy there is no love, and without love no true knowledge. External knowledge sees only what is outwardly manifest. The most hidden secret of another's heart cannot be known until one is admitted into intimacy and trusted as “my own” and “dear to me.” Only the possessor of a mystery can reveal it. We may imagine as loftily as possible but cannot disclose God's secret. Only the mysterious Lord of līlā can reveal it, and only the recipient of his grace knows.

After directing Arjuna to the indwelling Lord and to refuge in him, Kṛṣṇa says what one might say to someone distant: “I have declared knowledge more secret than the secret. Reflect fully, then act as you wish.” The text does not explicitly say Arjuna wept, but its emotional resonance

suggests his anguish. He had declared himself surrendered, listened to everything, and now heard "do as you wish." This anguish ripened him. The Lord at once wipes away his tears, embraces him, and says, "Brother, you are exceedingly dear to me. Why do you weep? Once more I shall open the most secret teaching."

God reveals his intimate heart and calls his own words supreme. He does so because Arjuna is firmly dear to him. True love does not lessen, pause, or disappear; what does so is desire. Love grows continually at every moment. Reassuring Arjuna in a voice choked with feeling, the Lord says, "Do not worry. Your concern is my concern, your sins my sins. Leave everything."

A mother's affection makes her care for everything belonging to the child, while the child knows only the mother. "Abandoning all dharmas" means knowing only her, moving when she says move and sitting when she says sit. Kṛṣṇa himself behaved so before the elder women of Vraja. When they told him to pick up a shoe, he did it. The Bhāgavata describes him as "like a wooden puppet," dancing at the gopīs' gestures. The Lord accepts becoming their puppet. If Arjuna likewise becomes a puppet, his work is fulfilled.

When this instrumentality becomes complete, every thought, act, and līlā seeks only the happiness of the beloved who is one's life, treasure, and highest love. That is gopī-bhāva. At its summit appears Rādhā-bhāva. Its complete practical embodiment of surrender is mahābhāva, within which dwell mādana and mohana. The sole necessity is to become the instrument:

You are the operator, I the instrument; I am a wooden puppet and you the holder of its strings. Make me act and speak; make me dance according to your own desire.

ORIGINAL Hindi

Source: Caption on scan 130

भगवान् श्रीकृष्णके चरण

ENGLISH TRANSLATION

Source: Caption on scan 130

The Feet of Bhagavān Śrī Kṛṣṇa